हमारे आध्यात्मिक महापुरुष

डॉ. हरवंशलाल ओबराय

सम्पादक एवं संकलनकर्ता

स्वामी संवित् सुबोधगिरि

डॉ. हरवंशलाल ओबराय समग्र

खण्ड 1 : राष्ट्रीय समस्याएं और इतिहास

खण्ड 2 : महापुरुष : व्यक्तित्व एवं कर्तृत्व

खण्ड 3 : धर्म-दर्शन-संस्कृति-उत्सव-विज्ञान एवं मनोविज्ञान

खण्ड 4 : वेदान्त दर्शन की वैज्ञानिकता

खण्ड 5 : गीता दर्शन की सार्वभौमिकता

प्रकाशक एवं वितरक :
स्वामी संवित् सुबोधगिरि
श्री नृसिंह भवन
संन्यास आश्रम,
भक्तानन्द शिव मन्दिर
भीनासर 334403
बीकानेर (राजस्थान)
मो. : 09413769139

अन्य पुस्तक प्राप्ति स्थान :

- श्री सुशील कुमार ताम्बी
  प्रज्ञा साधना आध्यात्मिक पुस्तक केन्द्र
  A/3 आर्य नगर
  एन.के. पब्लिक स्कूल के पास
  मुरलीपुरा, जयपुर 302039
  फोन : 0141-2233765 मो. : 09829547773
- **ज्ञान गंगा प्रकाशन**
  पाथेय भवन,
  बी-19, न्यू कॉलोनी, जयपुर
  दूरभाष : 0141-2371563
- **अखिल भारतीय इतिहास संकलन योजना**
  आप्टे भवन, केशव कुंज, झण्डेवाला
  नई दिल्ली 110055
  फोन : 011-23675667
- **हिन्दू राइटर्स फोरम**
  129-बी, डी.डी.ए. फ्लैट्स (एम.आई.जी.)
  राजौरी गार्डन, नई दिल्ली 110027
- **जागृति प्रकाशन**
  श्री कृष्णानन्द सागर
  एफ-109, सेक्टर-27, नोएडा 201301
  फोन : 0120-2538101 मो. : 09871143768

ISBN 978-93-84133-11-5

प्रथम संस्करण : 2015 ई.

प्रतियां : 1100

मूल्य : एक सौ पचास रुपये मात्र

आवरण : गौरीशंकर आचार्य

मुद्रक :
सांखला प्रिंटर्स, विनायक शिखर
शिवबाड़ी रोड, बीकानेर 334003

Hamare Aaddhyatmik Mahapurush (Hindi)
Edited by Swami Samvit Subodhgiri ₹ 150

आशीर्वचन

भारतीय संस्कृति का आधार सनातन धर्म है। सनातन का अर्थ है जो आदि और अन्त रहित है। अतः यह धर्म अनादि काल से चला आ रहा है और अनन्त काल तक रहेगा। इस धर्म को अपनाने वाले को भी यह धर्म 'सनातन' की प्राप्ति करा देता है। ब्रह्म को ही वेदों में सत्य या सनातन कहा है। सनातन धर्म पर आधारित होने के कारण भारतीय संस्कृति भी सनातन संस्कृति है। भारतीय संस्कृति ओंकार-मूलक है। ओंकार ही ब्रह्म है, ओंकार ही आत्मा है, ओंकार ही जगत् है, ओंकार से भिन्न और परे किसी अन्य की सत्ता ही नहीं है। ओंकार से ही सारे वेद प्रकट हुए हैं। वेद अपौरुषेय हैं, अनन्त हैं, सनातन हैं। संस्कृति का विस्तार वेदों में प्रतिपादित कर्मकाण्ड, उपासना-काण्ड और ज्ञानकाण्ड के अनुसार हुआ। संस्कृति के संवाहक ऋषियों ने मानव मात्र के अभ्युदय और निःश्रेयस को प्रदान करने वाले जीवन-दर्शन और जीवन-विज्ञान को सारे विश्व में फैलाया। भारत-भूमि को इस संस्कृति-प्राकट्य और प्रसार के मूल-स्थान होने का गौरव प्राप्त है। इस संस्कृति-वीणा की दिव्य झंकार तो 14 भुवनों के आरपार होकर वैकुण्ठ, कैलास और मणिपूर व्यापिनी है।

अवतारों की लीलास्थली एवं ऋषियों की तपोभूमि भारत में संस्कृति का प्रवाह कभी अवरुद्ध नहीं हुआ। संकट के समय में जब इसका बाह्य रूप प्रक्षीण हुआ तब भी यह अन्तःपयस्विनी होकर सतत प्रवाहित होती रही।

प्रस्तुत ग्रंथ में संस्कृति की इस अमरता और इसके वैश्विक रूप का सम्यक् दर्शन होता है। प्रखर मनीषी और उद्‌भट विद्वान् प्रो. हरवंशलाल ओबराय एक चल-विश्वविद्यालय व चल-पुस्तकालय होने के साथ-साथ ब्रह्मविद्या के श्रेष्ठ विद्यार्थी भी थे। एक स्थान पर स्थिर होकर लेखन कार्य में संलग्न रहना उनके स्वभाव में नहीं था। उन्होंने स्वयं लिखने से अधिक लिखवाया और उससे भी अधिक प्रवचनों में अभिव्यक्त किया। उनके द्वारा अभिव्यक्त बहुमूल्य सामग्री को स्वामी श्री सुबोधगिरिजी ने वर्षों तक संभाल कर रखा। संन्यास के पूर्व वे अनेक वर्षों तक प्रो. ओबराय के शिष्य बन कर रहे। उन्होंने सत्-शिष्य बन कर प्रो. ओबराय की सेवा की, उपासना की और उनसे अध्यात्म, धर्म, संस्कृति, इतिहास आदि अनेक विषयों का प्रामाणिक एवं दुर्लभ ज्ञान प्राप्त किया। प्रो. ओबराय ने अपनी प्रखर प्रतिभा, अनुसंधानात्मक वृत्ति तथा संश्लेषक व विश्लेषक प्रज्ञा द्वारा भारतीय संस्कृति के अनेक अज्ञात पक्षों का पता लगाया था। उनकी बहुत कुछ सामग्री तो उनके पश्चात् बचाई नहीं जा सकी। किन्तु सुबोधगिरिजी ने अपने पास की सामग्री को तथा कई अन्य स्रोतों से भी उनकी रचनाओं को एकत्र करके उन्हें लोक कल्याण के लिये प्रकाशित करने के संकल्प को जीवित रखा। प्रभुकृपा से अब उनका संकल्प पूर्ण होने जा रहा है। यह प्रकाशन प्रो. ओबराय के प्रति उनकी सच्ची श्रद्धांजलि है। प्रभु से प्रार्थना है कि वे निरन्तर ज्ञानार्जन करते हुए ब्रह्मविद्या के आलोक को प्राप्त करें।

—परम पूज्य गुरुदेव स्वामी संवित् सोमगिरि

नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः ।
न चैनं क्लेदयन्त्यापो न शोषयति मारुतः ।।

श्रद्धांजलि
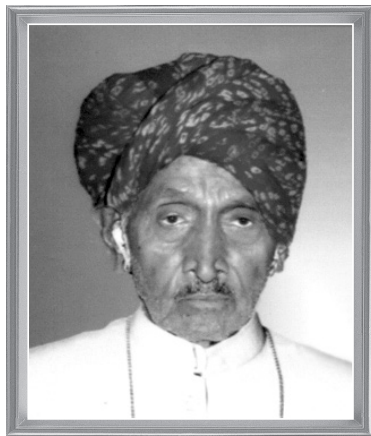
स्व. लाखूरामजी (101 वर्ष)

शत-शत-नमन

बैकुण्ठ धाम : 26 जून, 2014

श्रद्धावनत् : अर्जुनराम मेघवाल (सांसद एवं लोकसभा प्रत्याशी, भाजपा, बीकानेर), अनिलकुमार मेघवाल (पुत्र), श्रीमती पानादेवी, श्रीमती सरस्वतीदेवी (पुत्रवधू), मोतीलाल, पूनमचन्द (जेठुता), विजय कुमार (दामाद), शान्तिदेवी, धन्नीदेवी (पुत्रियां), रविशेखर, नवीन, अमित (पौत्र), सुशीला, नीलम (पौत्रवधू), अजय आर्य, कृष्ण चौहान (पौत्री दामाद), मनीषा, रचना, रुक्मणी (पौत्री), फिजा, दृष्टि (पड़पौत्री), योशिता, दर्षिता, खुशी (पड़दोईती) एवं समस्त जनागल (मेघवाल) परिवार।

निवास : मेघवालों का मोहल्ला, किशमीदेसर, बीकानेर
मोबाइल : 9414075910, 9414787932, 8890221679

प्रकाशकीय

हमारी संस्कृति के चिरंजीवी होने का रहस्य—

यूनानो मिस्र रोमां सब मिट गये जहाँ से,
बाकी है अब तलक भी, नामों निशां हमारा।
कुछ बात है कि हस्ती मिटती नहीं हमारी,
सदियों रहा है दुश्मन, दौरें जमां हमारा।

—इकबाल

(जब वह राष्ट्रीयधारा में था तब का महत्त्वपूर्ण कथन है)

युग पर युग बीत गये, युग पर युग बीतते जा रहे हैं और युग पर युग बीत जायेंगे तब भी हमारी संस्कृति अजर-अमर बनकर खड़ी है, दुर्भाग्य की सबसे अधिक ठोकरें खाकर भी चिरंजीवी बनी हुई है। जबकि अन्य संस्कृतियाँ छोटे-मोटे आघातों से सदा के लिये विलुप्त हो गयी हैं। आज उनको जानना है तो इतिहास के पृष्ठों में और अजायबघरों में जाना होगा।

तो भारतीय संस्कृति में ऐसी कौन-सी विशेषता है जिसके कारण आज भी चिरंजीवी बनी हुई है। सारे विश्व के विद्वान् इस पर आश्चर्यचकित हैं।

प्रत्येक युग का अपना एक स्वरूप होता है, उस युग की अपनी चुनौतियाँ होती हैं। उस युग व उसकी चुनौतियों को समझकर जो उसका उत्तर देने में समर्थ होती है वही संस्कृति चिरंजीवी होती है। वही समाज चिरंजीवी होता है।

अपने देश में हर युग में ऐसे युगपुरुष, अवतारी पुरुष, महापुरुषों का पदार्पण होता आया है, निर्माण होता आया है जिन्होंने युग की चुनौतियों को स्वीकार करते हुए इस देश का नेतृत्व किया है। भारतीय जातीय जीवन के प्रत्येक युग में ऐसे-ऐसे आध्यात्मिक दिग्गज हुए जिन्होंने न केवल देश को वरन् सारे विश्व को प्रभावित किया है।

सारे ऋषि, अवतार उत्तर भारत ने दिये। पूर्व-मध्यकाल में भारत पर संकट आया तब उत्तर भारत का उपकार चुकाने के लिये दक्षिण भारत ने आचार्य पैदा

किये—शंकराचार्य, रामानुजाचार्य, मध्वाचार्य, वल्लभाचार्य, निम्बार्क, विष्णु स्वामी—सभी आचार्य दक्षिण भारत ने दिये।

मध्यकाल में संस्कृति पर जब पुनः संकट आया तो मध्य भारत, महाराष्ट्र, संयुक्तप्रांत आदि क्षेत्र ने सन्त-महात्मा पैदा किए—ज्ञानेश्वर, नामदेव, तुकाराम, गुरु एकनाथ, समर्थ गुरु रामदास, कबीर, तुलसी, सूर, मीरा।

आधुनिक काल में भारतीय संस्कृति पर भीषणतम प्रहार पश्चिम से हुआ। अतः इस बार भारत का पूर्वांचल संस्कृति-रक्षण के पुनीत कर्तव्य के लिये आगे बढ़ा। आधुनिक नवोत्थान का अग्रदूत बंगाल बना।

पुराणों में बंगदेशवास को हीन माना है। वहाँ के वासियों को धर्म दृष्टि से कुछ घटिया स्थान दिया था। वहाँ के मांस भक्षण तथा कर्मकाण्ड की उपेक्षा के कारण भी उसे तिरस्कार की दृष्टि से देखा जाता था। उन सारे कलंकों को एकबारगी धोते हुए बंगाल ने आनन्दावतार चैतन्य महाप्रभु पैदा किया, धर्म के जीते-जागते स्वरूप रामकृष्ण परमहंस तथा विश्व विजेता स्वामी विवेकानन्द पैदा किए, वेदवाणी वन्दित योगीराज अरविन्द और महर्षि देवेन्द्रनाथ ठाकुर, राजा राममोहनराय तथा विश्वकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर पैदा किये। महापुरुष सारे भारत में पैदा हुए।

भारतीय संत परम्परा और सेमेटिक संत परम्परा में मूलभूत अंतर है। London Times ने गांधीजी को श्रद्धांजलि देते हुए कहा—

No country but India and no religion but Hinduism could have given birth to a Gandhi. यह बात केवल गांधीजी के प्रति ही नहीं भारत के सभी महापुरुषों के विषय में कह सकते हैं। भारतीय परम्परा में संतहृदय को नवनीत के समान कहा है, रामचरितमानस के अमर गायक गोस्वामी तुलसीदास जी ने 'मुदमंगलमय संत समाजू' कहकर वंदना करते हुए उन्हें संसार में चलते-फिरते तीर्थ की हृदयहारी एवं भावगर्भित उपमा दी है।

किन्तु यह बात सेमेटिक परम्परा के संतों के विषय में नहीं कह सकते हैं। उनके यहाँ तो काफिरों, हिडेनों से घृणा करने, उनके निर्मम वध को पुण्यकार्य, आदर्शकर्म और स्वर्गप्रद बताया गया है तथा अपने पंथ विस्तार के लिए जो भी उचित-अनुचित कार्य किया, जितना अधिक मानवता को रक्त से स्नान कराया, सर्वसंहार किया वे उनके आदर्श पुरुष हैं, संत हैं। जैसे फ्रैंसिस जेवियर ने गोवा में कैसा अमानुषिक अत्याचार किया। उसे पढ़ें तो रोंगटे खड़े हो जाएं, दिल दहल जाएगा। उसने घोषणा करवा दी कि सब जगह मन्दिर नष्ट कर दिये जाएं। सब मूर्तियाँ तोड़ दी जाएं। मैं नहीं जानता कि मन्दिरों के गिराये जाने और मूर्तियों

के तोड़े जाने को प्रत्यक्ष देखकर जो मुझे प्रसन्नता होती है उसको शब्दों में कैसे वर्णन किया जा सकता है। एक जैसुइट की शपथ पढ़ें तो करुणा, मानवता से विश्वास उठ जायेगा। कोलम्बस ने अमेरीका में क्या अत्याचार नहीं किये? उस देश के मूलवासियों को समूल रूप से नष्ट कर दिया और वह फ्रैंसिस जेवियर, वह कोलम्बस उनके लिये महान् संत है, महान् पुरुष है, आदर्श पुरुष है, ईसाई संस्कृति के प्रतीक हैं।

इसके विपरीत भारतीय संस्कृति के प्रतीक भगवान बुद्ध जो त्याग और आत्मविजय के आदर्श हैं। इसकी तुलना में पश्चिम के गौरव का प्रतीक यूनानी राजा युलिसिस है जो द्वीप जीतने के अभियान में लड़ते-लड़ते मर गया। भारत में अशोक इसलिये महान् हुआ क्योंकि उसने राज्य सत्ता त्याग दी, भिक्षु बन गया। किन्तु पश्चिम में सिकन्दर, सीजर और नेपोलियन को इसलिये महान् माना गया क्योंकि वे सत्ता और वैभव के भूखे थे। भारत की महानता दान में है, तपस्या में है, निःस्वार्थ सेवा में, ज्ञानदान में है, परदुःखकातरता में है और पश्चिम की बहादुरी लूट-खसोट में है, अपने पंथ विस्तार में है चाहे उसके लिये सारी मानव-जाति का संहार हो जाय।

यही स्थिति इस्लाम की है। उनके आदर्श पुरुष हैं महमूद गजनवी जिसने कई बार सोमनाथ मन्दिर को लूटा, देव-प्रतिमाओं को तोड़ा, मानवता को अपमानित किया, स्त्री-पुरुषों को दास-दासी, रखेल बनाकर विदेशों में बेचा। उनके आदर्श पुरुष हैं मुहम्मद बिन कासिम जिसने सत्रह वर्ष की आयु में सिंध पर विजय प्राप्त की। उनके आदर्श पुरुष हैं मुहम्मद गोरी जिसने तेरहवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में भारत पर आक्रमण किया। उनके लिये औरंगजेब महान् मुगल सम्राट है उसे वे जिन्दा पीर मानते हैं। जिन्ना उनके यहाँ महान् पुरुष है जिसने देश को विभाजित किया।

इस प्रकार भारतीय संत-परम्परा और सेमेटिक संत-परम्परा जिसमें ईसाई, मुसलमान व पश्चिमी देश आते हैं, भारतीय आदर्श पुरुष और सेमेटिक आदर्श पुरुष में मूलभूत अंतर है। हमारे यहाँ जिनको असुर, दैत्य, राक्षस-पिशाच माना गया उनके यहाँ वे महान् पुरुष हैं, आदर्श पुरुष हैं, संत हैं। अतः सभी परम्पराओं के संत एक समान है इस भ्रम में न रहें। हमारे यहाँ भी रावण, कंस, हिरण्यकशिपु हुए हैं पर वे हमारे आदर्श पुरुष नहीं हैं, उन्हें विकृति माना गया और दण्ड के पात्र बने। पश्चिम में भी सुकरात, मुसलमानों में रहीम, दाराशिकोह, सूफी संत सरमद, रसखान, जायसी, उशाउल्लाखान, मुहम्मद करीम छागला, भूतपूर्व राष्ट्रपति डा.अब्दुल कलाम आदि के संतत्व, महानता का कारण भी उनका भारतीय विचार परम्परा के प्रभाव में आना और उसके अनुसार ढल जाना रहा। इसलिये वे मानवता के पुजारी और भारतभक्त बने।

आज भी मदरसे में जो शिक्षा दी जाती है, कोर्स चलते हैं, उनमें एक पाठ भी भारतीय महापुरुष पर नहीं है। गांधीजी मुसलमानों को मूल राष्ट्रीयधारा में लाने के लिए उनकी सारी अनुचित मांगें स्वीकारते रहे, अन्त में विभाजन को स्वीकार कर लिया और अपने प्राणों की आहुति देकर भी उनको अपना नहीं बना सके। पंडित नेहरूजी भी नहीं जो स्वयं को धर्म की दृष्टि से मुसलमान मानते थे। जो आजीवन उनके संरक्षक रहे वे भी उनके पाठ में नहीं हैं। सब मतांध मुसलमान ही उनके आदर्श पुरुष हैं। यही स्थिति परम्परागत ईसाइयों एवं पादरियों की है। अतः सभी परम्परा के महापुरुष एक से हैं इस भ्रम में न रहें। महापुरुषों संबंधी लेख पहले, दूसरे एवं चौथे खण्ड में से संग्रहित किये गये हैं। और उनके कुछ प्रवचन जिनमें मैं भी उनके साथ था किसी को विस्तार से और किसी को संकेत रूप में लिख लिया था वह भी चतुर्थ खण्ड में से संकलित हैं।

इस पुस्तक का समस्त व्यय भार माननीय सांसद श्री अर्जुनजी मेघवाल ने सहर्ष स्वीकारा है। उन पर सपरिवार प्रभु की कृपा सदैव बरसती रहे। परम पूज्य गुरुदेव स्वामी संवित् सोमगिरिजी महाराज के आशीर्वाद एवं हर बार की तरह सांखला प्रिंटर्स के सौहार्दपूर्ण प्रिंटिंग कार्य में सहयोग से यह पुस्तक प्रकाशित हो रही है।

शिवाकांक्षी

—स्वामी संवित् सुबोधगिरि
सम्पादक व संकलनकर्ता
मो. 09413769139

अनुक्रम

1.	त्रिदेव की एकता के प्रतीक : भगवान् दत्तात्रेय	11
2.	विभूति वन्दना	15
3.	यश के अमर तरानों में गूंजता हुआ ऋषि दधीचि का बलिदान	25
4.	भगवान् गौतम बुद्ध	29
5.	भगवान् बुद्ध	34
6.	भगवान् बुद्ध को भगवान् शंकराचार्य की श्रद्धांजलि	37
7.	बुद्ध जयन्ती	39
8.	आत्मजयी भगवान् महावीर के कालजयी संदेश का दिव्य दिग्विजय	41
9.	जगद्गुरु आद्य श्री शंकराचार्यजी	46
10.	जगद्गुरु शंकराचार्य की दार्शनिक प्रतिभा	50
11.	क्या भगवान् शंकराचार्य प्रच्छन्न बौद्ध थे?	53
12.	सन्त कबीर ने धार्मिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक-क्रांति का सूत्रपात किया था	59
13.	सन्त ज्ञानेश्वर का सर्वात्म-दर्शन	61
14.	आनंद विग्रह श्री चैतन्य महाप्रभु	65
15.	प्रेमरसावतार श्रीकृष्ण चैतन्य	70
16.	गुरु रविदास के उपदेश आज के संदर्भ में	74
17.	सन्त रविदास (रैदास) का साधनात्मक रहस्यवाद	81
18.	अनन्त रहस्य के द्रष्टा सन्त रैदास	85
19.	महाराष्ट्र के सन्त एकनाथ	88
20.	युग-गुरु राजा राममोहनराय	90
21.	स्वामी दयानंद सरस्वती	95
22.	परमहंस देव का जीवन-दर्शन	99
23.	जय परमहंस देव	102
24.	विवेकानंद विरुदांजलि	103
25.	विश्व गुरु स्वामी विवेकानन्द की भारतीय संस्कृति को देन	104
26.	स्वामी विवेकानन्द का पश्चिम पर प्रभाव	109
27.	स्वामी विवेकानन्द तथा उनका राष्ट्रीय स्वाभिमान	114
28.	स्वामी विवेकानन्द का शिक्षा दर्शन : एक संगोष्ठी	117

29. महामानव : स्वामी रामतीर्थ 119
30. राजा कीर्तिशाह एवं स्वामी रामतीर्थ में ईश्वर-विषयक सम्वाद 146
31. Wanted आवश्यकता है 151
32. अरविन्द विचारदर्शन 152
33. योगीराज अरविन्द का दर्शन 155
34. तत्त्वद्रष्टा : योगीराज अरविन्द घोष 159
35. योगीराज अरविन्द का आध्यात्मिक राष्ट्रवाद 162
36. योगीराज अरविन्द का शिक्षा-दर्शन 165
37. महायोगी अरविन्द और महाकवि रवीन्द्रनाथ 169
38. जड़-चेतन की जीवन्त लीला के द्रष्टा : ऋषिकल्प आचार्य जगदीशचन्द्र बसु 174
39. विश्व मनीषा के मणिमुकुट डा. राधाकृष्णन 178
40. पुण्यश्लोक मनीषी डा. भगवानदास 182
41. महायोगी महर्षि रमण 185
42. साधु स्थाणुदेव लीलाराम वास्वानी 188
43. श्री स्वामी शिवानन्दजी सरस्वती : एक 192
44. श्री स्वामी शिवानन्दजी सरस्वती : दो 195
45. धर्मसम्राट स्वामी करपात्रीजी को श्रद्धांजलि 199
46. ब्रह्मलीन पूज्य स्वामी सरयुनन्दनजी महाराज 202
47. स्वामी रामानन्द और उनका जीवनदर्शन 206
48. महाराष्ट्र के संत कवि माणिकराव 209
49. महामहिमामण्डित महर्षि मेँहीँ परमहंस....अभिनंदन पत्रम् प्रथम 214
50. पूज्यपाद महर्षि मेँहीँ परमहंस....अभिनंदन पत्रम् द्वितीय 219

परिशिष्ट

51. प्रथम प्रवचन : मानव जीवन सोद्देश्य 223
52. द्वितीय प्रवचन : विदेशों पर भारतीय संस्कृति का प्रभाव 229
53. तृतीय प्रवचन : गुरु नानक दिवस पर 232
54. चतुर्थ प्रवचन : संस्कृतियों का प्रसार विश्व में 236
55. पंचम प्रवचन : ईश्वर कृत धर्म एवं मानव कृत धर्म 238
56. षष्ठ प्रवचन 242
57. सप्तम प्रवचन 245
58. अष्टम प्रवचन 246
59. हिन्दूधर्म की विशेषताएँ 247

त्रिदेव की एकता के प्रतीक : भगवान् दत्तात्रेय

भारतीय संस्कृति की महानतम विशेषता है अनेकता में एकता के दर्शन। यह सत्य है कि हिन्दू धर्म में बहुदेवोपासना का प्रचार है और उनकी संख्या 33 करोड़ के लगभग मानी जाती है, तथापि प्रमुख देव तीन ही माने जाते हैं—ब्रह्मा, विष्णु, महेश। वस्तुत: ये तीनों भी एक ही परम शक्ति के प्रतीक हैं। एकोब्रह्मद्वितीयोनास्ति के सिद्धांत के अनुसार एक ही परम ब्रह्म-ब्रह्मा विष्णु महेश। इसी एकत्व की भावना के प्रतीक हैं भगवान् दत्तात्रेय जिनमें ब्रह्मा, विष्णु, महेश तीनों के गुणों का एक अत्यन्त सुन्दर समन्वय दृष्टिगत होता है।

'दत्तात्रेय शब्द स्वयं ही इस बात का प्रमाण है कि उनमें तीनों देवताओं का सम्मिलित अंश है। उनके पिता महर्षि अत्रि थे। 'अत्रि' की संज्ञा भी इसी भाव की ओर संकेत करती है कि उनमें तीनों देवताओं के अंशों का ऐसा अद्‌भुत समन्वय था कि उन तीनों को अलग-अलग नहीं किया जा सकता।

दत्तात्रेय जी की माता-पुण्यश्लोका अनसूया मनु की पुत्री देवहूति की दुहिता थी। महर्षि कर्दम इनके पिता थे। **अनसूयाजी अत्यंत सत्यपरायण, धर्मशीला, शीलवती, विनयवती तथा लज्जावती तथा क्षमाशील थी। वह अत्यन्त संयमी तथा तपस्विनी थी। यही कारण है कि उन्होंने ब्रह्माजी के मानस पुत्र परम तपस्वी महर्षि अत्रि को पति रूप में प्राप्त किया था।**

अनसूयाजी पतिव्रता ललनाओं में श्रेष्ठ मानी जाती हैं। एक बार उमा, रमा तथा ब्रह्माणी ने इनके सतीत्व की ख्याति सुनकर ईर्ष्यावश अपने-अपने पतियों को इन्हें विचलित करने के लिए भेजा। भगवान शंकर, क्षीरोदधिशायी भगवान् विष्णु और चतुरानन अपने-अपने वाहनों पर चढ़कर महर्षि अत्रि के आश्रम पर पहुंचे, तीनों मिले त्रिदेवों का एक ही उद्देश्य था।

वे साधुवेश में भगवती अनसूया के समीप पहुंचे, भगवती पाद्य अर्घ्य और आचमनीय लेकर आयी तो इन लोगों ने स्वीकार नहीं किया। आप विवस्त्र होकर हमारा सत्कार करें तो आपकी पूजा स्वीकार की जाएगी। इन लोगों का विचित्र प्रस्ताव सुनकर ये चकित हो गई। तत्पश्चात् अनसूयाजी ने तनिक सा ध्यान लगाया

तो सब जान गई। उन्होंने कहा यदि मैं सच्ची पतिव्रता हूं भूल से स्वप्न में भी काम भाव से परपुरुष का चिंतन न किया हो तो ये तीनों छह-छह मास के बालक हो जायें।

सती का इतना कहना था कि त्रिदेव छह मास के बच्चे बन गये। अब विवश होकर माता ने दुग्धपान कराया। महर्षि ने आकर यह दृश्य देखा तो हंस पड़े। अब त्रिदेव माता के दुग्ध पर जीवन धारण कर रहे थे। उधर अधिक दिन बीत जाने पर उमा, रमा, ब्रह्माणी तीनों अपने-अपने पतियों का पता लगाने चली, तो महर्षि अत्रि के आश्रम के समीप तीनों का मिलन हो गया। तीनों ने माता अनसूया से क्षमा मांगी। ब्रह्मा, विष्णु महेश तीनों ने अपने-अपने अंश से उनका पुत्र बनने का वचन दिया।

एक बार महर्षि अत्रि भगवान् से प्रार्थना कर रहे थे 'जगत् के अधिष्ठाता प्रभु प्रसन्न हों। मुझे वे अपनी संतति प्रदान करें।' अकस्मात् ही महर्षि ने अपने आश्चर्यपूर्ण नेत्रों से देखा कि उनके सम्मुख वृषभारूढ़ कर्पूरगौर भगवान् शशांक शेखर, हंस पर विराजमान सिन्दूरारुण भगवान् चतुरानन और गरुड़ की पीठ पर बैठे हुए शंख, चक्र, गदा, पद्मधारी भेष सुन्दर श्री रमानाथ एक ही साथ प्रकट हुए थे। महर्षि ने तीनों की पूजा की। तीनों के अंश से उन्हें संतान प्राप्ति का वरदान मिला।

महासती अनसूया के तीन पुत्र रत्न हुए-चन्द्रमा, दत्तात्रेय और दुर्वासा। शीतल किरणों से तृण, लता वल्ली, अन्न तथा चन्द्रमा मनुष्यों का पोषण करते हैं और सदा स्वर्ग में रहते हैं, वे प्रजापति के अंश हैं। दत्तात्रेय दुष्ट दैत्यों का संहार कर प्रजा की रक्षा करते हैं। वे शिष्टजनों पर अनुग्रह करते हैं। वे भगवान् विष्णु के अंश हैं। दुर्वासा अपमान को भस्म कर डालते हैं, वे शरीर दृष्टि, मन और वाणी से भी उद्धत स्वभाव के हैं और रुद्र के अंश हैं। श्री विष्णु रूप दत्तात्रेयजी योगस्थ रहकर भी कर्मों में प्रवृत्त हो गए। दुर्वासा अपने पिता-माता को छोड़कर 'उन्मत्त' नामक उत्तम व्रत का आश्रय लेकर पृथ्वी पर विचरने लगे।

पूर्वकाल में देवताओं और दैत्यों में एक वर्ष तक निरन्तर युद्ध होता रहा जिसमें दैत्य विजयी हुए और देवता हार गए। सभी देवता मिलकर बृहस्पतिजी के पास आए। बृहस्पतिजी ने कहा—देवताओ! तुम अत्रि ऋषि के पुत्र दत्तात्रेय के पास जाओ उनमें वर देने की शक्ति है, वे तुम्हें वर देंगे और तुम दैत्यों का वध कर सकोगे?

उनके ऐसा कहने पर देवगण दत्तात्रेय मुनि के आश्रम पर गए। वहां लक्ष्मीजी के साथ उनका दर्शन किया। देवताओं ने उन्हें प्रणाम किया, उपासना करने लगे। दत्तात्रेय जी के पूछने पर उन्होंने अपने आने का कारण बताया कि जम्भ आदि

दानवों ने त्रिलोकी पर आक्रमण करके भूलोक और सुरलोक आदि पर अधिकार जमा लिया है अत: आप उनके वध के लिए विचार करें। आप निष्पाप तथा निर्लेप हैं। विद्या प्रभाव से शुद्ध हुए आपके अन्त:करण में ज्ञान की किरणें फैल रही है।

देवताओं के ऐसा कहने पर दत्तात्रेय जी ने कहा कि समस्त असुरों को युद्ध के लिए मेरे सामने बुलाओ, मेरी दृष्टिपात जनित अग्नि से उनके बल और तेज दोनों क्षीण हो जाएंगे और इस प्रकार वे सब के सब मेरी कोपदृष्टि से नष्ट हो जायेंगे। उनकी बात सुनकर देवताओं ने महाबली दैत्यों को युद्ध के लिए ललकारा। दैत्यों की मार खाकर देवता भय से व्याकुल हो कर शरण पाने की इच्छा से शीघ्र ही भाग कर दत्तात्रेयजी के आश्रम पर गये। दैत्य भी देवताओं को काल के गाल में पहुंचाने के लिए वहीं जा पहुंचे। वहां दत्तात्रेयजी के वाम भाग में लक्ष्मीजी विराजमान थी। उन्हें सामने देखकर दैत्यों के मन में उन्हें प्राप्त करने की इच्छा हो गई। वे अपने बढ़ते हुए काम के वेग को न रोक सके। उन्होंने देवताओं का पीछा छोड़कर लक्ष्मी को हर लेने का विचार किया। वे आपस में विचार करने लगे 'यह स्त्री त्रिभुवन का सारभूत रत्न है। यदि यह हमारी हो जाय तो हम लोग कृतार्थ हो जायें, इसलिए हम सब लोग मिलकर इसे पालकी पर बिठा लें और अपने घर को चलें।

अत: वे काम पीड़ित दैत्य लक्ष्मीजी को पालकी में बिठाकर उसे मस्तक पर ले अपने स्थान की ओर चले। दत्तात्रेयजी ने हंस कर देवताओं से कहा—'सौभाग्य से लक्ष्मी दैत्यों के सिर पर चढ़ गई। अब तुम लोग आगे बढ़ो और शस्त्र उठाकर इन दैत्यों का वध करो। मैंने इन्हें निस्तेज कर दिया है। पराई स्त्री के स्पर्श से इनका पुण्य जल गया है, जिससे ये शक्तिहीन हो चले हैं।

तदनन्तर देवताओं ने नाना प्रकार के अस्त्र-शस्त्रों से दैत्यों को मारना आरंभ किया। लक्ष्मी उनके सिर पर चढ़ी हुई थी, अत: वे नष्ट हो गये। इसके बाद लक्ष्मी जी वहां से मुनि दत्तात्रेय के पास आ गई। उस समय संपूर्ण देवता उनकी स्तुति करने लगे, फिर परम बुद्धिमान् दत्तात्रेयजी को प्रणाम कर स्वर्ग चले गए और निश्चिन्त होकर रहने लगे।

मानवता के आदि गुरु तथा महान् योगी—भगवान् दत्तात्रेय आदि युग में प्रह्लाद के उपदेष्टा हैं। आजगर मुनि के वेश में प्रह्लादजी को उन्होंने अवधूत की स्थिति का उपदेश दिया। इसी प्रकार महाराज अलर्क को उन्होंने तत्त्वज्ञान का उपदेश दिया। कुत्तों से घिरे हुए, उन्मत्त सा वेश बनाये, उन सिद्धों के परमाचार्य को पहचानना बहुत उच्चकोटि के अधिकारी का ही काम है। सिद्धों की एक परंपरा ही भगवान् दत्तात्रेय को उपास्य मानती आई है। इनमें 'रस सिद्ध' का बहुत प्रचार था।

ये सिद्धियां भले ही मनुष्य को प्रलुब्ध करें और कौतूहल या कामना वश सामान्य साधक इन्हीं को लक्ष्य बनाते हों, परन्तु भगवान् दत्तात्रेय के उपदेश मनुष्य को इन प्रलोभनों से सावधान करते हैं। योग संबंधी अनेक मंत्र भगवान् दत्तात्रेय के कहे जाते हैं। मोक्ष-प्राप्ति का उपाय भी इन्होंने योग ही बतलाया है—

त्यक्ता संगो जित क्रोधो, लघ्वाहारी जितेन्द्रयः।
पिघाय बुद्धया द्वाराणि, मनो ध्याने निवेशयेत्।।

योगी आसक्ति का त्याग करके, क्रोध को जीत कर, स्वल्पाहारी और जितेन्द्रिय हो और बुद्धि और इन्द्रियों के द्वारों को रोककर मन को ध्यान में लगावें।

महायति के लक्षण बताते हुए भगवान् दत्तात्रेय जी ने लिखा है—

'वाग्दण्डयः कर्मदण्डश्च मनोदण्डश्च ते त्रयः।
यस्यैते नियता दण्डाः स त्रिदण्डी महायतिः।।

वागदण्ड, कर्मदण्ड और मनोदण्ड—ये तीन दण्ड जिसके अधीन हों वही त्रिदण्डी महायति कहलाता है।

इसी प्रकार के एकाग्रचित्त योगी के लक्षण बताते हुए लिखते हैं—

'विशुद्ध बुद्धिः समलोष्ट काञ्चनः,
समस्तभूतेषु समः समाहितः।
स्थानं परं हिगत्वा न पुनः प्रजायते।'

जिसकी बुद्धि शुद्ध है जो मिट्टी के ढेले और सुवर्ण को समान समझता है, सब प्राणियों के प्रति जिसका समान भाव है, वह एकाग्रचित्त योगी उस सर्वोत्कृष्ट सनातन अविनाशी परमपद को प्राप्त हो कर फिर इस संसार में जन्म नहीं लेता।

दक्षिण में भगवान् दत्तात्रेयजी की उपासना का व्यापक प्रचार है। 'गिरिनार' प्रभु का सिद्धपीठ है।

चराचर के गुरु, शंख, चक्र, गदा एवं शार्ङ्ग धनुष धारण करने वाले विष्णु के स्वरूपभूत, मनुष्यों का पोषण करने वाले ब्रह्मा के स्वरूपभूत और प्रलय करने वाले शिव के स्वरूपभूत, कोटिशः जनगणवन्दित भगवान् दत्तात्रेयजी को हमारा बारम्बार प्रणाम हो।

अष्टादश पुराणेषु व्यासस्य वचनद्वयम्।
परोपकारः पुण्याय पापाय परपीड़नम्।।

अठारह पुराणों में व्यास के दो वचन हैं—दूसरे की भलाई करना पुण्य (धर्म) है और दूसरे को पीड़ा देना पाप (अधर्म) है।

विभूति वन्दना

भाद्रपद मास के शुक्ल पक्ष में अष्टमी से पूर्णिमा तक कुछ ऐसी महान् विभूतियों के जन्म-जयन्ती उत्सव आते हैं जिनमें से एक-एक पर विशद् विचार एवं विवेचन की आवश्यकता है, किन्तु निरन्तर गतिमान काल-सरिता के अनन्त प्रवाह में यह पर्वरूपी जंगम तीर्थ इतनी शीघ्रता से बहे जाते हैं कि हमारे वन्दना-व्याकुल हृदयों की भावांजलि चढ़ने से पूर्व ही आगे निकल जाते हैं। अतः काल-सरिता के सूने तट से ही उन महान् विभूतियों को अपनी श्रद्धा के दो-चार फूल चढ़ाने का अपना लोभ संवरण न कर पाने के कारण एक ही पुष्पमालिका से सातों विभूतियों की अर्चना करने का लघु प्रयास कर रहा हूँ।

अलौकिक प्रेम की अमर आराधिका : श्रीराधा

जहाँ कृष्ण वर्ण के श्रीकृष्ण का जन्म भाद्रपद मास की कृष्णाष्टमी को होता है, वहीं गौर वर्ण की सर्वशुक्ला श्रीराधाजी का जन्मोत्सव भाद्रपद मास की शुक्ल अष्टमी को मनाया जाता है। जैसे नभ से नीलिमा, चन्द्र से चन्द्रिका, जल से लहर तथा अग्नि से उष्णता भिन्न नहीं हो सकती है वैसे ही भारत की साहित्यिक एवं धार्मिक परम्पराओं में श्रीकृष्ण से राधा को भिन्न नहीं किया जा सकता। किन्तु राधाजी की ऐतिहासिकता अभी तक भी इतिहासकारों की त्रिकालदर्शिनी प्रज्ञा के लिए चुनौती बनी हुई है। श्रीमद्भागवत महापुराण राधाजी के विषय में रहस्यपूर्ण मौन धारण किए हुए हैं। कहा जाता है कि वहाँ वर्णित एक विशेष गोपी, जिससे कृष्ण का विशेष अनुराग था, वृषभानुदुलारी श्रीराधाजी ही हैं। वैसे तो राधाजी के नाम से 'श्रीराधिकोपनिषद्', 'राधाकातापिनी उपनिषद्' भी मिलते हैं, पर वे उपनिषद् कितने प्राचीन हैं यह कहना कठिन है। ब्रह्मवैवर्त पुराण में वर्णित है—

ब्रह्मस्वरूपा प्रकृतिर्नभिन्ना यथा च सृष्टि कुरुते सनातनः।
शिवश्च सर्वा कलया जगत्सु माया च सर्वे च तया विमोहिता।।

रासेश्वरी श्रीराधा ब्रह्म से अभिन्न है, चराचर जगत् की स्वामिनी है। सृष्टि में भी श्रीराधा सत्ता, ज्ञान और आनन्द रूप से विराज रही हैं। शोभा, कला और रमणीयता जहाँ है, वह उन्हीं के श्रीविग्रह की ही देन है।

श्री रामहरिदासजी शास्त्री वेदांताचार्य ने सबको विस्मय में डालते हुए वेदों तक में राधा तत्त्व को खोज निकाला है। अश्वलायनीय शाखा—ऋग्वेद में इस प्रकार वर्णन है—

राधया माधवो देवो माधवेनैव
राधिका विभ्राजन्ते जनेष्विति।

अर्थात्, श्रीराधाजी के द्वारा श्रीकृष्ण, श्रीकृष्णजी के द्वारा श्रीराधा सुशोभित होते हैं, वे अपने भक्तों में इस प्रकार हैं जैसे एक प्राण दो देह हों।

उक्त विद्वान् ने सामवेद से निम्न उदाहरण दिया है—

अनाद्योयं पुरुष एक एवास्ति तदेवं रूपं विधाय सर्वान् रसान् समाहरति स्वयमेव नायिका रूपं विधाय समाराधन तत्परोभूत तस्मात्तां राधां रसिकानन्दां वेद विदोवदन्ति तस्मादानन्द मयोऽयं लोक इति।

अर्थात्, सबका आदि कारण पुरुष एक ही है, ऐसे उसी एक रूप को दो प्रकार वाला करके सम्पूर्ण रसों को एकत्रित करता है और वह स्वयं ही इसीलिए रमणी रूप धारण कर लीला आराधन में तत्पर होता है इसीलिए श्रीराधा रूप से स्वयं ही मान करके श्रीकृष्ण रूप से अपने आप को मानता है। उस रसिका नन्दिनी श्रीराधा को वेद के रहस्य जानने वाले ही जानते हैं और वर्णन करते हैं। इसीलिए गोलोक आनन्दमय है।

इतिहासकारों के गम्भीर विचार के लिए अथर्ववेद में भी श्रीराधा के दर्शन हैं—

येयं राधायश्च कृष्णे रसाब्धिर्देहश्चैकः क्रीडनार्थ द्विघाऽभूत।

अर्थात्, श्रीराधा और कृष्ण—दोनों एक ही रस के समुद्र हैं पर क्रीडा के लिए दो बने हैं।

राधा-कृष्ण की विश्वविश्रुत गाथा का सबसे अधिक व्यथापूर्ण स्वर है राधा-कृष्ण का जीवनव्यापी दारुण वियोग। अश्लीलता से अंधी हुई आंखों वाले आलोचकों को स्मरण रखना चाहिए कि श्रीकृष्ण केवल 12 वर्ष की बाल्यावस्था में ही गोकुल तज कर मथुरा में कंस का संहार करने के लिए आ गए थे तथा उसके पश्चात् वे वहीं से द्वारका चले गए और जीवन भर व्रज में नहीं आए। जाते समय उन्होंने राधा को कहा था कि मैं कंस को मार कर कल ही वापस आ जाऊंगा। किन्तु वह 'कल' कभी न आया। हरिऔधजी के 'प्रिय प्रवास' में राधा पवन को दूत बनाकर संदेश भेजती है—

मेरे प्यारे नव जलद से
कंज से नेत्र काले,
जाके आए न मधुवन से
औ न भेजा सन्देसा।

मैं रो रो के प्रिय-विरह में
बावली हो रही हूं
जा के मेरी सब दुःख-कथा
श्याम को तू सुना दे।।

श्री चतुरसेन शास्त्री ने अपने भावनाट्य 'राधा-कृष्ण' में उस चित्र को खींचा है जब जीवन के अन्तिम प्रहर में कुरुक्षेत्र में कुंभ के मेले पर राधा-कृष्ण का थोड़े समय के लिए मिलन होता है—

'बहुत दिनों में मिले राधा'

'पर मिले तो, मैं तो कहती थी मिलेंगे और जरूर मिलेंगे।'

'हँस रही हो राधा?'

'हँसूं ना, कितने दिन बाद हँसी हूँ, जानते हो कृष्ण?'

'शायद अस्सी बरस बाद।'

'क्या तुम रो रहे हो कृष्ण?'

'नहीं राधे'

'कृष्ण, बहुत दिन हुए, पर तुम्हें मैं देख सकती हूँ, देखो तुम्हारे सिर पर मोर मुकुट है, कमर में पीतांबर है, हाथ में बंसी है। (सोचकर) न, बंसी नहीं है! बंसी तो मेरे पास है। याद है कृष्ण! जब तुम गोकुल से चले थे तब मैंने छिपा ली थी।'

'याद है राधा'

'कितने बरस हुए कृष्ण?'

'अस्सी बरस'!!'

बस फिर इसके पश्चात् राधा और कृष्ण का इहलौकिक लीला में कभी पुनर्मिलन नहीं हुआ। पावन स्नेह की इस विश्व-दुर्लभ गाथा का यह सबसे अधिक वेदनापूर्ण स्वर महाकवि हरिऔध के कंठ से गूंज उठा है—

सच्चे स्नेह अवनिजन के
देश में श्याम जैसे,
राधा जैसी सदय
हृदयाविश्व प्रेमानुरक्ता,
हे विश्वात्मा! भारत भुव
के अंक में और आवें,
ऐसी व्यापी विरह घटना
किन्तु कोई न होवें।।

राणा प्रताप को नैतिक बल प्रदान करने वाले सन्त श्रीचन्द्र

सिख धर्म के संस्थापक गुरु नानक देव के ज्येष्ठ पुत्र, उदासीन सम्प्रदाय के महान् सन्त पुण्यश्लोक श्री श्रीचन्द्राचार्यजी का जन्म भाद्रपद मास की शुक्ल नवमी के दिन संवत् 1561 में हुआ था। इन चमत्कारी सन्त ने पेशावर, काबुल, कंधार, सिंध और पंजाब में स्मार्त वैदिक धर्म का प्रचार किया। जनता को शासन के अत्याचार से बचाया। कहा जाता है कि जब गुरु नानक देवजी ने गुरु गृह की गद्दी गुरु अंगद देव को दे दी तो श्रीचन्द्रजी ने उपहास में कहा कि 'हुआ क्या यदि गद्दी किसी कोढ़ी कराइ' को दे दी हो।' इस बात से ही कहा जाता है कि दूसरी बादशाही से लेकर 5वें गुरु तक सभी गुरुओं की अंगुलियों में कोढ़ के चिह्न पाए जाते थे। गुरु अर्जुन ने श्रीचन्द्रजी से मिलकर यह कोढ़ क्षमा करवाया था। अमृतसर का सरोवर बनाने के पीछे भी बाबा श्रीचन्द्रजी की ही प्रेरणा थी। गुरु अर्जुन देव ने जब तरनतारन का सरोवर बनवाया तो बार-बार उसका पानी बह जाता था। कहा जाता है कि बाबा श्रीचन्द्रजी ने उसे एक बावली से मटका भरकर वहाँ ले जाने को कहा तब कहीं सरोवर का पानी ठहरा। श्रीचन्द्रजी के जीवन की एक घटना जो प्रायः इतिहास के प्रकाश में अभी तक नहीं आई है, वह है उनकी महाराणा प्रताप से भेंट। उन दिनों मेवाड़ केसरी वन-वन घूम रहे थे। श्रीचन्द्रजी ने उन्हें स्वप्न में दर्शन दिया। प्रातःकाल महाराणा प्रताप उनसे मिलने के लिए गए। श्रीचन्द्रजी ने प्रताप को नैतिक बल दिया तथा कहा कि जीत या हार तो सदा प्रभु के हाथ में है किन्तु धर्म के लिए युद्ध करने वाले पर ईश्वरीय आशीर्वादों की वृष्टि होती है। उन्होंने प्रताप को यह भी बताया कि प्रताप और वे (श्रीचन्द्रजी)—दोनों रघुकुल-गौरव रामचन्द्र महाराज की सन्तान हैं। लव और कुश की सन्तान ने जब लाहौर से प्रस्थान किया तो कुछ सन्तानें नेपाल में जा बसीं, कुछ राजपूताने में और कुछ काशी में जाकर वेद पढ़ने से वेदी कहलाईं। श्रीचन्द्रजी ने प्रताप को बताया कि आप राजस्थान के सूर्यवंशी राजा हैं और हम वेदाध्ययन के कारण वेदी कहलाने वाले सूर्यवंशी क्षत्रिय हैं। दोनों भगवान् राम की सन्तानें हैं और भाई-भाई हैं। इससे प्रताप का नैतिक बल बढ़ा और वह श्रीचन्द्रजी के प्रेम से गद्गद हो गया। कहा जाता है कि भामाशाह को प्रताप की सहायता के लिए सर्वस्व अर्पण करने की प्रेरणा देने वाले भी महान् सन्त बाबा श्रीचन्द्र ही थे।

धरती को तीन डग से मापने वाले बौने ब्राह्मण—वामन

भाद्रपद शुक्ला द्वादशी को वामन द्वादशी का उत्सव मनाया जाता है। अम्बाला नगर के हिंदुओं का यह प्रमुख उत्सव है। वामन की कथा अत्यंत प्राचीन है। त्रिविक्रम विष्णु का यश तो वेदों में भी गूंज रहा है। त्रिविक्रम का अर्थ तीन पग में जगती को मापने वाला ही है। इसका अर्थ तीन विक्रम वाला भी है। विष्णु के तीन पगों से ही त्रिलोकी बनी है, त्रिभुवन खड़ा है।

ऋग्वेदोक्त विष्णु के इस वर्णन का अर्थ और्णवाभ ने यह लगाया है कि विष्णु सूर्य-देवता हैं; उनके तीन पग प्रातः, मध्याह्न तथा संध्या हैं। शाकपूर्णि नामक विद्वान् ने इन्हें पृथ्वी, अन्तरिक्ष और आकाश माना है। त्रिपाद पुरुष नारायण का वर्णन ऋग्वेद के पुरुषसूक्त में भी है। विष्णु आकाश, अंतरिक्ष तथा पृथ्वी—तीनों में वर्तमान हैं। इन तीन पगों से विश्व का नियमबद्ध होना, बलशाली असुर बलि का बांधा जाना स्पष्ट होता है।

शतपथ ब्राह्मण के अनुसार विष्णु ही यज्ञ हैं। यज्ञ प्रथमपद से पृथ्वी, द्वितीय से अंतरिक्ष तथा तृतीय से आकाश का अतिक्रमण कर लेता है।

राजा बलि बलशाली आसुरी-शक्ति के प्रतीक थे। पुराणों में तो वामन का अर्थ बौना है किंतु यजुर्वेद में वामन रुद्र का भी एक विशेषण है जिसकी व्याख्या स्वामी दयानन्द ने इस प्रकार की है—**वामं प्रशस्तं विज्ञानं विद्यते यस्य।** अर्थात् जो विज्ञान तथा प्रज्ञा से युक्त है, वही वामन है।

अथर्ववेद में सूर्य को ही स्पष्ट रूप से विक्रम विष्णु कहा गया है—'आकाश से उत्पन्न जगत् में सर्वप्रथम किरणों वाला, वात के समान शीघ्रगामी, वृष्टिकारी मेघों के गर्जन से यह आदित्य तीनों लोकों में अपना प्रभाव फैला कर हमें हर्षित करें।'

माननीय श्री बाबा साहब आप्टे ने अपने ग्रन्थ 'हमारे राष्ट्रजीवन की परंपरा' में वामन की विस्मयकारी गाथा का एक राष्ट्रीय अर्थ दिया है। हिरण्यकशिपु असीरिया निवासी असुर भारत पर आक्रमण करने आए थे। हिरण्याक्ष का संहार वाराह अवतार रूपी जनशक्ति ने वाराहमूल (बारहमूला, काश्मीर) के स्थान पर किया। हिरण्यकशिपु के संहार के लिए 'नृसिंह' अवतार हुआ जो जनता के क्रोध का विवेकशून्य आकस्मिक विस्फोट था। हिरण्यकशिपु के पुत्र प्रह्लाद का जन्म भारत में हुआ था। भारत का अन्न-जल ग्रहण कर वह भारत भक्त बन गया। उसके राज्य में प्रजा संतुष्ट थी। उसके वंशज बलि का राज्य सुराज्य तो था पर स्वराज्य नहीं था। बलि ने अपने सुराज्य से जनता के हृदय पर भी राज्य कर लिया। इन्द्र का सिंहासन भी डोल उठा। श्रीयुत् आप्टेजी ने प्रह्लाद के राज्य की अकबर से तुलना की है तथा बलि के राज्य की अंग्रेजी-शासन से। 'स्वराज्य की प्यास सुराज से नहीं बुझ सकती।' शासन के सभी स्थानों पर बलि ने असुरों को नियुक्त कर दिया था। इस भीतरी असन्तोष के वातावरण में देवमाता अदिति के गृह में वामन का अवतार हुआ। एक बार उसने हिमालय में छेद करके गंगा को मर्त्यलोक में लाने का विफल प्रयत्न भी किया था। वामन या बौने की बुद्धि प्रायः प्रखर होती है। तीन डग धरती मांगने में निस्पृह वृत्ति व्यक्त होती है। श्री आप्टे के मत में वामन ने जनता के दिलों के भीतर स्वराज्य प्रेम की अग्नि को सुलगाया। राजा

बलि ब्राह्मणों को दान-दक्षिणा से ही संतुष्ट रखता था। वे तनिक भी नहीं बोलते थे। क्षत्रियों का सेना में कोई स्थान नहीं था। शिक्षा का क्रम असुरगुरु विरोचन तथा शुक्राचार्य के तन्त्रानुसार चलता था। नास्तिकता तथा भोगवाद का प्रसार हो रहा था। वामन ने वर्णाश्रम धर्म का प्रचार किया। बलि ने वामन को भी भोगैश्वर्य का प्रलोभन दिखाकर अपने वश में करना चाहा। वामन ने बलि को उसके ही मोर्चे पर परास्त करना चाहा। वे उसके यज्ञ में दक्षिणा के लिए पहुँचे। शुक्राचार्य ने बलि को दान का वचन देने से रोका। व्यवहार-कुशल राजनीतिज्ञ एकाक्ष ही होते हैं। शुक्राचार्य को भी एकांतिक स्वपक्षनिष्ठा के कारण लाक्षणिक रूप में काणा कहा जाता है। वामन को कुछ देकर आंदोलन शांत करने की इच्छा से बलि ने पग भर धरती दान करने का वचन दे दिया। त्रिपाद भूमि की याचना का अर्थ है त्रैवर्णिकों को अपने वर्णविहित-कर्मविहित कर्म करने की सुविधा प्रदान की जाए। इन तीनों पगों की व्याख्या में बलि का सारा शासन हिल गया।

प्रथम पग—बलि अपने यज्ञ बंद करे तथा विरोचन की शिक्षा-प्रणाली को समाप्त किया जाए।

दूसरा पग—क्षत्रियों को राज्यतंत्र तथा सेना में प्रवेश मिले।

तीसरा पग—भारतीय वैश्यवर्ग को व्यापार करने की छूट दी जाए।

तीसरे पग के विस्तार से असुर वर्ग कांप उठा। किंतु वचनबद्ध होने के कारण वामन के तीसरे चरण के आगे भी अपने मस्तक को झुकाना पड़ा तथा इस प्रकार भारत असुर शासन से विमुक्त हुआ। इस कथा के राष्ट्रीय अर्थ को ही ठीक अर्थ बताते हुए श्री आप्टे श्रीमद्‌भागवत से बलि के वामन को कहे हुए निम्न शब्द उद्‌धृत करते हैं—

अथाहमप्यात्म रिपोस्तवान्तिकम दैवेन नीतं प्रसभं त्याजित श्रीः

अर्थात्, हे वामन! वैभव का त्याग करने के लिए विवश करके, नियति ने मुझे तेरे जैसे शत्रु के पास ला पटका है। इससे प्रकट है कि बलि को वामन ने बुद्धिकौशल से हराया था। वामन ने बलि को सुतल नामक पाताल में (दक्षिण भारत में) अपने द्वारा सुरक्षित स्थान में राज्य के कैदी के रूप में रख छोड़ा।

बलि-वामन की यह रोमांचकारी प्राचीनतम गाथा अपने गर्भ में और भी कितने-कितने अद्‌भुत अर्थ छिपाए हुए है यह भावी भारत के पुरातत्त्ववेत्ताओं की गंभीर गवेषणा के उद्‌घाटन से प्रकट होगा।

प्राचीन भारत का महानतम इंजीनियर—विश्वकर्मा

विश्वकर्मा जयन्ती एक अत्यन्त प्राचीन उत्सव है। पर दीर्घकाल तक विस्मरण हो जाने के बाद दो-एक वर्षों से भारतीय मजदूर संघ ने इसे पुनः एक

राष्ट्रव्यापी उत्सव के रूप में महत्त्व दिया है। मजदूर संघ के महामंत्री श्री दत्तोपंत ठेंगड़ी ने अपने एक लेख में साम्यवादी दल द्वारा प्रचारित 'मई दिवस' को मजदूर दिवस मनाए जाने की आलोचना की है, क्योंकि वह पिछले केवल 73 वर्ष से प्रारंभ हुआ है। क्या उससे पूर्व हमारे यहाँ श्रमिक नहीं होते थे? फिर वह एक विदेशी परम्परा का दिवस है। वास्तव में भारतीय परम्पराओं के अनुकूल कोई श्रमिक दिवस है तो वह 'विश्वकर्मा जयन्ती' ही है।

विश्वकर्मा देवताओं के शिल्पी तथा स्वयंभु मन्वन्तर में प्रजापति थे। हस्तशिल्प तथा कलाशिल्प द्वारा वे विविध वस्तुओं का निर्माण करते थे। वेदों में तो विश्वकर्मा यात्वष्टा (तरखान मिस्त्री) नाम स्वयं विश्व के निर्माता ईश्वर के लिए प्रयुक्त हुआ है। त्रिपुरासुर को मारने के लिए भगवान् शंकर के लिए इन्होंने रथ बनाया था। वे वास्तुशिल्प तथा भवननिर्माण शिल्प—दोनों में पारंगत थे। सोने की लंका का निर्माण, श्रीकृष्ण की द्वारका का निर्माण तथा पाण्डवों के लिए इन्द्रप्रस्थ का, जो वर्तमान दिल्ली के स्थान पर अवस्थित था, 5000 वर्ष पूर्व के वैभवशाली नगर का निर्माण भी विश्वकर्मा ने ही किया था। लंका का निर्माण रामायण युग का है तथा द्वारका एवं इन्द्रप्रस्थ का निर्माण महाभारत युग का है। या तो विश्वकर्मा इतनी लंबी आयु वाले होंगे अथवा मूल विश्वकर्मा के उत्तराधिकारी भी 'विश्वकर्मा' उपनाम से पुकारे जाते होंगे।

देवताओं के शस्त्र इत्यादि बनाने में भी वे पारंगत थे, रामायण युग से भी बहुत पहले इन्द्र-वृत्रासुर संग्राम में वृत्रासुर के हनन के लिए इन्द्र ने जो वज्र प्रयोग किया था, उसका भी ऋषि दधीचि की हड्डियों से निर्माण विश्वकर्मा ने ही किया था। हड्डियों से अमोघ अस्त्र बनाने की कला अभी तक आधुनिक विज्ञानवेत्ताओं को भी ज्ञात नहीं है। सम्भवतः वह वज्र अणुबम जैसा मारक अस्त्र था जिससे अन्यथा न मरने वाला वृत्रासुर भी मारा गया। विवस्वान् (सूर्य) के अतिरिक्त तेज को कर्मकार के चक्र (सम्भवतः खराद) द्वारा निकालकर विश्वकर्मा ने विष्णु के लिए सुदर्शन चक्र, शंकर के लिए त्रिशूल तथा इन्द्र के लिए वज्र बनाया।

यज्ञवेदी का निर्माण भी विश्वकर्मा ने किया। क्षौरकर्म (हज़ामत के उद्योग), बढ़ई, सुवर्णकार, कुम्भकार, दर्जी, कृषक, वास्तुशिल्पी—सभी व्यवसायों के आदिप्रवर्तक विश्वकर्मा ही माने जाते हैं। ऋग्वेद में तो कहा है कि पृथ्वी तथा स्वर्ग के निर्माता भी विश्वकर्मा हैं।

भाद्रपद मास की संक्रान्ति को विश्वकर्मा की जयन्ती का दिन माना जाता है। प्रमास नामक वसु की पत्नी महासती योगसिद्धा की कोख से इन देवशिल्पी का जन्म हुआ। विश्वकर्मा का विवाह असुरराज प्रह्लाद की पुत्री 'रचना' से हुआ। उसको 'विरोचना' अथवा 'प्रह्लादी' भी कहते हैं। इनके दो पुत्र हुए—विश्वरूप तथा

वृत्र। विश्वरूप इतना विद्वान् था कि एक बार बृहस्पति के अप्रसन्न होकर चले जाने पर इन्द्र ने विश्वरूप को (असुर कन्या का पुत्र होने पर भी) देवगुरु बना दिया। बाद में उसकी स्वामीभक्ति में संदेह होने पर इन्द्र ने विश्वरूप का वध कर दिया। इसीसे असंतुष्ट होकर विश्वकर्मा ने घोर तप करके 'इन्द्र शत्रु' पुत्र प्राप्त करने की कामना की। वह दूसरा पुत्र वृत्र हुआ जो इन्द्र का महानतम शत्रु वृत्रासुर बना। किंतु राष्ट्रपति इन्द्र के नाश में राष्ट्र का व्यापक अहित जानकर विश्वकर्मा ने अपने पुत्र वृत्रासुर के नाश के लिए स्वयं इन्द्र को ऋषि दधीचि की अस्थियों से वज्र बनाकर दिया, जिससे वृत्रासुर का नाश हुआ। विश्वकर्मा की यह राष्ट्रभक्ति बेजोड़ है। राष्ट्र-हित के लिए स्वयं अपने पुत्र का बलिदान करने वाले उन भारत के महानतम शिल्पी विश्वकर्मा को सारे राष्ट्र की किंवा समूचे विश्व की वन्दना समर्पित हो।

भूमिहीनों को भूमि बांटने वाला सन्त विनोबा

महाराष्ट्र ने अनेक सन्तों को जन्म दिया। उन्हीं की महान् परम्परा में एक महान् सन्त धरती पर नंगे पांव घूमता-फिरता हुआ अपने महान् संदेश से धरती के बेटों को जगाता रहा। उस सन्त के भूदान आंदोलन से कोई सहमत हो अथवा न हो पर उस सन्त के प्रकाण्ड पाण्डित्य, सात्त्विक विनय, हृदय की मानवता तथा आत्मबल के विषय में दो मत नहीं हो सकते।

महाराष्ट्र के एक निर्धन घर में, शीत ऋतु में एक दिन रसोई घर में बैठी हुई एक माता रसोई कर रही थी। उसी चूल्हे के पास बैठा हुआ उसका 16 वर्ष का जवान बेटा आग ताप रहा था। उस लड़के को कुछ कागज फाड़कर अग्नि में डालते देखकर वह माँ अवाक् रह गयी। 'अरे विन्या, यह क्या कर रहा है—मैट्रिक की सनद फाड़कर जला रहा है?' 'हाँ माँ! मैं मैट्रिक का प्रमाणपत्र जला रहा हूँ?

'अरे बेटा, तेरे दस वर्ष के परिश्रम का फल है। इसके बिना तुझे नौकरी नहीं मिलेगी।' 'हाँ माँ! मैं नौकरी करने के लिए पैदा नहीं हुआ हूँ। अपनी विद्या से जनता-जनार्दन की सेवा करूंगा।' और सचमुच वह जनता-जनार्दन की सेवा के लिए जीवन अर्पण करने वाला सन्त विनोबा आज विश्व के रंगमंच पर महानतम महापुरुषों की कोटि में गणना करने योग्य है।

सन्त विनोबा का सन्देश है—'भारत भूमि में मनुष्य का जन्म पाना तो दुर्लभ ही है, यहाँ कीड़े-मकोड़े का जन्म पाना भी दुर्लभ है। यह ऐसी पुण्यभूमि है कि यहाँ की धूलि में जन्तु का जन्म लेना भी भाग्य की बात है क्योंकि सत्पुरुषों के पांव इस धरती पर पड़े हैं।' ऐसा वाक्य मैंने दुनिया की किसी और भाषा में नहीं पढ़ा। हर एक देश में मातृभूमि के लिए प्रेम होता है। परन्तु 'इस भूमि पर जन्तु का जन्म पाना भी दुर्लभ है'—ऐसा भाव अन्यत्र नहीं मिलेगा। भाईयो! ऐसी पुण्यभूमि में जन्म पाना है तो वैसे ही पुण्य के काम किया करो। हमारा घर, परिवार, सम्पत्ति, जमीन—ये सब

चीजें हमारी नहीं हैं। ये सबकी सेवा के लिए हमारे पास आई हैं। योगियों के लिए भी अति दुर्लभ उस महान् सन्त विनोबा को हमारी हृदयहारी वंदना।

धरती को अपने फण पर धारण करने वाले महासर्प—अनन्त

भाद्रपद शुक्ला चतुर्दशी को अनन्त चतुर्दशी उत्सव आता है। यह अनन्त शेषनाग कौन है जो धरती को अपने फण पर धारण कर रहा है? यह गंभीर विचार का विषय है। सहस्र फणधारी कमल तन्तु के समान श्वेत वर्ण, मणिमण्डित मौलि, एक कुंडल धर, नील वस्त्रधारी, अनन्त नाग शेष पुराणों में भगवान् का संकर्षण विग्रह माना गया है जो जगत् का आधार है, संपूर्ण पृथ्वी भगवान् शेष के एक फण पर सरसों के कण के समान टिकी हुई है। प्रलय के समय उनके फूत्कार मात्र की अग्नि से विश्व सूखे गोबर के समान भस्म हो जाता है। प्रभु का यह रूप प्राणतत्त्व का अधिष्ठान माना जाता है। पौराणिक रूपकों पर विचार करने से कुछ बड़े विलक्षण आध्यात्मिक एवं आधिभौतिक अर्थ निकलते हैं। समुद्र के भीतर 'अनन्त' या 'शेष' नाम वाले सहस्रफण वाले सर्प पर विष्णु सो रहे हैं, उनकी नाभि से कमल निकला है और उस कमल पर ब्रह्माजी बैठे वेद गा रहे हैं।

महामनीषी डॉ. भगवानदास ने इसका बड़ा रोचक अर्थ किया है। आकाश को समुद्र भी कहते हैं। इस आकाश समुद्र में किरण सहित सूर्य स्वयं कमल पुष्पवत (तथा ऐसे अनेक अन्य ग्रह रूपी पुष्प) प्लवमान हैं, तैर रहे हैं। उनके ऊपर चेतनमय 'आदित्य नारायण' आदिशक्ति से उज्जीवित जीवों के बीज समूह, लेटे हैं, **ध्येयः सदा सवितृमण्डल मध्यवर्ती। नारायणः सरसिजासन सन्निविष्टः।** शास्त्र का कथन है कि सविता मंडल (सूर्यमंडल) के मध्य में बैठे हुए कमलासन वाले भगवान् नारायण का सदा ध्यान करना चाहिये। उस सूर्य नारायण की नाभि से सप्त रश्मिरूपी कमलनाल निकलती है। एक-एक के सिरे पर एक-एक ग्रह है। उनमें से एक पृथ्वी भी है। यह भी कमल सदृश है। बर्फ के गोले पर यदि कमल को उलटा कर पत्र फैलाकर रखा जाए तो आधुनिक धरती के गोले का रूप ही दिखाई देगा। इस कमल में पृथ्वी नामक ब्रह्म के अंड ब्रह्माण्ड की सूत्रात्मा पार्थिव ब्रह्मा बैठे हैं, यह पृथ्वी ही उनका कमलासन है। 'पृथ्वी पद्ममुच्यते' 'आकाश समुद्र में अनंत शेष' नामक महासर्प, असंख्य मंडल बांधे हुए प्रत्यक्ष ही फैला है। आध्यात्मिक दृष्टि से यह चैतन्य शक्ति ही अनन्त सर्प है जो सब ब्रह्मांडों को सतत घुमा रही है। ज्योतिष-शास्त्र की दृष्टि से 'मिल्की-वे', 'देवपथ', 'आकाशगंगा' का रूप महासर्प का सा है, उसी के हजारों फणों, मण्डलों-चक्रों में से एक; एक के सिर पर रखा हुआ उसका एक अणु हमारा सौर जगत् है। उसे 'शेष' इसीलिए कहते हैं कि अनेक बार सृष्टि, स्थिति, लय होते ही रहते हैं, पर उस अनंत का नाश नहीं होता, वह सदा शेष रह जाता है। प्रलय के बाद 'शिष्ट' शेष बचे तत्त्वों से नई सृष्टि होती है।

इस 'शिष्ट' बचे हुए मनु के आदेश को भी 'शिष्टाचार' कहा जाता है। महाप्रलयों में भी आकाशरूपी समुद्र में प्रधान मूल प्रकृति रूपी अनंत 'शेष' 'शेष' रह जाता है। काल प्रवाह रूपी गरुड दिन-रात रूपी दो पक्षों से सदा उड़ता हुआ, छोटे-छोटे सर्परूपी कुंडलित चक्रवत् युगों को खा जाता है, पर अनंत शेष को नहीं खा सकता। सब कुछ नाश हो जाने पर अंततोगत्वा ब्रह्म तत्त्व ही बचता है। अतः शेष को शेष भगवान् भी कहा गया। उन्हीं 'अनंत' को सान्त की सादर वन्दनाएं समर्पित हों।

अलौकिक प्रज्ञा के स्वामी सन्त अप्पय दीक्षित

इस पुण्यभूमि भारत में समय-समय पर अति दुर्लभ महान् आत्माओं का जन्म हुआ करता है। भाद्रपद मास की पूर्णिमा दक्षिण भारत के एक अलौकिक सन्त मनीषी अप्पय दीक्षित के जयंती उत्सव के कारण पावन हो गई है। दक्षिण भारत के उत्तर आरकोट जिले के अरणी नामक स्थान के निकट ही 16वीं शती में अप्पय दीक्षित का जन्म हुआ था। उनका नाम दक्षिण भारत के सबसे महान् नामों में गिना जाता है। वे संस्कृत के 104 ग्रंथों के लेखक थे, वेदांत विषयक उनके ग्रंथों से उनका प्रकाण्ड पाण्डित्य स्पष्ट झलकता है। उनके वेदांत ग्रंथों में 'चतुर्मत सार-संग्रह' विख्यात है। उसमें 'न्यायमुक्तावली', 'न्यायमयूखमल्लिका', 'नयमणिमाला' तथा 'नय मंजरी'—4 भाग हैं। अप्पय दीक्षित संस्कृत साहित्य, कविता, अलंकार, दर्शन—सभी में अद्वितीय थे। अलंकारशास्त्र पर उनका 'कुवलयानन्द' सर्वोत्तम ग्रंथ माना जाता है। उनकी शिव-स्तुति की कविताएं बड़ी लोकप्रिय हैं। उनका वेदांत भाष्य 'परिमल' नाम से प्रसिद्ध है। एक बार वे अपने ससुराल के गांव में गए। लोगों ने इस प्रकार स्वागत किया कि जैसे कोई देवता गांव में पधार रहे हों। बहुत लोग अप्पय दीक्षित को भगवान् शिव का अवतार मानते थे। जब वे दक्षिण भारत के प्रसिद्ध तिरुपति मंदिर में गए तो वैष्णवों ने उन्हें शैव मानकर उनको अन्दर आने की अनुमति नहीं दी। प्रातः होते ही लोगों ने वहाँ विष्णु की जगह शिव की मूर्ति पाई। श्री दीक्षित के चरणों में गिरकर उन्होंने मूर्ति को पुनः विष्णु रूप में परिवर्तित कराया। जयपुर में श्री अप्पय दीक्षित ने वल्लभ के अनुगामियों से शास्त्रार्थ किया। उनका ग्रंथ 'सिद्धांतलेश' शंकरमत का सार है। वे भारत के महान् ज्योतिर्धरों में से एक थे। उन्हीं की वंश-परम्परा में हुए हैं आधुनिक भारत के महानतम लोक-शिक्षक, जगद्गुरु स्वामी शिवानन्द सरस्वती।

उन महान् प्रज्ञान के अक्षय भंडार, अलौकिक तत्त्वदर्शी श्री अप्पय दीक्षित को गीर्वाण भारती संस्कृत एवं गौरवशाली भारतीय संस्कृति के सभी सपूतों की अनन्त श्रद्धांजलियाँ सादर समर्पित हों।

प्रकाशित : वीर प्रताप (जालन्धर)

21-12-1959

यश के अमर तरानों में गूंजता हुआ ऋषि दधीचि का बलिदान

फूल का सौभाग्य इसी में है कि मुरझाने से पूर्व, कलियों के बिखरने से पहले, सुगन्धि के लुट जाने से पहले तथा रूप के विकृत हो जाने से पहले-पहले ही वह देवता के चरणों पर चढ़ जाए। देह नश्वर है, इसे एक-न-एक दिन मिट्टी में मिल जाना है। अतः जब यह शरीर भरपूर जवानी में हो तभी इस जीवनरूपी पुष्प के किसी महान् आदर्श के चरणों पर समर्पित हो जाने में ही उसकी चरितार्थता है। परहित सर्वस्व लुटाने की महान् शिक्षा देने वाले महर्षि दधीचि की वाणी है—

योऽध्रुवेणात्मना नाथा न धर्म न यशः पुमान
ईहेत् भूतदयया स शोच्यः स स्थावरैरपि।

अर्थात्, हे देव शिरोमणियो! जो मनुष्य इस विनाशी शरीर से दुःखी प्राणियों पर दया करके मुख्यतः धर्म का संपादन तथा उसके साथ ही गौणतः यश का लाभ नहीं करता, वह तो जड़ पदार्थों किंवा पेड़-पौधों से भी गयाबीता है।'

इन्हीं पुण्यलोक महर्षि दधीचि के अभूतपूर्व बलिदान का ही पावन स्मरण कर महाकवि जयशंकर प्रसाद ने लिखा था—

सुना है दधीचि का वह त्याग
हमारी जातीयता का विकास
पुरंदर ने पवि से है लिखा
अस्थि युग का मेरा इतिहास

यह सच है कि हमारी जातीयता का विकास इस स्तर तक हो चुका था कि देश कार्य या देव कार्य में अपनी रीढ़ की हड्डी तक दान देने वाले महर्षि दधीचि जैसे महापुरुष भी पैदा हो गए थे। उन्हीं हुतात्मा महर्षि दधीचि के बलिदान का यश देवराज इन्द्र ने बिजली (वज्र) के चमकीले अक्षरों में नीले आकाश के सीने पर अमिट रूप से लिख दिया है।

अमृतः स हि वंशो यो देवार्थे याति संक्षयम्—देवकार्य में जिस वंशलता ने समूल भेंट चढ़ा दी उसने अमर पद प्राप्त कर लिया। श्रुति भगवती की इस शाश्वत घोषणा को अपने ज्वलन्त जीवन द्वारा चरितार्थ करने वाले हुतात्मा महर्षि दधीचि विश्वभर के बलिदान-वीरों के मुकुटमणि हैं। वैदिक युग के उन पुण्यश्लोक ब्रह्मर्षि का प्रतिदिन प्रातःकाल पावन स्मरण करते हुए भारत के कोटि-कोटि नर-नारी आज तक भी गाते हैं—**ऋषि नमामि दध्यं च देवानामुपकारकं,** अर्थात् देवताओं का उपकार करने वाले प्रातःस्मरणीय ऋषि दधीचि को सादर नमस्कार है। उन्हीं स्वनामधन्य ऋषि की सुभग अर्चना का पर्व 'दधीचि जयन्ती' प्रतिवर्ष भाद्रपद मास की शुक्ल-अष्टमी को आता है।

पौराणिक गाथा

प्रजापति कर्दम की कन्या शान्ति के गर्भ से अथर्वा ऋषि का जन्म हुआ। उन्हीं के गृह में परम तपस्वी, शिवभक्त दधीचि ऋषि का जन्म, भाद्रपद शुक्ल पक्ष की अष्टमी के दिन हुआ। दधीचि ऋषि मानव सभ्यता के उषाकाल में ही प्रकट होने वाली तेजस्वी विभूतियों में से एक हैं, क्योंकि उनका यश ऋग्वेद तक में गूँजता हुआ दृष्टिगोचर होता है। जब दक्ष ने अपने यज्ञ में शिव को आमन्त्रित किए बिना कार्यारम्भ किया तो ऋषि दधीचि वापस अपने आश्रम लौट गए थे। उन शिवभक्त दधीचि की तपस्या से कम्पित होकर इन्द्र ने उनकी तपस्या भंग करने के लिए अलम्बुषा नामक अप्सरा को भेजा था। किन्तु सब व्यर्थ रहा। स्वार्थी इन्द्र ने उन्हें समाप्त करने का भी प्रयत्न किया किन्तु तपस्तेज के आगे इन्द्र भी निस्तेज होकर चला गया। वृत्रासुर संग्राम में जब बार-बार इन्द्र पराजित हुआ तो पुनः दधीचि ऋषि की शरण में आया। उन तपोपूत महात्मा की अस्थि का बना हुआ वज्र ही वृत्रासुर को मार सकता था। घुटने टेककर, झोली फैलाकर 33 कोटि देवताओं के स्वामी इन्द्र ने कहा—'हम आपत्ति में पड़कर आपसे भीख मांगने आए हैं। हमें आपके शरीर की अस्थियाँ चाहिए।' उदारचेता ऋषि ने शरणागत इन्द्र के पिछले कृत्यों का स्मरण तक न करते हुए देव तथा देश के हित के लिए इन्द्र की बात मान ली। योग द्वारा उन्होंने प्राण चढ़ा लिये तथा उनके सम्पूर्ण शरीर पर नमक छिड़क दिया गया। जंगली गायें उनके चर्म को चाट गईं। तब विश्वकर्मा ने दधीचि के मेरुदण्ड से इन्द्र के लिए वज्र बनाया जिसके द्वारा इन्द्र ने वृत्रासुर का वध किया।

इतिहास-दर्शन

इन्द्र-वृत्रासुर की कथा में हमें वैदिक युग की एक महान् घटना के दर्शन होते हैं। प्राचीन भारतीय परम्परा और इतिहास के लेखक श्री रांगेय राघव के मत में भारत के संस्कृत बोलने वाले आर्य ही देव थे। उन्होंने अनेक बार असुरों की परम्परा के ईरान (आयरान, आर्यान, पारमीक अथवा पार्श्व देश) के लोगों ने याद

रखा। उन्हीं ने देव (सुर) को राक्षस माना तथा असुर (अहुर) को देवता मानकर पूजा। उनका ईश्वर भी 'अहूर मज्दा' या सबसे बड़ा असुर (अहुर) है। देव जाति जब ईरान की ओर बढ़ी तो उनका असुरों से संघर्ष हुआ। वहाँ कुछ समय वे वरुण असुर के शासन में रहे। देवों ने स्वराज्य स्थापित करना चाहा। वरुण की मृत्यु के बाद बल वृसय के पुत्र वृत्र ब्यस ने देवों को खेती के लिए नदियों का पानी देना बन्द कर दिया। उस वृत्रासुर को ऋषि दधीचि की अस्थि से बने वज्र द्वारा मारकर इन्द्र राजा हुआ। इन्द्र कोई व्यक्ति नहीं एक पद था, प्रारम्भिक इन्द्र अस्थि से लड़ा था, परवर्ती इन्द्र अयस से। यह बात भी विचारणीय है कि इन्द्र के वज्र का आकार भी मानव शरीर के मेरुदण्ड से मिलता-जुलता है। शतपथ ब्राह्मण में भी वर्णन है—'देव सूर्य के, मनुष्य सोम के और असुर अग्नि के उपासक थे। पारसी (असुर) अभी तक भी अग्निपूजक हैं।

आध्यात्मिक रूपक

ऋग्वेद के प्रथम मण्डल के मन्त्र 1.116.12 तथा 1.119.9 में ऋषि दधीचि द्वारा अश्विदेवों (अश्विनी कुमारों) को मधुविद्या प्राप्त होने का वर्णन है। स्व. पं. शिवशंकर, भूतपूर्व वेदाध्यापक गुरुकुल कांगड़ी, के मतानुसार दिन और रात्रि अश्व (सूर्य) के दो पुत्र हैं। वही अश्विदेव हैं। दध्यङ् और दधीचि एक ही वस्तु है। ईश्वरीय तत्त्व जानने वाले को दध्यङ् कहते हैं—**दधानीति दधिः धाता विधाता परमात्मा, तमंचित पूजयति सम्यङ् जानातीति दध्यङ** है अथवा जो दधि के समान सम्पूर्ण विकृत पदार्थों के तत्त्व को पहुँचा हुआ है वह दध्यङ् है। विद्या स्वयं ही मधु के समान मधुर है। जैसे तीक्ष्ण दंश वाली लाखों मधुमक्खियों के दंश से बिना डरे ही परिश्रम करने वाले व्यक्ति को कठिनाई से मधु प्राप्त होता है वैसे ही विद्यारूपी अमृत को पाने के लिए तप की आवश्यकता है, दिन और रात्रि रूपी काल को बांध कर रखने में विद्वान् ही समर्थ है। कहा जाता है कि **राजा कालस्य कारणम्** किन्तु सत्य यह है कि **विद्वान् कालस्य कारणम्।**

दधीचि ऋषि की अस्थि से वृत्रासुर हनन की घटना के सांकेतिक अर्थ भी विचारणीय हैं। ऋग्वेद के 1.80.16, 1.84.13, 1.84.14, 6.16.44 तथा 9.108 मंत्रों में इस महान् ऋषि के आदर्श बलिदान की झांकी मिलती है।

जैसे मरण के पश्चात् भी अस्थियाँ चिरकाल तक अवशिष्ट रहती हैं वैसे ही विद्वान् की विद्याएँ भी स्थिर रहती हैं। पृथ्वी पर से विद्वान् के उठ जाने के उपरान्त भी इनके पीछे इनकी विद्या रूपी अस्थियाँ रह जाती हैं, जिनकी सहायता से जीवात्मा इन्द्र नाना विघ्नरूपी वृत्रों का संहार करता है। ये विद्याएँ शिष्यों के हृदय में रहती हैं। शिष्य ही विविध कलाओं से सुभूषित पर्वत हैं जिनमें विद्यारूपी धाराएं सदा निकलती रहती हैं। शिष्यों का शरीर ही कुरुक्षेत्र (कर्मक्षेत्र) है जिसके

हृदय के शय्यर्णवान् सरोवर है। इन्द्ररूपी जीवात्मा विद्वानों के हृदय में दधीचि की विद्यारूपी अवशिष्ट अस्थि को पाकर उसके द्वारा दुष्टेन्द्रियरूपी वृत्रासुर का हनन कर, परम विजय प्राप्त करता है।

उन्हीं परमोपकारी, धर्मत्राता, राष्ट्ररक्षक ब्रह्मर्षि दधीचि का संदेश है—

अहो दैन्यमहो कष्टं पारक्यैक्षणभंगुरैः।
यन्नोपकुर्यादस्वार्थै मर्त्यः स्वज्ञातिविग्रहैः।।

अर्थात् जगत के धन, जन, शरीर आदि पदार्थ क्षणभंगुर हैं। ये अपने किसी काम नहीं आते। ओह! यह कैसी कृपणता है, कितने दुःख की बात है कि यह मरणधर्मा मनुष्य इनके द्वारा दूसरों का उपकार नहीं करता।

दधीचि जयन्ती के पवित्र पर्व पर ज्ञान सर्वस्व बलिदानी, वीर, उदारचेता ब्रह्मर्षि दधीचि के चरणों में हमारे हृदय की प्राणपुष्प समर्पिणी नीराजनाएँ सादर समर्पित हों।

13 सितम्बर, 1959 को
दैनिक 'वीर प्रताप' (जालन्धर) में प्रकाशित

भारतीय सभ्यता इतिहास की प्राचीनतम सभ्यता है, उसकी संस्कृति मानव की समृद्धतम संस्कृति।

—प्रो. ओबराय

भगवान् गौतम बुद्ध

भगवान् बुद्ध मानवता की फुलवारी के सुन्दरतम पुष्पों में से एक हैं। मानव इतिहास की महानतम विभूतियों में वे अन्यतम हैं। इनके माध्यम से भारत का शाश्वत धर्म मूर्तिमान हो उठा और विकृत रूढ़ियों के कूड़े-कचरे से उबर कर सच्चा मानवीय धर्म ऐसे निर्मल और सात्त्विक रूप में प्रकट हुआ जिसके सामने न केवल भारत नतमस्तक हुआ वरन् दुस्तर पर्वतों ने और अगाध समुद्रों ने भी उस धर्म के लिये मार्ग छोड़ दिए और वह विश्वधर्म बनकर प्रकाशित हुआ।

भारत-नेपाल सीमा पर कपिलवस्तु के शाक्य गणराज्य में राजा शुद्धोधन के घर जन्म पाने वाले बालक गौतम अथवा सिद्धार्थ को अपने छोटे से कपिलवस्तु राज्य का राज मोहासक्ति में नहीं बांध सका। वे राज्य-वैभव से विरत होकर चीवर पहनकर फकीर की भांति घर से निकले और साधना की पूर्ति होने पर वे आने वाले युग-युग के लिए एशिया के धर्म-सम्राट एवं मानवता के महानतम परिव्राजक के रूप में प्रतिष्ठित हो गए।

सिद्धार्थ के गृह-त्याग का हेतु सामान्य वैराग्य नहीं था। अन्य साधकों को कभी जीवन में कुंठा के आघातों से वैराग्य होता है तो कभी व्यक्तिगत दुःख से छुटकारा पाने के लिये वे वैराग्य धारण करते हैं। सिद्धार्थ को न अपनी व्यक्तिगत कुंठा ने आघात पहुँचाया और न ही वे व्यक्तिगत दुःख-निवृत्ति के लिए परिव्राजक बने। वे समूची मानवता को जन्म, मृत्यु, जरा, व्याधि के विषम दुःख-चक्र से छुड़ाने के लिये अपने राज वैभव को लात मारकर संन्यासी बने।

बहुजन हिताय, बहुजन सुखाय धर्मचक्र प्रवर्तनायः

सिद्धार्थ ने एक सच्चे जिज्ञासु के समान कई गुरुओं—आलार कालाम, उद्दक रामपुत्त के गुरुकुलों में शास्त्रों की शिक्षा प्राप्त की। किन्तु उन्हें मुक्ति मार्ग की प्राप्ति नहीं हुई। वे चलते-चलते गया से कुछ मील पहले निरंजना नदी के तट पर पहुँचे और छः वर्ष तक कठोर तपस्या की। आचार्य रुद्रक के पांच विद्यार्थी भी इनके साथ शिष्य बनकर आ गये थे। उन्होंने आहार की मात्रा घटाते-घटाते चावल का एक कण मात्र लेने का व्रत लिया। फिर केवल पत्ते

खाकर, फिर केवल जल पर, फिर केवल वायु पर निर्वाह करने लगे। उनका शरीर सूखकर कंकाल मात्र रह गया था। एक दिन शरद पूर्णिमा की रात्रि को मगध की एक राजकुमारी सुजाता खीर का एक पात्र लेकर वन देवता के पूजन के लिए आयी। सिद्धार्थ के कंकाल शरीर को ही साक्षात् वनदेवता समझकर उसने खीर का पात्र उनके सम्मुख समर्पित किया। सिद्धार्थ ने अकस्मात् उस खीर को खा लिया जिससे उनकी सूख रही अंतड़ियों में खीर जैसा गरिष्ठ पदार्थ जाने से उन्हें रक्तातिसार अर्थात् खूनी पेचिश हो गयी। उनके पांचों शिष्य यह सोचकर कि गुरु ने व्रत भंग कर दिया है, उनका साथ छोड़ दिया। सिद्धार्थ अपने मलिन और दुर्बल शरीर को धोने के लिए घिसटते हुए निरंजना नदी के तट तक आए, किन्तु आंत की दुर्बलता के कारण अचेतावस्था में उनका शरीर नदी की धारा में बहने लगा। कुछ आगे जाकर उनका शरीर नदी की धारा के बीच में एक शिला पर अटक गया। अर्द्धरात्रि को उन्हें स्वप्न हुआ कि इन्द्र वीणा बजा रहा है। तार ढीली होने के कारण संगीत बड़ा भद्दा निकलता था। तार कसने पर संगीत मीठा होने लगा। पूरी कस जाने पर संगीत उत्तम और मधुर हो गया। तनिक अधिक कसने पर संगीत तीखा, और कसने पर और तीखा, कुछ और कसने पर तार टूट गये और सिद्धार्थ का स्वप्न भी टूट गया। सिद्धार्थ उठकर नृत्य करने लगे—'मुझे जीवन का रहस्य-स्वर्णिम 'मध्यम मार्ग' मिल गया। जीवन की वीणा के तारों को न उतना ढीला छोड़ो कि जीवन लम्पट एवं चरित्रहीन हो जाए और न ही तपस्या में इतना कसो कि इन्द्रियाँ ही सूख जाएं और जीवन का तार टूट जाए। सिद्धार्थ का यह मध्यम मार्ग गीता के मध्यम मार्ग की ही पुनर्प्रतिष्ठा है। कपिलवस्तु का राजवैभव एक अतिसीमा थी और चिथड़े पहनकर, निराहार रहकर शरीर को कंकाल बना देना दूसरी अतिसीमा है। अति का आचार ही अत्याचार होता है। संयमहीन व्यक्ति समाज पर अत्याचार करता है, समाज के लिए अभिशाप बन जाता है तथा अति कठोर तपस्या से शरीर सुखाने वाला अपने प्रति अत्याचार करता है। सिद्धार्थ ने जाना कि जीवन की नौका दोनों अतियों के चट्टानी तटों से बचकर बीच धार में मध्यम मार्ग में चलनी चाहिये।

मध्यम मार्ग की उपलब्धि के पश्चात् वे गया में एक पीपल के वृक्ष के नीचे यह दृढ़ संकल्प करके बैठे कि पूर्ण बुद्ध हुए बिना इस आसन को नहीं छोड़ूंगा। उनकी परीक्षा के लिए मार (कामदेव) ने अपने प्रलोभनों के साथ उनके मन पर आक्रमण किया किन्तु सिद्धार्थ विचलित नहीं हुए। पुनः मार ने भयंकर भय की माया रचकर उन्हें विचलित करना चाहा, किन्तु भय तथा प्रलोभन-दोनों पर विजय प्राप्तकर इसी बुद्ध पूर्णिमा के दिन उन्हें अनन्त ज्ञान की प्राप्ति हुई। बुद्ध हो जाने पर उनका मुखमण्डल सत्य के प्रकाश से देदीप्यमान हो उठा। सिद्धार्थ 'गौतम

बुद्ध' बन गये। शाक्य मुनि भगवान् अमिताभ हो गये। साधना का पथिक लक्ष्य पर पहुँचकर 'तथागत' हो गया।

ज्ञान-प्राप्ति के उपरान्त भगवान् बुद्ध सारनाथ की ओर चले। उन्होंने कहा—मैं वाराणसी जाऊंगा। वहाँ वह प्रदीप ज्योतित करूंगा जो सारे संसार को ज्योति देगा। मैं वाराणसी जाकर वह दुंदुभि बजाऊंगा जिससे मानव जाति जागृत होगी। वहाँ ऋषिपस्तन, सारनाथ में भगवान् बुद्ध के वे पांचों शिष्य, जो निरंजना नदी के तीर पर उनका साथ छोड़ गये थे, पुनः उनके मुखमण्डल का तेज देखकर उनकी ओर आकर्षित हुए। भगवान् ने उन्हें स्नान कराने के उपरान्त प्रथम छः को धर्म दीक्षा दी। भगवान् बुद्ध ने चार आर्य सत्यों की घोषणा की।

प्रथम आर्य सत्य यह है कि संसार में दुःख है। प्रत्येक सुख दुःख में परिवर्तित हो जाता है, प्रत्येक संयोग वियोग में बदल जाता है, प्रत्येक जीवन बुढ़ापे में बदल जाता है, प्रत्येक बुढ़ापा मृत्यु में बदल जाता है और मृत्यु अनेक दुखदायी जनम-मरण के चक्रों में घुमाती रहती है।

दूसरा आर्य सत्य है कि दुःख न शाश्वत है और न आकस्मिक। यदि दुःख शाश्वत होता तो इसका नाश नहीं होता अथवा उससे छुटकारा असम्भव हो जाता। यदि आकस्मिक होता तो इसका कोई भी कारण खोजा नहीं जा सकता था। इस प्रकार कारण का निवारण हुए बिना दुःख से निवृत्ति असम्भव हो जाती है। भगवान् बुद्ध ने बताया कि दुःख के दो प्रमुख कारण हैं—तृष्णा और अविद्या। तीसरे आर्य सत्य में भगवान् ने बताया कि तृष्णा की अग्नि शान्त हो जाने पर दुःखों की आत्यंतिक निवृत्ति हो जाती है, जिसे 'निर्वाण' कहते हैं। चौथे आर्य सत्य में भगवान् ने दुःख निवृत्ति का उपाय—निर्वाण की साधना के अष्टांगिक मार्ग का विधान किया।

(1) सम्यक् दृष्टि, (2) सम्यक् संकल्प, (3) सम्यक् वाणी, (4) सम्यक् कर्मान्त, (5) सम्यक् आजीविका, (6) सम्यक् प्रयत्न, (7) सम्यक् स्मृति और (8) सम्यक् समाधि। संक्षेप में इसी को अष्टांग मार्ग की सम्यक् प्रज्ञा, सम्यक् शील एवं सम्यक् संकल्प के त्रिरत्न नाम से प्रसिद्धि मिली।

पवित्र ज्ञान, पवित्र चरित्र और पवित्र कर्म की त्रिवेणी का स्वर्णिम सूत्र है अहिंसा। मन-वाणी-कर्म से किसी भी प्राणी को दुःख न देना। यह अहिंसा मात्र आचार के सर्वोच्च सिद्धान्त के रूप में नहीं वरन् परम धर्म है।

भगवान् बुद्ध जब एक किशोर बालक सिद्धार्थ के रूप में एक उपवन में टहल रहे थे तो उनके सौतेले भाई देवदत्त के बाण से घायल हंस को उन्होंने बचाया था। उसके जख्मों को अपने नेत्रों के जल से धोया था तथा उस नन्हे पक्षी की पीड़ा की

अनुभूति हेतु अपने अंग में तीर चुभोकर देखा था। तभी उनके मुंह से प्राणीमात्र के प्रति करुणा की वाणी प्रस्फुटित हुई। पीर सबन को एक-सी। उनका अहिंसा मार्ग ही आज विश्व शान्ति का एकमात्र उपाय है। क्रोध से क्रोध शान्त नहीं किया जा सकता। अग्नि से अग्नि को बुझाया नहीं जा सकता तथा कीचड़ से कीचड़ को साफ नहीं किया जा सकता।

भगवान् रूवेला होकर मगध की राजधानी राजगृह में पहुँचे। वहाँ के राजा बिम्बिसार को शिष्य बनाया। वहीं उन्हें दो तेजस्वी विद्वान् शिष्य प्राप्त हुए। सारिपुत्र और मोग्गल्लान। वहीं एक बार तपस्यालीन भगवान् महावीर के भी दर्शन किये। सम्बोधि के एक वर्ष पश्चात् भगवान् कपिलवस्तु गये तथा राजा शुद्धोधन एवं अपने पुत्र राहुल को भी भिक्षु पद की परिव्रज्या दी, श्रावस्ती के एक व्यापारी अनाथपिंड ने जेतवन विहार भगवान् को भेंट किया। भगवान् बुद्ध ने बौद्ध संघ का निर्माण किया जिसका ध्येय मंत्र हो गया—

बुद्धं सरणं गच्छामि। धम्मं सरणं गच्छामि। संघं सरणं गच्छामि।

कौशल के राजा प्रसेनजित् शिष्य बन गये। वैशाली की नर्तकी आम्रपाली का निमन्त्रण स्वीकार कर भगवान् ने ऊँच-नीच का भेद-भाव मिटा दिया। भगवान् के पधारने से आम्रपाली को अनुभव हुआ कि आज वह वैशाली गणराज्य के राजाओं से भी ऊँची हो गई है। ८० वर्ष की अवस्था में भगवान् ने कुशीनगर (उत्तरप्रदेश) में दो (साल के) वृक्षों के नीचे लेटकर महानिर्वाण लाभ किया। अपने प्यारे देश भारत के प्रति उन्होंने अपने अन्तिम उद्‌गार प्रकट किये।

चित्रं जंबूद्वीपं मनोहरं जीवितं मनोहराणाम्

यह भारत देश कितना सुन्दर है तथा यहाँ मनुष्यों का जीवन कितना मनोहारी है।

भगवान् का मानवता को अंतिम संदेश है—'अत्तः दीपो विहरथ' हे मानव! अपनी आत्मा के दीपक के प्रकाश में, अपने विवेक के दीपक के आलोक में संसार में विहार करो।

भगवान् बुद्ध संसार के एक महान् और आद्य संघटक भी थे। उन्होंने अपने अनुयायियों की सुनियंत्रित संघटना निर्माण की और उस संघटना द्वारा अपने मत का प्रचार किया। बुद्ध के इस संघ में तत्कालीन किसी भी प्रकार की भेद भावना को स्थान नहीं था। सारिपुत्र मोग्गल्लान, आनन्द, उपालि जैसे तरुण बुद्धिमान और कर्तृत्व सम्पन्न शिष्यों ने बुद्ध के सिद्धान्तों का त्यागपूर्ण जीवन द्वारा प्रचार किया।

भगवान् बुद्ध के निर्वाण के बाद भी उनका सम्प्रदाय बढ़ता ही गया। अशोक, कनिष्क और श्रीहर्ष जैसे सम्राटों के आश्रय से इस सम्प्रदाय का विस्तार निरन्तर

होता रहा। सम्राट् अशोक ने भारत वर्ष के बाहर अन्य राष्ट्रों में भी बुद्ध मत का प्रचार-प्रसार करने का विशेष प्रयास किया। राज्याश्रय के कारण सैकड़ों उत्साही भिक्षु सिलोन, बर्मा, चीन, जापान, तिब्बत, कोरिया, अरबीस्तान आदि एशिया के अन्यान्य राष्ट्रों में बुद्ध के सिद्धान्तों का प्रचार करने के लिए गए। उन महान् प्रचारकों में भारत के कुछ महान् कलाकार भी थे। बौद्ध मत के साथ-साथ भारतीय चित्रकला, शिल्पकला, आयुर्वेद, कथा आदि कलाओं का भी उन्होंने उन राष्ट्रों में सतत प्रचार किया। डेढ़ हजार वर्षों तक अव्याहत रूप से भारतीय संस्कृति का समस्त एशियाभर में इस प्रकार प्रचार होता रहा। बौद्ध प्रचारकों ने शान्ति मार्ग से डेढ़ हजार साल तक समस्त एशिया को एक सूत्र में संगठित किया था। संसार के अन्य किसी राष्ट्र ने इस प्रकार शान्ति मार्ग से मानवता का संगठन आज तक नहीं किया।

आज भी विश्व के कोने-कोने में बुद्ध के महान् स्मारक उनके धर्म दिग्विजय की घोषणा कर रहे हैं—

लुम्बिनी नेपाल में जन्मभूमि, अफगानिस्तान में बामियान में संसार की सबसे बड़ी 175 फुट ऊँची बुद्धमूर्ति, ब्रह्मदेश में संसार का सबसे मूल्यवान स्वर्णमंदिर श्वेडेगान पेगोड़ा, लंका में अनुराधापुरम में बोधि वृक्ष, सिंहगिरि गुहामंदिर में अजन्ता शैली के भित्तिचित्र, श्रीपाद पर्वत पर भगवान् बुद्ध के चरणों का तीर्थ। थाई देश में नीलम मणि की मूर्तियाँ, वियतनाम में सहस्रभुज भगवान् बुद्ध, इंडोनेशिया में संसार का सबसे बड़ा बौद्ध मंदिर बोरोबुदुर, चीन में दो सौ से अधिक अजंता शैली की बौद्ध गुफाएं, तिब्बत में लामा धर्म, मंचूरिया में मंजुश्री की मूर्तियाँ, मंगोल देश में बौद्ध पाण्डुलिपियाँ, साइबेरिया के बौद्ध विहार, जापान, कोरिया में जीवन्त बौद्ध धर्म, ईरान एवं अरब में मूर्ति के लिये बुद्ध से 'बुत्त' शब्द का प्रचलन, बाइबिल में भारतीय युवक भिक्षुओं थेरापुत्तों अर्थात् स्थविर पुत्रों का वर्णन, अशोक द्वारा सीरिया, मिस्र, मैसेदोनिया, इपिरस, सिरैनिया, उत्तर अफ्रीका में प्रचारक भेजना, जर्मनी में मैक्समूलर, राइस डेविड्स, ओल्डन वर्ग, शोपेनहावर की बौद्ध रचनाएं, इंग्लैण्ड के सर एडविन आर्नोल्ड की लाइट आफ एशिया, जानमेस फील्ड, इलियट, एडिथ सिटवैल, डब्ल्यू वी. यीटस की बौद्ध काव्य रचनाएं अमरीका के अल्डुअस हक्सले तथा रूस के निकोलस रोरिक का अपनी महान्‌विद्वत्ता के साथ बुद्ध भक्त बनना, इंग्लैण्ड का महानतम दार्शनिक बर्ट्रेंड रसेल की यह घोषणा कि यदि उन्हें किसी धर्म को स्वीकार करने को कहा जाए तो वे बौद्ध धर्म को ही स्वीकार करेंगे। ये सब तथ्य घोषणा कर रहे हैं कि भगवान् बुद्ध सदा सर्वदा अजर-अमर हैं और उनका अविनश्वर संदेश विश्वमंगलकारी है।

भगवान् बुद्ध

हिंसा से उन्मत्त पृथ्वी आज चारों ओर
नित्य निठुर द्वन्द्व देते दारुण दुःख घोर।
घोर कुटिल पंथ पर बढ़ते हैं लोग,
लोभ के जटिल बंधन बांध रहे भोग।
सभी प्राणी कातर हैं चाहें एक बार,
तेरा हो धरती पर पुनः अवतार।
करो त्राण, महाप्राण, अमृत संदेश,
एक बार पुनः गूंजे देश औ' विदेश।
जन गण के हृदय का प्रेम पारिजात,
अक्षय मधुकोष से भर कर अवदान।
तेरे आलोक में पंखुड़ियाँ खोल,
दान करे मधु गंध मुक्त अनमोल।
शान्त हे, मुक्त हे, हे अनन्तदेव,
दिव्य दूत, पुण्य के प्रतीक एकमेव।
धरती के उर के सब कलंक और पंक,
धो डालो करुणा की धार से निःशंक।।

विश्व कवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर अपनी उक्त प्रार्थना में करुणावतार भगवान् बुद्ध का श्रद्धापूर्वक आह्वान करते हैं—आज पृथ्वी पुनः हिंसा से उन्मत्त हो गई है। मानवता के द्वन्द्व बड़े निष्ठुर हो गये हैं, दुनिया बड़े कुटिल तथा लोभ के जटिल बन्धनों वाले मार्ग पर चल रही है। आज प्राणी आपके पुनावतार के लिए कातर पुकार रहे हैं। हे अनन्त जीवन के स्वामी! इन प्राणियों का त्राण करो, अपनी आशा की चिरन्तन वाणी को पुनः गुंजाओ। आओ, आज तुम्हारी ज्योति में प्रेम पद्म अपने मधुकोष से भरकर खिल उठे। हे शांत, हे मुक्त! अपनी अनन्त करुणा में धरती तल के सारे कलंकों को धो डालो।

सचमुच निखिल मानवता को प्रेम, शांति, करुणा और प्रज्ञा की अमर सम्पत्ति लुटाने वाले, विश्व के कोटि-कोटि शांति पिपासुजनों को निर्वाण की शीतल सुधा पान कराने वाले, करुणावतार भगवान् बुद्ध का जन्म मानवता के इतिहास की एक अद्वितीय घटना है। यह भी विश्व इतिहास का क्रूर व्यंग्य है कि सारे विश्व की मनीषा पर अपना अखण्ड अधिकार का धर्म स्वयं अपनी जन्मदाता की जन्म भूमि में पूर्णतया लुप्त हो गया। वास्तव में भगवान् बुद्ध के महान् व्यक्तित्व व संदेश का सम्यक् मूल्यांकन प्रायः नहीं हो पाया और अतिशय दुःख का विषय यही है कि यदि उन्हें सबसे अधिक गलत किसी ने समझा तो स्वयं उन्हीं के शिष्यों ने। ईश्वरीय ज्ञान की पावन विभूति भगवान् बुद्ध को स्वयं ईश्वर के अस्तित्व तक से इनकार करने वाला नास्तिक कहना तो स्वयं सत्य का बड़ा अपमान है।

युग के महानतम हिन्दू

यह मानना एक भयंकर भूल है कि भगवान् बुद्ध ने हिन्दू धर्म के विरोध में एक नए धर्म की नींव रखी। बौद्ध दर्शन के प्रकांड पाश्चात्य पण्डित श्रीराइस डेविड्स लिखते हैं—गौतम की सारी शिक्षा-दीक्षा ब्राह्मण धर्म (उपनिषद् धर्म) की थी। वह स्वयं अपने आपको उस सनातन धर्म के सबसे ठीक ज्ञाता मानते थे तथा उनके लिए यह साधिकार कहा जा सकता है कि वे महानतम, योग्यतम एवं उत्कृष्टतम हिन्दू थे।

उनका उपनयन संस्कार भी हुआ था। उन्होंने ब्राह्मण गुरुओं से वेद-वेदांगों की शिक्षा भी पाई थी।

सच्चा ब्राह्मण

भगवान् बुद्ध ने लिखा है—'सुखा सामञ्ञता लोके अथोब्रह्मण्यता सुखा' अर्थात् लोक में श्रमणता सुखकारी है और ब्राह्मणता सुखकारी है। वे फिर कहते हैं—'वाहित पापोति ब्रह्मणो' अर्थात् सच्चा ब्राह्मण वह है जिसने पाप को धोकर बहा दिया है।

भगवान् बुद्ध उपनिषदों की महान् परम्परा के महान् उत्तराधिकारी थे। उन्हें उस परम्परा से पृथक् करके समझा नहीं जा सकता। उपनिषदों की जिस परम्परा का उन्होंने समर्थन, प्रतिनिधित्व, परिवर्धन एवं विकास किया उससे तोड़कर उन्हें समझना उनके प्रति भ्रांति को बढ़ाना है। उपनिषद् ज्ञानधारा ही उनकी जन्मदात्री माँ, उनका लालन करने वाली धाय एवं उनके समस्त दर्शन की प्राणवायु है।

भगवान् बुद्ध ने किसी नये मौलिक मार्ग को खोजने की गर्वोक्ति नहीं की। तथागत ने अत्यन्त विनय से कहा—'मैंने प्राचीन ऋषियों के ही सनातन मार्ग को खोज निकाला है।'

अपने ग्रंथ 'बुद्ध धर्म' में श्री एडमण्ड होम्स नामक पाश्चात्य विद्वान् ने हमें चेतावनी दी है कि 'उपनिषद् ज्ञानधारा को समझे बिना भगवान् बुद्ध को समझना बुद्ध एवं उनकी शिक्षा के सार को ही आंखों से ओझल कर देना है।....उपनिषदों के महान् हिमालय तुल्य तत्त्वज्ञान की भूमिका में ही हम बुद्ध के उन महान् विचारों की विकास-सरणी को समझ सकते हैं।' अपने अध्याय 'बुद्ध के बारे में भ्रांति' में वे लिखते हैं कि बुद्ध का जीवनदर्शन अपने सभी महत्त्वपूर्ण बिन्दुओं पर उपनिषदों के उस महान् आध्यात्मिक जीवनदर्शन से मेल खाता है।

सर्वपल्ली डा. राधाकृष्णन ने उपनिषद् दर्शन और बौद्ध दर्शन में निम्नलिखित समानताओं की ओर अंगुलि निर्देश किया है—

1. दोनों किसी व्यक्ति या पुस्तक से ऊपर अपने निजी अनुभव को महत्त्व देते हैं।

2. दोनों ने रूढ़ियों तथा यज्ञादि कर्मकाण्ड को ज्ञान की अपेक्षा गौण मानकर उसकी उपेक्षा की है।

3. दोनों स्वीकार करते हैं कि परमतत्त्व को बुद्धि से नहीं जाना जा सकता।

4. दोनों का कथन है जीवन का परम लक्ष्य निर्वाण प्राप्त करना है।

5. दोनों कर्म सिद्धांत एवं पुनर्जन्म में विश्वास करते हैं।

6. भगवान् बुद्ध अपने वचनों एवं संवाद में उपनिषद् के भावों का प्रयोग करते हैं।

ईश्वर का अस्तित्व

सामान्यतः बौद्ध दर्शन नास्तिक दर्शन माना जाता है। किन्तु भगवान् बुद्ध का चरित्र ऐसे आस्तिक का चरित्र है कि जो भी उनके सम्पर्क में आया उसकी नास्तिकता सदा के लिए धुल गई। ईश्वर के विषय में आपके मौन का तात्पर्य केवल यह है कि अनादि-अनंत ब्रह्म का वाणी से वर्णन नहीं हो सकता। वैदिक ऋषियों ने भी उस निरुपाधिक ब्रह्म के वर्णन में अपनी हार मान करके 'नेति-नेति' कहा था।

स्पष्ट है बौद्ध धर्म हिन्दू धर्म की एक शाखा है। इसलिए प्रत्येक धार्मिक और मांगलिक कार्य के समय तथा पूजा-संध्या के आरम्भ में भगवान् बुद्ध का स्मरण किया जाता है। यथा—जम्बू-द्वीप भरतखण्डे आर्य्यावर्त्तैकदेशे कलियुगे कलिप्रथमचरणे बुद्धावतारे....।

दिनांक मई 23, 1956

भगवान् बुद्ध को भगवान् शंकराचार्य की श्रद्धांजलि

धराबद्धपद्मासनास्थांघ्रियष्टिः,
नियम्यानिलं न्यस्तनासाग्रदृष्टिः।
य आस्ते कलौ योगिनां चक्रवर्ती,
स बुद्धः प्रबुद्धोस्तु सच्चित्तवर्ती।

भगवान् शंकराचार्य दशावतार की स्तुति करते हुए भगवान् बुद्ध के सम्बन्ध में कहते हैं—पृथ्वी पर पद्मासन बांधकर जिसने एकाग्रता और प्राण संयमपूर्वक नासिका के अग्रभाग पर दृष्टिस्थिर की थी, जो कलियुग के योगियों में चक्रवर्ती हुए थे, वह महाज्ञानी बुद्ध मेरे हृदय देश में विराजमान हों।

करुणावतार भगवान् बुद्ध को हिन्दू धर्म के दशावतारों में स्थान देना भारत के राष्ट्र धर्म का अभूतपूर्व चमत्कार है। जिन बुद्धदेव एवं उनके बौद्ध धर्म को नास्तिक एवं वेदनिन्दक माना जाने लगा था उन्हीं के चारित्रिक गौरव को अपना अलौकिक अर्घ्य चढ़ाते हुए भारत के पुराणकर्ताओं ने भगवान् बुद्ध को भगवान् विष्णु का अंशावतार घोषित करके राष्ट्रीय एकता के सूत्रों को सबल बनाने का महानतम कार्य किया है।

गरुड पुराण की भगवान् तथागत को श्रद्धांजलि है—

वासुदेवः पुनर्बुद्धः संमोहाय सुरद्विषाम्
देवादीनां रक्षणाय, अधर्म हरणाय च॥ (1/149/39)

अर्थात् सुरद्वेषी असुरों को सम्मोहित करने के लिए, देवगणों की रक्षा करने के लिए तथा अधर्म का हरण करने के लिए भगवान् वासुदेव (नारायण) ही पुनः बुद्ध रूप में अवतरित हुए। मत्स्यपुराण की पूजाञ्जलि भी इतनी ही भावपूर्ण है।

कर्तुं धर्मव्यवस्थानमसुराणां प्रणाशनम्।
बुद्धो नवमको यज्ञे तपसा पुष्करेक्षणः॥ (47/247)

अर्थात् धर्म की व्यवस्था करने तथा असुरों का संहार करने के लिए भगवान् विष्णु ने नवम अवतार धारण किया। भगवान् बुद्ध यज्ञों में तपस्यापूर्ण पुष्कर दृष्टि रखने वाले हैं। पुष्कर के कई अर्थ हैं—जल, जलाशय, कमल, बाण, सूर्य आदि। बुद्ध देव ने यज्ञों का खण्डन करके तप पर बल दिया। अतः यह अर्थ हो सकता है कि वे यज्ञों के प्रति तपस्या रूपी बाणों की दृष्टि रखने वाले हैं। वस्तुतः बुद्धदेव ने स्वयं यज्ञों का खण्डन न करके यज्ञों में प्रचलित पापपूर्ण पशुबलि का ही प्रबल खण्डन किया। अतः पुष्करेक्षणः का यही भाव भी है।

पुनर्युवा उज्ज्वल भारत

मैं भविष्य को नहीं देखता, न ही उसे जानने की चिन्ता करता हूँ। किन्तु एक दृश्य मैं अपने मनश्चक्षुओं से स्पष्ट देख रहा हूँ 'प्राचीन मातृभूमि एक बार पुनः जाग गयी है और अपने सिंहासन पर आसीन है—पहले से कहीं अधिक गौरव एवं वैभव से प्रदीप्त। शांत और मंगलमय स्वर में उसकी पुनर्प्रतिष्ठा की घोषणा समस्त विश्व में करो।'

—स्वामी विवेकानन्द

× × ×

विधि की सीमा में अन्यों पर अनुग्रह दया है।

—श्री मज्जगद्गुरु-शङ्कराचार्य
स्वामी निश्चलानन्द सरस्वती

बुद्ध जयन्ती

मैं डॉ. राधाकुमुद मुकर्जी, लोकसभा सदस्य को बुद्ध जयन्ती महोत्सव के विषय में उनके विचारों के लिए साधुवाद और बधाई देना चाहता हूँ। कुछ ऐतिहासिक तथ्यों के आधार पर उनकी मान्यता है कि बुद्ध जयन्ती महोत्सव वास्तव में बुद्ध परिनिर्वाण तिथि के रूप में मनाना चाहिए न कि बुद्ध के जन्म दिन के रूप में।

मैं इन विद्वान् इतिहासकार के विचारों से इन कारणों से सहमत नहीं हूँ—

1. हम महापुरुषों का जन्मदिवस पूरे उल्लास से मनाते हैं न कि उनका मृत्यु-दिवस। हमारी संस्कृति में भी यही प्रथा रही है कि हम सदैव महान् आत्माओं और महापुरुषों के जन्मदिवस ही बड़े उल्लास और हर्ष से मनाते रहे हैं। उनके मृत्यु दिवस या मुहर्रम पर कोई हर्ष-उल्लास नहीं होता।

2. वैशाख की पूर्णिमा केवल बुद्ध भगवान् का निर्वाण दिवस ही नहीं है, इसी दिन उनका जन्म हुआ था और इसी दिन उन्हें परम ज्ञान भी हुआ था।

3. मैं उनके इस तर्क से सहमत नहीं हूँ कि जयन्ती शब्द केवल जन्मदिन से सम्बन्धित है। वास्तव में जयन्ती शब्द संस्कृत के मूल शब्द जय (विजय) से निकला है। जयन्ती का अर्थ है जय या विजय का दिन। हमारा इतिहास दर्शाता है कि हम अनेक सांस्कृतिक विद्वानों और नायकों की जयन्ती मनाते रहे हैं। जिन्होंने राष्ट्र का सांस्कृतिक और सामाजिक उत्थान किया। भगवान् बुद्ध सारे विश्व के लिए महान् सांस्कृतिक अग्रदूत रहे इसलिए यह उपयुक्त ही है कि उनका जन्म दिवस बड़े हर्ष और उल्लास से मनाया जाए।

4. जन्म दिन के लिए उचित शब्द होगा 'जन्म जयन्ती' और मृत्यु दिवस का शब्द 'श्राद्धदिवस' महापुरुषों की जयन्ती भी पूरे देश में हर्ष-उल्लास और खुशी से मनायी जाती है किन्तु उनके श्राद्धदिवस केवल उनके परिवार के निकट सदस्य ही मनाते हैं और कहीं पर भी उसे राष्ट्रीय उत्सव नहीं माना जाता। भगवान् राम, भगवान् कृष्ण, महर्षि वेदव्यास, वाल्मीकि या शंकराचार्यजी की जयन्ती बड़ी

धूम-धाम से मनायी जाती है, उनके श्राद्धदिवस के बारे में किसी को कोई ज्ञान भी नहीं। हाँ, कुछ बलिदानी वीरों के बलिदान दिवस भी मनाये जाते हैं, जिन्होंने मातृ भूमि के लिए अपना सर्वस्व बलिदान कर दिया।

5. क्या इस वर्ष पड़ने वाला महोत्सव वास्तव में बुद्ध का 2500वाँ जन्म दिन या मृत्यु दिन हैं? यह भी एक ऐतिहासिक शोध का विषय है और डॉ. मुकर्जी के वक्तव्य को पक्का वेदवाक्य नहीं माना जा सकता। कई अन्य इतिहासकारों ने कहा है कि यह 2500वाँ महोत्सव बुद्ध के जन्म या मृत्यु काल से पूरा मेल नहीं खाता है। कोई इतिहासकार नहीं मानते कि बुद्ध का निर्वाण सन् 487 B.C. से पहले हुआ था। इस प्रकार उनका परिनिर्वाण 2443 वर्ष पहले हुआ था न की 2500 वर्ष पहले जैसी कि डॉ. मुकर्जी की मान्यता है।

6. अब जब कि पूरे विश्व प्रेस ने यह बड़े जोर-शोर से प्रचार कर दिया है कि 2500वीं बुद्ध जयन्ती 24 मई 1956 को मनाई जाएगी, इन विद्वान् इतिहासकार के विचारों का विशेष लाभ नहीं रहता।

7. यह खेद की बात है कि विश्वव्यापी महापुरुष भगवान् बुद्ध का जन्म वर्ष सही ढंग से ज्ञात नहीं, किन्तु यह सत्य है कि वैशाख पूर्णिमा की रात्रि जब पूरा अन्तरिक्ष और धरती, चन्द्रमा के प्रकाश से प्रकाशित थी, एक प्रकाश की किरण के रूप में दया और करुणा के सागर बालक सिद्धार्थ (गौतम बुद्ध) का धरती पर अवतरण हुआ। उन्होंने जन्म के 36 वर्ष बाद वैशाख पूर्णिमा के दिन ही बोध या बुद्धत्व प्राप्त किया। महात्मा बुद्ध जीवन काल के 80 वर्ष पूरे करने पर वैशाख पूर्णिमा के दिन ही अपना शरीर त्याग कर परम ज्योति में विलीन हो गये। लाखों, करोड़ों लोग उन्हें भगवान् अमिताभ 'असीम प्रकाश के स्वामी' के नाम से पूजते हैं।

आइये, हम इस विश्वविख्यात विभूति भगवान् बुद्ध को अपनी भावभीनी श्रद्धांजलि अर्पित करें और वैशाख पूर्णिमा के इस महोत्सव को बुद्ध जयंती, बुद्ध पूर्णिमा या बुद्ध रजत शताब्दी के रूप में मनाएँ।

23 मई, 1956

प्रवृत्ति की सार्थकता निवृत्ति में है। निवृत्ति की सार्थकता निर्वृत्ति (मुक्ति) में है।

—श्री मज्जगद्गुरु-शङ्कराचार्य
स्वामी निश्चलानन्द सरस्वती

आत्मजयी भगवान् महावीर के कालजयी संदेश का दिव्य दिग्विजय

भारतीय संस्कृति के गौरवसर्वस्व, त्याग, तपस्या, तितिक्षा के तीर्थकल्प तीर्थंकर, जीव दया के दिव्य अवतार, मानवी मनीषा के मणिमुकुट, निर्वाण की कैवल्य शान्ति के राकेश भगवान् महावीर वर्द्धमान, अपने निर्वाण की रजत शताब्दी के वर्ष में अपनी रजत चन्द्रिका की दिव्य रश्मियों के द्वारा दुःखी मानवता को पुनः शान्ति का सुधापान करने का आमंत्रण दे रहे हैं।

भगवान् महावीर भारतीय अध्यात्म वाटिका के एक सुन्दरतम पुष्प थे जिन्होंने भारत के सार्वकालिक एवं सार्वदेशिक चिरंतन आदर्शों को प्रत्यक्ष अपने जीवन में प्रतिफलित कर उन्हें एक नूतन रस एवं माधुर्य के साथ भावी मानवता के लिए अमोघ वरदान के रूप में दिया। जैन धर्म के आदि तीर्थंकर भगवान् ऋषभदेव तो भगवान् विष्णु के अवतार ही थे तथा बाईसवें तीर्थंकर श्री नेमिनाथ भगवान् श्रीकृष्ण के चचेरे भाई थे। भगवान् महावीर वैशाली गणराज्य के कश्यपगोत्रीय क्षत्रिय राजा सिद्धार्थ तथा वसिष्ठगोत्रीय माता त्रिशला के तेजस्वी पुत्र थे जिन्हें सभी प्रकार के दैवी गुणों के वर्द्धन के कारण 'वर्द्धमान' नाम से विभूषित किया गया। बंग देश का वर्द्धमान मण्डल उन्हीं के दिव्य प्रचार के कारण इसी पावन नाम से मण्डित हुआ। एक मत के अनुसार यह प्राचीन मगध देश भी भगवान् बुद्ध एवं महावीर के विहार के कारण ही बिहार प्रदेश बोला जाने लगा।

प्रश्न है कि आज के अतिभौतिकवादी और यान्त्रिक सभ्यता के युग में, जब प्रत्येक मूल्य को उपयोगिता के निकष पर तथा विज्ञान की वेधशाला की परीक्षणनली में जांचा-परखा जाता है तब पचीस सौ वर्ष पहले के अरण्य बहुल भारत देश में दिगम्बर रूप में विहार करके तपस्या द्वारा निर्वाण लाभ करने वाले किसी साधु बाबा का आज के अत्याधुनिक विज्ञान-विकसित सभ्य मानव के लिए क्या महत्त्व है?

क्षत्रियत्व की नूतन व्याख्या—महावीर एवं बुद्ध

क्षत्रिय वह है जो क्षिति को क्षत-विक्षत होने से त्राण करे—**क्षतात् किल त्रायते इति क्षत्रियः।** प्राचीन काल के क्षत्रियों ने धनुष-बाण, खड्ग, भाला

आदि धारणकर क्षिति का त्राण किया था, किन्तु धरती पुनः-पुनः युद्धों, महायुद्धों से क्षत-विक्षत होती ही रही। भगवान् महावीर एवं बुद्ध ने क्षिति को क्षत्रों से बचाने का अभिनव प्रयोग किया। उन्होंने अपने राज वैभव एवं ऐश्वर्य को लात मारकर, मारक अस्त्र-शस्त्रों को त्यागकर, त्याग-तपस्या एवं अहिंसा व्रत द्वारा अपने भीतर की ऐसी अलौकिक वीरता को जगाया जिसके सम्मुख बड़े-बड़े सम्राट एवं साम्राज्य श्रद्धा से नतमस्तक हो गए। उन्होंने मानव के मन से उस हिंसा एवं वैररूपी विष को ही धोने का संकल्प किया जिसके कारण धरती पुनः-पुनः अपने ही बेटों के रक्त से रंजित होती रही।

शूरः शस्त्रेण जयति वीरः मनोबलेन च।
महावीरः आत्म शक्त्या, संजयति भुवनत्रयम्।।

भगवान् महावीर अनेक महापुरुषों के प्रेरक

भगवान् महावीर भगवान् बुद्ध से 35 वर्ष पूर्व अवतरित हुए थे। भगवान् महावीर ने अपने 72 वर्षीय जीवन के 12 चातुर्मास्य राजगृह में बिताए। एक बार जब वे राजगृह के वैभार शिखर पर उग्र तप में लीन थे तब भगवान् बुद्ध एक नवयुवक साधक के रूप में घूमते हुए राजगृह के गृद्धकूट शिखर से नीचे उतरे तथा उन्होंने ऋषिगिरि की कालशिला पर खड़े उग्र तप करते हुए बहुत से जैन साधु (निर्ग्रन्थ महात्मा) देखे। बुद्धदेव ने उन तपस्वी साधुओं से वार्तालाप किया। यह घटना उन्होंने कपिलवस्तु के न्यग्रोआराम में पहुँचकर महानाम शाक्य को सुनाई। भगवान् बुद्ध के जीवन एवं संदेश पर उनके अग्रज भगवान् महावीर के जीवन एवं दर्शन की कितनी सुस्पष्ट छाप है, इस पर बड़े-बड़े इतिहासज्ञ भी विस्मित हैं। बौद्ध धर्म प्रचारात्मक धर्म बन गया जिसके कारण सारे संसार में फैल गया। जैन धर्म संस्कारात्मक धर्म ही रहा जिसके कारण यह अन्य देशों में उतना नहीं फैला। किन्तु, इसके पवित्र संदेश का परोक्ष प्रभाव अनेक देशों के महापुरुषों पर पड़ा। भगवान् महावीर के शान्ति एवं प्रेमतत्त्व की छाप बुद्ध, सुकरात, कन्फ्यूशियस, जरथ्रुस्त्र एवं ईसा पर सुस्पष्ट परिलक्षित होती है।

श्रमण-परम्परा

आत्मविकास हेतु श्रम करने वाला साधक 'श्रमण' कहा जाता है। जैन तीर्थंकरों को श्रमण की संज्ञा दी जाती है। श्रीमद्भागवत महापुराण के अनुसार—

संतुष्टाः करुणा मैत्राः शान्ता दान्ता स्तितिक्षवः।
आत्मारामाः समदृशः प्रायशः श्रमणाः जनाः।।

अर्थात्, श्रमण जन सदा संतुष्ट, करुणा एवं मैत्री भावना से युक्त, शान्त, दान्त, तितिक्षु, आत्मानन्द वाले और समदृष्टि होते हैं। यह 'श्रमण' शब्द प्राकृत

में 'समण' तथा मागधी में 'शमण' हो गया है। अतः इस शब्द के अर्थ में भी एक चमत्कार पैदा हो गया है।

(क) श्रमण = जो तप रूपी श्रम करे। इसमें श्रम के गौरव की महत्ता है, जिसकी आज अत्यधिक आवश्यकता है।

(ख) समण = जो प्राणीमात्र में सम भाव रखता है तथा किसी प्राणी को क्लेश नहीं देता। आज विश्व समता के लिए तरस रहा है।

(ग) शमण = जो सदा शम (शान्ति) में प्रतिष्ठित है तथा शान्ति का पुजारी है। विश्व शान्ति आज ऐसे शमण की बाट जोहती है।

श्रम द्वारा न कोई भूखा रहेगा, न भिखारी बनेगा तथा न ही चोर या ठग। वह अपने परिश्रम की कमाई पर जीएगा।

समभाव द्वारा प्राणी किसी अन्य प्राणी की न अवहेलना करेगा तथा न हिंसा।

शम (शान्ति) व्रत द्वारा मानव न अत्याचार करेगा तथा न महायुद्ध की दावाग्नि भड़काएगा।

विदेशों में श्रमण पद का गौरव

भारत की श्रमण-परम्परा का गौरवशाली इतिहास रहा है। इससे प्रभावित होकर अनेक देशों में यह आदरसूचक पद प्रचलित हो गया—

1. चीनी यात्रियों के वृत्तांत में 'श्रमणेर' शब्द प्रयुक्त हुआ।

2. अरब इतिहास में 'शमब' एवं 'शमनान' शब्द प्रयुक्त हुआ।

3. साइबेरिया के बौद्ध मठों में अभी तक पुजारी को 'समण' कहा जाता है।

4. इजराइल में 'सरमद' नामक एक महान् सन्त हुए।

5. जर्मन देश का नाम 'शर्मण' या 'श्रमण' से व्युत्पन्न हुआ (मैक्समूलर का संकेत)। 'अरब और भारत के संबंध' नामक ग्रन्थ (लेखक मौलाना सुलेमान नदवी) के पृष्ठ 176 पर लिखा है—'संसार में पहले दो ही धर्म थे—एक समनियन, दूसरा कैल्डियन। समनियन लोग पूर्वी देशों में थे। खुरासानवाले इनको बहुवचन में 'शमनान' और एकवचन में 'शमन' कहते हैं।'

6. यूनानी यात्री मेगस्थनीज ने लिखा है कि भारत में 'सरमनाई' (श्रमण) नामक सम्प्रदाय है। वे नगरों और घरों में नहीं रहते, वृक्षों की छाल से अपने को ढकते हैं तथा जल अपने हाथों से मुंह तक ले जाकर पीते हैं। वे न विवाह करते हैं न सन्तानोत्पत्ति।'

7. इजरायल में ईसा के जन्म से पूर्व तीन प्रकार के भारतीय प्रचारक कार्यरत

थे—(क) ऐसीन (सनातनधर्मी संन्यासी), (ख) थेरापुत्त (स्थविरपुत्र, बौद्ध भिक्षु), (ग) साद्दूसिज (Sadducees) (जैन साधु)।

हिंसा के सिद्धान्त (खून के बदले खून) में विश्वास करने वाले यहूदियों के वंश में ईसा मसीह जैसा प्रेम का अवतार कैसे उत्पन्न हो गया? ये पहेली तभी हल होती है जब ईसा के मस्तिष्क पर बौद्ध एवं जैन साधुओं द्वारा अंकित प्रभाव का विश्लेषण किया जाता है। यहूदियों के पूजा-गृह को 'सिनागॉग' (Synogogue) कहा जाता है, जिसकी व्युत्पत्ति है श्रमण (समन)+उपाध्याय अर्थात् तपस्वी गुरुओं का स्थान।

बाइबिल की जीवदया गाथा पर सुस्पष्ट जैन प्रभाव

बाइबिल की कथा के अनुसार एक बार हजरत मूसा तूर पर्वत पर खुदा से मिलने जा रहे थे। मार्ग में बहुत सी चींटियाँ उनके पांव के नीचे आकर कुचली जा रही थीं। मूसा ने सोचा कि वे खुदा से शिकायत करेंगे कि उन्होंने इतनी छोटी-छोटी चींटियाँ क्यों बना दीं? ऊपर पहुँचने पर मूसा ने देखा कि एक चींटी खुदा से आर्त पुकार कर रही है कि 'हे परमात्मा! तुमने इतना भारी मूसा क्यों बना दिया जो एक पांव रखते ही सैकड़ों चींटियों को कुचल डालता है।' मूसा लज्जित हो गया। जीवदया की इस कथा पर कितना मार्मिक प्रभाव जैन दर्शन का है यह किसी से छिपा नहीं है।

जर्मन देश का नाम ही डॉ. मैक्समूलर के मत में शर्मण या श्रमण शब्द से व्युत्पन्न हुआ है। कोलब्रुक नामक पश्चिमी विद्वान् ने 18वीं सदी में 'जैन धर्म का अनुशीलन' नामक ग्रन्थ लिखकर पश्चिमी जगत् का ध्यान पुनः भगवान् महावीर के संदेश की ओर आकृष्ट किया। उनके पश्चात् जॉर्ज वुह्लर नामक जर्मन विद्वान् ने डॉ. हर्मन जैकोबी को सहायक के रूप में साथ लेकर, सारे राजस्थान एवं अन्य स्थान में जैन साहित्य भण्डार की खोज की तथा पांच सौ से अधिक जैन प्राकृत हस्तलिखित ग्रन्थ उन्होंने खरीदकर बर्लिन विश्वविद्यालय, जर्मनी को भेंट दे दिये। इस प्रकार जर्मनी में भी जैन साहित्य पर शोध का एक महान् केन्द्र बन गया।

जैकोबी के शब्दों में, 'अहिंसा की सीमा केवल मनुष्य जाति तक ही नहीं थी, इसका विस्तार जीव मात्र तक भी था। बौद्ध और जैन—दोनों ही किसी जीव को मारना पाप समझते हैं, परन्तु केवल जैन ही 'अहिंसा' को उसके विस्तृत अर्थ में 'परमोधर्मः' मानते हैं और इसके परिणामों को अन्त तक ले गये हैं।'

जर्मन विद्वान् हेल्मथ फॉन ग्लाजनाप्प ने लिखा है, 'भगवान् महावीर, जिन्होंने भारत के विचारों को उदारता दी, आचार को पवित्रता दी, मानवीय गौरव को बढ़ाया, उसके आदर्श को परमात्म पद तक पहुँचाया, जिन्होंने मानव-

मानव के भेद को मिटाया, सभी को धर्म और स्वतन्त्रता का अधिकारी बनाया, जिन्होंने भारत के अध्यात्म संदेश को अन्य देशों तक पहुँचाने की शक्ति दी तथा सांस्कृतिक स्रोतों को सुधारा। उन पर जितना भी गर्व करें, थोड़ा ही है।'

इटली निवासी डॉ. फर्नेण्डो बेल्लिनी फिल्प्पी की श्रद्धांजलि है—'सचमुच महावीर का जीवन अनंत वीर्य से ओत-प्रोत है। उनके अनन्त वीर्य ने ही सत्य और अहिंसा के शाश्वत धर्म को सफल बनाया, जो काल को भी चुनौती देता है।' जर्मन विद्वान् अर्नेस्ट लेगैन ने कहा है, 'भगवान् महावीर अलौकिक महापुरुष थे। वे तपस्वियों में आदर्श, विचारकों में महान्, आत्मविकास में अग्रसर दार्शनिक तथा तत्कालीन प्रचलित सभी विधाओं में पारंगत थे।'

इसी प्रकार डॉ. हेनरिक जिम्मर, श्री मैथ्यू मेके (इंग्लैण्ड), डॉ. अल्फ्रेड डब्ल्यू. पार्कर, डॉ. अल्बेर्टा पोग्गी (जेनेवा), डॉ. फिलक्स वेल्गी, श्री हर्बर्ट वारेन आदि अनेक पाश्चात्य विद्वानों ने करुणावतार भगवान् महावीर के अलौकिक संदेश को श्रद्धा के भाव सुमन चढ़ाए हैं। श्री फ्रेंक आर. मेनसेल (Frank R. Mansell) ने आंग्लभाषा में अपनी काव्यमय श्रद्धांजलि में भगवान् महावीर की गौरव-गीतिका गायी है—

Dispender of darkness	हे तम के हर्ता, हे भगवान्,
Gladdener of hearts	हृदयों के आनन्दप्रदाता,
Bringer of hope	आशा के संदेश दूत हे,
Illumination of the worlds	हे भुवनों के ज्योतिदाता
Truth personified	सत्यमूर्ति, हे सत्यनारायण
Like the sun in splendour	ज्योति ज्वलन्त हे प्रभासूर्य
Bright Mahavira	हे दिव्य दयानिधि महावीर
We bow to thee	हम सब जग का तुमको प्रणाम।

जगद्गुरु आद्य श्री शंकराचार्यजी

शंकरं शंकराचार्यं केशवं बादरायणम्।
सूत्रभाष्यकृतौ वन्दे भगवन्तौ पुनः पुनः।।

जातियों के उत्थान-पतन, उनके जीवन दर्शन की श्रेष्ठता अथवा तुच्छता पर निर्भर है। श्रेष्ठ जीवन दर्शन को प्राप्त करके भी जो जाति उसे जीवन में साकार नहीं करती वह उन्नत नहीं हो सकती। अतः एक महान् दर्शन को जीवन्त रूप प्रदान करने के लिये किसी दृष्टिवान महापुरुष, किसी दार्शनिक ऋषि अथवा द्रष्टा का अवतरण अतीव महत्त्व का है। इस दृष्टि से भारत में जगद्गुरु भगवान् शंकराचार्य का अवतरण भारत के विगत दो सहस्राब्दियों के इतिहास की महानतम घटना है।

अद्वितीय लोकनायक

इस महादेश की कोटि-कोटि सन्तानों को जागरण मंत्र सुनाकर अपने वर्चस्व के प्रभाव से पुनः खड़ा कर देने वाले महापुरुषों में भगवान् शंकराचार्य भगवान् कृष्ण के पश्चात् आने वाले महानतम लोकनायक कहे जा सकते हैं। केवल 12 वर्ष की अल्पायु में ही धर्मरक्षा एवं राष्ट्र जागरण का संकल्प लेकर घर से निकल सारे भारत की उत्तर से दक्षिण, पूर्व से पश्चिम, तीन बार प्रदक्षिणा कर तथा धर्मविजय का शंख फूंक समूचे भारत को पुनः आर्य हिन्दू धर्म में प्रतिष्ठित करना इतिहास का वह अद्वितीय कार्य है जिसके कारण वे इतिहास के यशो मन्दिर में चिरन्तन काल तक पूजित होते रहेंगे।

वेद ज्ञान के रक्षक

वेद, विश्व का आदि ज्ञानकोश तथा भारतीयों की प्रतिष्ठा का मापदण्ड है। विकृत बौद्ध धर्म के कुप्रभाव के कारण वेदों की निन्दा की जा रही थी। त्रयो वेदस्य कर्तारः, भाण्ड, धूर्त, निशाचराः। अर्थात् तीनों वेदों के कर्ता भाण्ड, धूर्त तथा निशाचर हैं। शंकराचार्य के समकालीन महान् पंडित कुमारिल भट्ट एक बार जा रहे थे कि ऊपर से एक मकान के झरोखे से एक भारतीय नारी का गर्म-गर्म अश्रु बिन्दु गिरकर उनके गात्र पर पड़ा। उन्होंने नेत्र उठाकर देखा, वह राजा सुधन्वा की रानी रोकर कह रही थी—हाय! क्या करूं, कहाँ जाऊं, कौन वेदों

का उद्धार करेगा? कुमारिल भट्ट ने शेष जीवन वेदों के उद्धार के लिए लगाया। उस एक नारी के विलाप में स्वयं भारतमाता का विलाप था। श्रुति माता के उद्धार के लिये भगवान् शंकर ने जो कार्य किया वह विश्व इतिहास में बेजोड़ है। जाति की लुप्त श्रद्धा को पुनः प्रतिष्ठित करने वाले इन विलक्षण धर्मदूत के विषय में स्वामी विवेकानन्द कहते हैं—शंकराचार्य ने राष्ट्र के ज्ञान-संगीत-वेद की निगूढ़ अन्तर्ध्वनि को पा लिया था। मैं सदा ऐसा समझता हूँ कि उन्हें अल्पायु में ही एक दृष्टि प्राप्त हो गई थी तथा उसी ज्ञान दृष्टि के सहारे उन्होंने प्राचीन अध्यात्म-संगीत को पुनः प्राप्त कर लिया था। संक्षेप में, उनका समूचा जीवन कार्य वेदों तथा उपनिषदों के सौन्दर्य का ही सजीव स्पन्दन है।

अखण्ड भारत के अमर द्रष्टा

भारत भर में पैदल घूमकर इस अनोखे परिव्राजक शंकराचार्य ने विकृत बौद्ध धर्म के नास्तिकवाद को पराजित किया तथा इस महान् सुविशाल देश के चारों कोनों पर बदरीकाश्रम, रामेश्वरम्, जगन्नाथपुरी तथा द्वारिका में 4 मठ स्थापित कर दिये जो भावी तीर्थयात्रियों के लिए पावनधाम बन गये। इन धामों ने हिमालय से लेकर कन्याकुमारी तक सारे भारत की सांस्कृतिक एकता कायम करने में योगदान दिया वह इतिहास की वाचाल वाणी भी वर्णित नहीं कर सकती। शंकर ने भारत की अनेकानेक भिन्न-भिन्न विचार-सरणियों का अद्भुत समन्वय करके भारत को वह धर्म दिया जो विश्व के असंख्यात झंझावातों तथा तूफानों के बीच भी विनष्ट न हो सका।

राष्ट्र में अद्वैत भावना के संचारक

भगवान् शंकराचार्य के अद्वैत वेदान्त ने उन्हें विश्व मनीषा का मणिमुकुट सिद्ध कर दिया। उसी अद्वैत दर्शन के द्वारा उन्होंने समाज में एकता का मंत्र फूंका। जब तक धनी तथा निर्धन का अभेद, ब्राह्मण तथा शूद्र का अभेद, स्त्री तथा पुरुष का अभेद नहीं होता तब तक आत्मा तथा परमात्मा का अद्वैत सिद्ध हो ही नहीं सकता। प्रत्येक नागरिक यदि राष्ट्र के प्रति अद्वैत भावना रखे अर्थात् राष्ट्र को द्वैत (दूसरा, पराया) न समझे तो राष्ट्र का कभी पराभव नहीं हो सकता। काशी में स्वयं भगवान् ने एक चाण्डाल को गले लगाकर अद्वैत दर्शन का क्रियात्मक रूप दिखाया था।

समाज में सहिष्णुता के प्रचारक

भगवान् शंकराचार्य चरम सीमा के सहिष्णु थे। वे राष्ट्र हित एवं सत्य साधना के लिये शास्त्रार्थ करते थे, केवल कुतर्क के लिये नहीं। मण्डन मिश्र द्वारा प्रारम्भ में कटुवचन प्रयोग करने पर भी शंकराचार्य मंद-मंद मुस्कराते रहे। उन्होंने बौद्धों से शास्त्रार्थ किये किन्तु महात्मा बुद्ध की वन्दना की। वे बलप्रयोग के द्वारा किसी का मत परिवर्तन नहीं करते थे। वे हाथ में वेद तथा भगवा पताका धारण करने

वाले एकाकी संत एक ओर थे तथा अनेक राजाओं के समर्थन एवं सहायता से फैला हुआ विकृत-राष्ट्रद्वेषी बौद्ध धर्म दूसरी ओर था। किन्तु शंकराचार्य की ज्ञानदृष्टि, उदारता एवं सहिष्णुता ने सभी को जीत लिया। हिन्दू धर्म के भी अनेक मत-मतान्तरों को उन्होंने पंथ देवोपासन में सम्मिलित किया। विष्णु, सूर्य, शंकर, शक्ति तथा गणेश में से जो जिसका इष्टदेव है, वह उसी को पूजे तथा शेष देवों के प्रति सहिष्णुता, उदारता एवं आदर का भाव रखे। पंच मन्दिर बनाने की प्रथा भी शंकराचार्य से प्रारम्भ हुई। शिवभक्त 'शिवपंचायत' बनाते जिसमें चारों कोनों में चार देवों के मन्दिर तथा केन्द्र में शिव मंदिर बनाते। इसी प्रकार विष्णु भक्त, विष्णु पंचायतन, सूर्य भक्त सूर्य पंचायतन आदि बनाते।

मातृभक्ति एवं मातृ भूमि—भक्ति के संदेशवाहक

भगवान् शंकराचार्य की मातृभक्ति विलक्षण थी। अपनी महान् माता की आज्ञा एवं आशीर्वाद से वे मातृभूमि भारत का भाग्य निर्माण करने के लिये निकले थे। अपने आध्यात्मिक गौरव में वे भारतमाता की पूजा के साथ-साथ जगन्माता की पूजा में प्रतिष्ठित हुए। इस प्रकार ये जन्ममाता, भारतमाता एवं जगन्माता के पुजारी बने।

सांस्कृतिक राष्ट्रवाद के पोषक

एक बौद्ध भिक्षु से शास्त्रार्थ करते हुए भगवान् शंकराचार्य बताते हैं कि किस प्रकार बौद्धों ने भारत के बाहर के तथाकथित विदेशियों को भारत पर आक्रमण करने के लिये उकसाया। वे कहते हैं, 'शक और हूण बौद्ध धर्म में इसलिये दीक्षित नहीं हुए कि उन्हें बौद्ध धर्म प्रिय था अथवा उन्हें भगवान् बुद्ध से प्रेम था या वे अपने जीवन को आलोकित करना चाहते थे, किन्तु उन्होंने बौद्ध धर्म को अपनी राजनीति के चंगुल में फंसाया....इसी अपनेपन के कारण तो तुम उनके अत्याचारों में सहयोग देते रहे। कनिष्क ने बौद्ध धर्म का पुनःसंस्कार भी किया और साथ ही भारत की स्वाधीनता का भी गला घोंटता रहा....।'

वे जानते हैं कि यदि भारतवर्ष की प्राचीन परम्परा बनी रही, उसकी सामाजिक व्यवस्था बनी रही तो यह सदैव के लिये हमारे चंगुल में नहीं रह सकेगा। इसके विपरीत स्वतंत्रता की चाह को समाप्त करने का सबसे सरल मार्ग है—राष्ट्र की संस्कृति और सभ्यता का विनाश। इन शब्दों में जगद्गुरु शंकराचार्य की महान् राष्ट्रीय दृष्टि के दर्शन होते हैं।

तत्कालीन चीनी आक्रमण के सफल निरोधक

उस काल में भी चीनी राजा के द्वारा हिमालय की सीमा का अतिक्रमण हुआ था, बदरीनाथ के लोग त्रस्त थे, भगवान् शंकराचार्य ने बदरीनाथ के नारदकुण्ड में

डुबकी लगाकर भगवान् विष्णु की मूर्ति निकाली, उसकी वहाँ के मन्दिर में प्रतिष्ठा की, वहीं पर एक महान् मठ स्थापित कर दिया तथा बदरीनाथ को तीर्थयात्रा का महान् धाम बना दिया जिससे वर्ष भर में लोग यहाँ श्रद्धा के साथ जाते रहे तथा पुनः किसी आक्रामक को भारत की सीमा पर अतिक्रमण करने का साहस न हो। आज पुनः चीन ने भारत की सीमा का अतिक्रमण किया है। क्या शंकराचार्य के देशवासी चीनी अतिक्रमण को उखाड़ फेंकने का पुनः शिव संकल्प करेंगे?

भारत-राष्ट्र का अनुभवसिद्ध उद्घोष है—

अग्रतश्चतुरो वेदाः पृष्ठतस् सशरं-धनुः।
इदं क्षात्रं इदं ब्रह्मं शास्त्रादपि शरादपि॥

अर्थात् मेरे आगे चारों वेद है, उनके पीछे शरयुक्त धनुष है, मेरे पास ब्रह्म-तेज है और क्षात्र-तेज भी है। आसुरी शक्तियों को कभी शास्त्र द्वारा तो कभी शस्त्र द्वारा निरस्त करते हुए मैं (राष्ट्र) प्रगति पथ पर प्रयाण करता हूँ।

× × ×

भारत की मृत्युंजयी संस्कृति ही विश्वशांति का एकमात्र साधन है।

—प्रो. ओबराय

जगद्गुरु शंकराचार्य की दार्शनिक प्रतिभा

विश्व में जगद्गुरु शंकराचार्य से अधिक व्यापक आत्मा कदाचित ही कोई अन्य हुई है। वे विश्व के महानतम धर्म-द्रष्टाओं तथा आध्यात्मिक देवदूतों में प्रथम पूजा के पात्र हैं। भगवान् कृष्ण के पश्चात् भारतीय संस्कृति के महानतम उद्धारक वही हुए हैं। उनका अद्वितीय अद्वैत दर्शन जो वैदिक ज्ञान-वाटिका का सुन्दर पराग है, चिन्तन के क्षेत्र में अपना उपमान नहीं रखता। भगवान् शंकराचार्य एक कवि, एक दार्शनिक, एक संत, एक मनीषी, एक धर्मसुधारक तथा सांस्कृतिक देवदूत—वे इन सबका अद्भुत समन्वय थे।

भगवान् शंकराचार्य भारत के मानस सम्राट हैं। भारतीय दर्शन तथा उसी के कारण विश्व दर्शन को जो उनकी देन है, उसकी तुलना विश्व के इतिहास में अन्यत्र नहीं है। उनका चित्र भारत के ज्ञान-सूर्य का चित्र है, भारत के मुक्तिदाता का चित्र है, भारतीय संस्कृति के विश्व विजय हृदयहारी का चित्र है। उनकी स्तुति में भारत के संस्कृत कवियों ने गाया है—

पद्मासीनं प्रशान्त यमनिरतमनंगारि तुल्य प्रभावम्।
फालेभस्मांकर्ता भस्मित रुचिरमुखां भोजनिन्दी वराक्षम्।
कम्बुग्रींव कराम्यामविहत विलसत्पुस्तकं ज्ञान-मुद्रा,
वन्धं गीर्वाणमुख्यैर्नत जन-वरदं भावये शंकराचार्यम्।।

अर्थात्, पद्मासन लगाये हुए प्रशान्त मूर्ति, यम-नियम में लगे हुए साक्षात कामदेव को भस्म करने वाले शंकर के तुल्य प्रभाव वाले मस्तक पर भस्म का त्रिपुण्ड लगाए हुए, भस्मित सुन्दर मुख कमल वाले, नील कमल के समान आंखों वाले, शंख के समान ग्रीवा वाले, एक हाथ शोभायमान पुस्तक लिए और दूसरे हाथ में ज्ञान मुद्रा में ज्ञान उपदेश करते हुए, बड़े-बड़े विद्वानों द्वारा भी वन्दना के योग्य, शरण में आने वालों को महान् वरदान देने वाले उन भगवान् शंकराचार्य का मैं चिन्तन करता हूँ।

सन् 1934 में, अखिल भारतीय दर्शन सम्मेलन में पूर्व और पश्चिम के बड़े-बड़े दार्शनिक एकत्रित हुए थे। उस सम्मेलन के अध्यक्ष थे प्रसिद्ध पश्चिमी दार्शनिक डाक्टर मेकेंजी। उस सभा में सभी ने एकमत से यह प्रस्ताव पास किया

कि शंकराचार्य दुनिया के महानतम दार्शनिकों में से एक होने के कारण सम्मेलन में उनका एक विशाल चित्र लगाना चाहिए।

शंकर का सिद्धान्त

भगवान् शंकराचार्य ने अपने दार्शनिक सिद्धान्त का सार आधे श्लोक में कह दिया—

श्लोकार्धेन प्रवक्ष्यामि, यदुक्तं ग्रंथं कोटिभिः।
ब्रह्मसत्यं जगन्मिथ्या, जीवो ब्रह्मैव नापरः।।

अर्थात्, जो करोड़ों ग्रन्थों में कहा गया है मैं उसे आधे श्लोक में ही कह देता हूँ। ब्रह्म सत्य है, जगत् मिथ्या है तथा यह जीव ही ब्रह्म है, वह अपर (पराया या अन्य) नहीं है। जीव के भीतर के ब्रह्म को जगाना, मानव के भीतर के भगवान् को जगाना, नर के भीतर के नारायण को जगाना वेदान्त का उद्देश्य रहा है। ईश्वर कोई सातवें आसमान पर न हो कर घट के भीतर समाया हुआ है। उसे जानना, उसी का लाभ प्राप्त करना ही सच्चा स्वराज्य है, सच्चा स्वास्थ्य है, सच्ची स्वतन्त्रता है। अपनी आत्मा के सिवा किसी अन्य का दास बनने में गुलामी है। आत्मज्ञान एवं आत्मलाभ में ही मुक्ति है। वेद कहता है—अयमात्मा ब्रह्म। यह आत्मा ही ब्रह्म है।

जगत् प्रपंच

आचार्य शंकर कहते हैं एक समय था यह जगत् नहीं था; एक समय है यह है, एक समय होगा जब पुनः नहीं होगा। अतः यह तीनों कालों में सत्य नहीं। भासमान होते हुए भी असत् होने से माया है, धोखा है। शंकर को मायावादी कहना सत्य का गला घोंटना है। शंकर ने माया को माया कह कर उसको त्यागने तथा ब्रह्म को प्राप्त करने का आदेश किया है। शंकर माया के पुजारी नहीं, ब्रह्म के पुजारी हैं अतः ब्रह्मवादी हैं।

भारतीय संस्कृति के मुक्तिदूत

(क) शंकराचार्य का सबसे बड़ा महत्त्व यह है कि उन्होंने हिन्दुत्व को पौराणिक धर्म से मोड़कर उपनिषदों की ओर उन्मुख किया। जैसे गीता ने बीसवीं सदी में आकर, लोकमान्य के हाथों नवीनता प्राप्त की थी वैसे ही शंकराचार्य के हाथों उपनिषदों की शिक्षा नवीन हो गई।

(ख) अद्वैतवाद को प्रमुखता देते हुए भी उन्होंने विष्णु, शिव, शक्ति, गणेश और सूर्य पर स्तोत्र लिखे, जिससे हिन्दुत्व में समन्वय लाने का आग्रह प्रकट होता है।

(ग) वे आध्यात्मिक सुधारक संत थे। उन्होंने शक्ति मन्दिरों में बलि देने की प्रथा का अनेक स्थानों पर अवरोध किया था।

(घ) बौद्ध संघों के अनुकरण पर उन्होंने संन्यासियों के संघ स्थापित किए तथा भारत की भौगोलिक एकता को प्रत्यक्ष करने के निमित्त देश की चार दिशाओं में चार पीठ भी स्थापित किये।

(ड़) बौद्ध धर्म के विकृत वज्रयानी सम्प्रदाय में जो मद्य, मांस, मछली, मैथुन, माया, मुद्रा इत्यादि का खुला प्रयोग हो रहा था, भगवान् शंकराचार्य ने ऐसे विकृत पाखण्डी सम्प्रदायों का उन्मूलन कर भारत की धर्म गंगा को कलुषित होने से बचा लिया।

आज भगवान् शंकराचार्य की पावन जन्म जयन्ती पर हम अपना तन-मन-प्राण ही अपने उन मुक्तिदूत के चरणों में सादर चढ़ाते हैं।

12 मई 1959
दैनिक 'वीर प्रताप' में प्रकाशित

स्मरण रखो, यदि तुम पाश्चात्य भौतिकवादी सभ्यता के चक्कर में पड़ कर आध्यात्मिकता का आधार त्याग दोगे तो उसका परिणाम होगा कि तीन पीढ़ियों में तुम्हारा जातीय अस्तित्व मिट जाएगा क्योंकि राष्ट्र का मेरुदण्ड टूट जाएगा, राष्ट्रीय भवन की नींव ही खिसक जाएगी। इस सबका परिणाम होगा सर्वतोमुखी सत्यानाश।

—स्वामी विवेकानन्द

× × ×

भारत का भविष्य

क्या भारत मर जायगा? तब तो संसार से सारी आध्यात्मिकता का समूल नाश हो जायगा, सारे सदाचारपूर्ण आदर्श जीवन का विनाश हो जायगा, धर्मों के प्रति मधुर सहानुभूति नष्ट हो जायगी, सारी भावुकता का लोप हो जायेगा और उसके स्थान पर काम रूपी असुर और विलासिता रूपी राक्षसी राज करेगी। धन उसका पुरोहित होगा। प्रतारणा, पाशविक बल और प्रतिद्वन्द्विता ही उनकी पूजा पद्धति होगी और मानवता उनकी बलि-सामग्री हो जायेगी। ऐसी दुर्घटना कभी नहीं हो सकती।

—स्वामी विवेकानन्द

क्या भगवान् शंकराचार्य प्रच्छन्न बौद्ध थे?

(क) कई आलोचक शंकराचार्य पर आरोप लगाते हैं कि वे प्रच्छन्न बौद्ध थे। क्योंकि उन्होंने बौद्धों के समान जगत् को मिथ्या माना। यह आरोप कई आचार्यों ने, द्वैत और त्रेतवादी दार्शनिकों ने भी लगाया है।

(ख) कई आलोचक उन्हें मायावादी कहकर उनकी निन्दा करते हैं।

(ग) कई मध्यकालीन एवं आधुनिक आलोचक यह आरोप लगाते हैं कि उनके जगत् विचार और मायावाद के कारण व्यक्ति की कर्मण्यता का नाश हुआ। समाज की अपार क्षति हुई तथा देश पराधीन हुआ है।

(घ) यह भी आलोचना कि जब जगत् ही मिथ्या है तब सारे कर्म अच्छाई-बुराई भी मिथ्या ही हैं। तब सारा इतिहास मिथ्या है और इतिहास निर्माता महापुरुष एवं अवतारी पुरुष भी मिथ्या ही हैं। तब बौद्ध एवं वेदान्त का भेद भी मिथ्या है। खण्डन-मण्डन शास्त्रार्थ भी मिथ्या ही है। इस प्रकार जगत् के मिथ्या हो जाने से मानव भी निरर्थक एवं मिथ्या रह जाता है।

वास्तव में इन आरोपों पर विचार करने से ज्ञात होता है कि शंकराचार्य पर यह आरोप एवं आक्षेप भी अतिचार एवं मिथ्या ही हैं—

शंकराचार्य के दर्शन को परम्परा का बल प्राप्त है। उन्होंने ब्रह्मसूत्र, गीता और उपनिषदों की ही व्याख्या की है, नया मतवाद स्थापित नहीं किया।

वेदों में वेदान्त का मूल निहित है—

'हिरण्यमयेन पात्रेण सत्यस्यापिहितं मुखम्।
तत्त्वं पूषन्नपावृणु सत्यधर्माय दृष्टये।।'

(शुक्लयजुर्वेदीय ईशावास्योपनिषद्)

हे पूषन। सत्यस्वरूप आप सर्वेश्वर का श्रीमुख ज्योतिर्मय सूर्यमण्डलरूप पात्र से ढका हुआ है, आपके भक्तिरूप सत्यधर्म का अनुष्ठान करने वाले मुझको अपना दर्शन कराने के लिए उस आवरण को आप हटा लीजिए।

अहं त्वं असि त्वं वाऽहमस्मि।

मैं तुम बन जाऊं, तुम मैं बन जाओ....मेरी प्रार्थना और वरदान सफल हो जाय।

गीता में सत् की कसौटी—

नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः।
उभयोरपि दृष्टोऽन्तस्त्वनयोस्तत्त्वदर्शिभिः।। 2/16

कुरुक्षेत्र की रणस्थली में एकत्र 18 अक्षौहिणी सेना, उनके शरीर, उनके महासमर, रक्तपात आदि सभी असत् हैं क्योंकि एक समय था जब वे नहीं थे। मध्य में थे। पुनः कुछ काल बाद नहीं रहे। जिसकी सत्ता त्रिकाल में नहीं है केवल मध्य में रहती है, उसे शंकराचार्य सत्य नहीं मानते। जो त्रिकाल अबाधित सत्ता है, उसे ही सत्य स्वीकारा है।

गीता में माया की स्थापना—

दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया।
मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते।। 7/14

वेदव्यास द्वारा श्रीमद्भागवत आदि में माया की स्थापना की गयी है।

गौडपादाचार्य द्वारा जगत् की प्रतीति का निरूपण किया गया है।

शंकराचार्य द्वारा सत्ता के तीन स्तरों का वर्णन। जगत् की व्यावहारिक सत्ता है, पारमार्थिक नहीं।

आधुनिक विज्ञान भी जगत् को सापेक्ष सत् मानता है, निरपेक्ष सत् नहीं।

परमाणु विज्ञान ने भी सिद्ध किया है कि जो वस्तु जैसे दिखाई देती है वैसी वास्तव में नहीं। चट्टान का टुकड़ा स्थिर प्रतीत होता है किन्तु उसके भी परमाणुओं की बड़ी तीव्र गति चल रही है।

प्रच्छन्नता का अर्थ है वास्तव में कुछ और होते हुए धोखे का वेश धारण करते हुए किसी को ठगने का प्रयास करना। प्रच्छन्न बौद्ध का अर्थ हुआ वैसा व्यक्ति जो वास्तव में हृदय से बौद्ध हो किन्तु बौद्ध धर्म के हित साधन के लिये चालाकी से संन्यासी का वेश धारण कर लिया है। रावण प्रच्छन्न साधु बन गया था। कर्ण प्रच्छन्न ब्राह्मण बनकर कुछ समय के लिए रहा। वैसे ही कुमारिल भट्ट प्रच्छन्न बौद्ध, बौद्ध धर्म के अध्ययन के लिये बने। शंकराचार्य ने बौद्धों का कुछ भी हित साधन नहीं किया बल्कि बौद्धों को शास्त्रार्थ में पराजित कर उन्हें देश से भी निष्कासित कर दिया।

यदि शंकराचार्य बौद्ध भिक्षु बनकर बौद्धों के हित के विरुद्ध गुप्त रूप में कार्य करते तो बौद्ध लोग उन्हें प्रच्छन्न कह सकते थे। किन्तु शंकराचार्य ने ऐसा काम

नहीं किया और बौद्धों ने प्रच्छन्न बौद्ध कहा भी नहीं। वे तो उन्हें अपना सबसे बड़ा प्रकट शत्रु एवं विरोधी मानते रहे।

शंकराचार्य न प्रकट बौद्ध थे न प्रच्छन्न। वे तो प्रकट संन्यासी थे जो खुले आम चुनौती देकर शास्त्रार्थ में विरोधियों को पराजित कर अपने विचारबल से ही दिग्विजय करने में समर्थ थे। अत: उन्हें प्रच्छन्नता की कभी आवश्यकता ही नहीं थी।

शेर को डरने की आवश्यकता नहीं। प्रच्छन्न वेश धारण करने की आवश्यकता नहीं। प्रच्छन्नता सोद्देश्य होती है निरुद्देश्य नहीं। ठग विद्या करने वाला खुले आम प्रकट रूप में अपनी बात कहने और अपना उद्देश्य पूरा करने में असमर्थ अथवा भयभीत रहता है। इसलिए वह चालाकी से धोखाधड़ी का वेश धारण कर प्रच्छन्न रूप में अपना उल्लू सीधा करना चाहता है। शंकराचार्य जैसे विश्वविख्यात महानतम दार्शनिक पर ऐसा आरोप लगाना सर्वथा अनुचित है।

किसी भी विचार का तार्किक परिणाम विचारक के अपने जीवन की कृति से आंका जाता है। यदि शंकराचार्य का दर्शन मानव को अकर्मण्य बनाता है तो उसका सबसे प्रथम परिणाम तो द्रष्टा के निजी जीवन पर होना चाहिये। किन्तु शंकराचार्य के समान कर्मठ व्यक्तित्व भारतीय इतिहास में खोजने पर भी दूसरा नहीं मिल सकता। यदि उनका दर्शन उन्हें ही अकर्मण्य नहीं बना सका तो अन्यों को, दर्शन के अध्येताओं को अकर्मण्य क्योंकर बनायेगा?

शंकराचार्य को मायावादी कहना भी अन्याय है। भौतिकवादी भूत को परम सत् मानता है। अध्यात्मवादी आत्मा को परम सत् मानता है। इसी तरह जो माया को परम सत् माने वही मायावादी होगा। किन्तु शंकराचार्य माया को नितान्त मिथ्या मानते हैं। अत: वे मायावादी नहीं ब्रह्मवादी थे।

शंकराचार्य माया का निराकरण कर जीवों को ब्रह्मलाभ कराने के लिये दर्शन प्रस्तुत करते हैं। जीवों के तीन ताप, पंचक्लेशों का निदान करते हुए उन्होंने मायारूपी उपाधि-व्याधि को दर्शाया है। जैसे डॉक्टर रोग का निदान करके रोग के निराकरण के लिये उपचार करता है तो उसे रोगवादी नहीं कहा जायेगा और उसके औषधालय को रोगालय कहना अनुचित होगा।

शंकराचार्य जैसा समाज सेवक, धर्मसंस्कारक, राष्ट्रनिर्माता भी अन्य कोई नहीं हुआ।

जहां छोटे-छोटे राजा-रजवाड़े चप्पा-चप्पा भूमि के लिये परस्पर रक्तपात करते हुए देश के हजारों टुकड़े बनाते रहे, वहां शंकराचार्य जैसे निर्लिप्त महापुरुष ने भारत को एक सुदृढ़ सांस्कृतिक एकता में निबद्ध किया। राष्ट्र के महानतम निर्माताओं में वे सबसे शिरोमणि गिने जायेंगे।

पश्चिम में राष्ट्र राजनीतिक इकाई से बनते रहे इसलिए सारे यूरोप की सभ्यता, संस्कृति और धर्म एक होते हुए भी बीस राष्ट्र बन गये। इसकी उलट भारत में राष्ट्र एक सांस्कृतिक इकाई का नाम है। इसलिए राज्य अनेक और राजे देशी और विदेशी होने पर भी भारत अभी तक एक बना रहा। यह सब शंकराचार्य की ही कृपा है।

पारमार्थिक स्तर पर ब्रह्मज्ञान प्राप्त कर लोकसंग्रह के लिये व्यावहारिक स्तर पर निर्लिप्त भाव से कर्म करने की प्रेरणा एवं जीवन का प्रत्यक्ष उदाहरण शंकराचार्य ने ही प्रस्तुत किया है। कर्तव्य की दृष्टि से जगत् को व्यावहारिक सत् मानकर उत्तम से उत्तम कर्म करना चाहिए। किन्तु कर्म निर्लिप्त भाव से करने के लिये निरन्तर स्मरण रखना चाहिए कि जगत् क्षणभंगुर, अनित्य है। इसलिए इसके मोहपाश में फंसना उचित नहीं है। मनुष्य प्राय: जो कर्म करता है, जिन व्यक्तियों के सम्पर्क में है उन वस्तुओं एवं व्यक्तियों के प्रति उसका ममता भाव बन जाता है। जिससे उसका अपना ही अहित हो जाता है। जगत् का हित करते हुए यदि अपना ही अहित हो गया तो यह घाटे का ही सौदा है। दूसरे की अल्पसेवा हुई और स्वयं 84 लाख योनियों के फेर में पड़ गया। यह बुद्धिमत्ता नहीं। फिर वस्तुओं, व्यक्तियों से मोह हो जाने के कारण जगत् का भी हित न होकर अहित होने लगता है।

सम्राट् भूमि के टुकड़े पर शासन करता है। उसे भूमि से मोह होता है, वह भूमि विस्तार और राज्य विजय के लिये संघर्ष, रक्तपात करता है। परिव्राजक, अलिप्त होकर निर्मल भाव से विश्व की सेवा करता है तथा भूमि पर राज्य न करके मानवों के हृदयों पर राज्य करने लगता है। जहां सम्राटों की सेनाएं हार जाती हैं, वहां परिव्राजक बिना सेना के केवल दण्ड-कमण्डलु लेकर एक अलौकिक दिग्विजय कर लेता है।

परिव्राजक हृदयों पर शासन करने के कारण वहां जनता नि:स्वार्थ भाव से, नि:शुल्क सेवा समर्पित करती है। सेवा ही नहीं स्वयं उपहार के रूप में फल, मिठाई आदि लाते हैं और उसी में एक कण प्रसाद के रूप में पाकर अपने को कृतकृत्य समझते हैं। वहीं राजा के यहां सेवा मोटा-मोटा वेतन लेकर करते हैं। वेतन में थोड़ा विलम्ब हो गया या उन्हें अहसास हुआ कि वेतन कार्य की अपेक्षा कम दिया जा रहा है तो विद्रोह, बगावत कर देते हैं। जबकि परिव्राजक को नि:शुल्क श्रम यानी तन, मन और धन तीनों समर्पित करते हैं।

संसारी लोग छोटी-छोटी तुच्छ कामनाओं में फंसे रहते हैं और कामनापूर्ति के लिए इस विषयों के संसार को सत् मान लेते हैं। किन्तु निष्काम कर्मयोगी अपने समस्त कर्म प्रभु की प्रीति के लिये करता है, अपनी या किसी अन्य की कामनापूर्ति के लिए नहीं। इसलिए कामना की अपूर्ति होने पर भी न दु:खी होता

है, न कर्म छोड़ता है और न परिस्थिति की भयंकरता से भयभीत होता है। स्वामी शरणानन्दजी का कथन है—

जो चाहते हैं सो होता नहीं,
जो होता है सो भाता नहीं,
जो भाता है सो रहता नहीं।

चाहने और होने के बीच की खाई से दुःख होता है। होने और भाने के बीच अन्तर होने से भी दुःख होता है। भाने वाली वस्तु के प्रति मोह हो जाता है इसलिए उसके नाश या देहांत से पुनः दुःख होता है। इसलिए निष्काम भाव एवं आचार होना दुःख से बचने का सबसे उत्तम उपाय है। जब तक संसार को सत् मानते रहेंगे तब तक उसकी चाह बनी ही रहेगी। जब उसकी नश्वरता एवं असत्यता का बोध हो जायेगा तब उसके प्रति वितृष्णा एवं वैराग्य उत्पन्न हो जायेगा। भर्तृहरि सारा राज्य त्यागकर वन की ओर जा रहे थे। उन्हें एक स्थान पर एक गोल अशर्फी चमकती हुई दिखाई दी। उनके मन में विचार आया कि जंगल में यह काम आयेगी। ज्योंही लपककर हाथ बढ़ाया तो ज्ञात हुआ वह अशर्फी नहीं किसी के मुख से थूका हुआ बलगम है। जो धूप में चमक रहा था। जब आदमी को बोध हो जायेगा कि संसार की वस्तुएं तृण या थूक के समान त्याज्य हैं तो वह ध्येयमार्ग की ओर बढ़ने वाला कर्मवीर संसार के बड़े से बड़े प्रलोभन से भी न विचलित होगा और न मोह बंधन में बंधेगा। ऐसे कर्मयोगी की कर्मशक्ति संसार की मोह-माया से मुक्त होकर और अधिक चमक उठेगी। संसार की अनित्यता से मुक्त होने का संदेश देते हुए भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं—**अनित्यमसुखं लोकमिमं प्राप्य भजस्व माम्। 9/33, गीता**—अर्थात् इस अनित्य सुखहीन संसार को प्राप्त कर इसमें न फंसते हुए मुझ पूर्ण पुरुषोत्तम, परब्रह्म परमेश्वर की आराधना कर। यह संतोष का विषय है कि आलोचकों ने जगत् को अनित्य कहने वाले भगवान् कृष्ण को भी प्रच्छन्न बौद्ध नहीं कह दिया।

शंकराचार्य का संसार के प्रति वैराग्य का गलत अर्थ लगाने के कारण मध्यकाल के संतों ने परलोकवाद, जगत् मिथ्यात्व आदि का जैसा प्रचार किया उसके कारण समाज की कर्मण्यता को क्षति अवश्य पहुंची। किन्तु औषधि का दुरुपयोग करने में दोष रोगी का ही है वैद्य या उसके निर्माता का नहीं।

मलूकदास कहते हैं—

अजगर करे न चाकरी, पंछी करे न काम।
दास मलूका कह गये सबके दाता राम।।

कबीर कहते हैं—

रूखी सूखी खाय कर ठण्डा पानी पीव।
देख परायी चूपड़ी मत ललचाओ जीव।।

संतोष की अशुद्ध व्याख्या से भी राष्ट्र की महत्त्वाकांक्षा-विजिगीषा मर जाती है। शंकराचार्य का मन्तव्य ऐसा कभी नहीं था। उन्होंने स्वयं सामाजिक एवं आध्यात्मिक क्षेत्रों में दिग्विजय करके दिखाया और राष्ट्र को चिरंतनजीवी बनाने के लिये सांस्कृतिक एकता का सम्पादन किया। वैराग्य और संतोष में यह विवेकपालन करना चाहिये कि संतोष हमें होना चाहिये जो कुछ हमारे पास है। परन्तु उसमें कभी नहीं होना चाहिये जो कुछ हम हैं। We should be contented what we have, but not what we are. अर्थात् वस्तुओं में संतोष होना चाहिये किन्तु आत्मविकास में कभी संतोष नहीं होना चाहिये। जीवनभर अधिक से अधिक आध्यात्मिक विकास करना चाहिये। शंकराचार्य के दर्शन का उचित पालन करने से व्यक्ति, समाज, राष्ट्र और मानव मात्र का बड़े से बड़ा कल्याण साधन हो सकता है।

पेट के कीड़े और आँख की गर्मी दूर करने के लिये औषधि बनाई गई। पर हमने आँख की औषधि पेट में और पेट की औषधि आँख में डाल ली और पेट और आँख की अधिक क्षति की तो यह दोष औषधि का नहीं औषधि के प्रयोग करने वाला का है। वैसे 'जगत् मिथ्या है' का प्रतिपादन करके बताया इसमें फंसो नहीं, निर्लिप्त और निष्काम भाव से इसके प्रति कर्म करो। इससे आसक्त मत होओ। क्योंकि यह मिथ्या है और ब्रह्म सत्य है। उसी की प्राप्ति के लिये कर्म करो। पर हमने उलटा किया जगत् को सत्य मान लिया है और भगवान् को मिथ्या। जिसके कारण आज समाज में बुराइयां आ गई हैं।

संसार में प्रत्येक जीव जो-जो चाहते हैं वैसा-वैसा हो नहीं सकता। संसार में सभी की अपनी-अपनी चाहना है। उसके अनुसार संसार में सबकी चाहना पूर्ति नहीं हो सकती है। जैसे कि मैं चाहता हूं दर्शन का पंडित बनना, पर ऐसा नहीं हो पाता है। और जो होता है उससे हम संतुष्ट नहीं होते। वह हमारे मन के अनुकूल नहीं होने के कारण उससे संतुष्ट नहीं रहते हैं। और जो मन के अनुकूल होता है वह अधिक देर तक टिकता नहीं। इस तरह हम तीनों स्थितियों में संतुष्ट नहीं रह पाते हैं कि जो चाहते हैं सो होता नहीं। जो होता है जो भाता नहीं। जो भाता है सो टिकता नहीं।

मित्रस्याहं चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षे।
मित्रस्य चक्षुषा समीक्षामहे।। यजु., 36/18

मैं मनुष्य क्या, सब प्राणियों को मित्र की दृष्टि से देखूं! हम सब परस्पर मित्र की दृष्टि से देखे!

सन्त कबीर ने धार्मिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक-क्रांति का सूत्रपात किया था

महात्मा कबीर शान्ति के यशस्वी कवि और आत्मा के अमर गायक थे

भारत का सच्चा इतिहास केवल राजाओं, रानियों का अथवा आक्रमणों और युद्धों का किस्सा मात्र नहीं है, वह तो उसकी चिरंतन जीवी शाश्वत आत्मा का अमर तराना है—आध्यात्मिक साधना का वह अजस्र प्रवाह जो मानव के अन्तरतम से झरने के रूप में फूट कर अबाध गति से सभी राजनैतिक उद्वेलनों के भीतर से भी सदा प्रवहमान रहता हुआ शासनों और रूढ़ियों के विकृत प्रतिबन्धों को खण्ड-खण्ड करता हुआ शाश्वत गति से बहता है। मध्यकालीन भारत के पुण्यश्लोक सन्तकवि महात्मा कबीर एक ऐसी अद्‌भुत आध्यात्मिक क्रान्ति के मन्त्रदाता थे जिसके कारण न केवल भारत का ही वरन् सकल मानवता का शीर्ष उन्नत हुआ है। यदि कभी मानवता की ऐसी सर्वोत्कृष्ट तथा सर्वदुर्लभ आत्माओं की गणना हो, जिन्हें 'मानवता के गौरव' तथा 'धरती के फूल' कहलाने का सम्मान प्राप्त है तो अमर वैभव तथा शाश्वत गौरव के उस मन्दिर में हमारे इस 'शान्ति के यशस्वी कवि' तथा 'आत्मा के अमर गायक' महात्मा कबीर का पूज्य आसन अवश्य होगा। कबीरजी का पावन नाम आने वाले युगों में यश के अमर तरानों में सदा गूंजता रहेगा।' इन शब्दों में प्रो. हरवंशलाल ओबराय, अध्यक्ष दर्शन विभाग, डी. ए. वी. कालेज जालन्धर तथा भूतपूर्व संयोजक पंजाब प्रादेशिक हिन्दी, साहित्य संगम ने कबीर जयन्ती के पावन पर्व पर सन्तकवि कबीर को एक वक्तव्य में श्रद्धांजलि समर्पित की।

क्रांतदर्शी कवि कबीर के दर्शन के धार्मिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक महत्त्व पर प्रकाश डालते हुए उन्होंने कहा है—

'कबीरजी की कविता एक युगान्तरकारी रचना है। संत कबीर संसार की उन महानतम विभूतियों में से एक हैं जिन्होंने अपने सबल विचारों की सत्य एवं अहिंसा रूपी पूर्ण शक्ति से इस महादेश में एक धार्मिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक संक्रांति

का सूत्रपात किया। कबीरजी के रहस्यवादी गीतों से स्फूर्ति प्राप्त कर विश्वकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने गीतांजलि के अमर गीतों की रचना प्रारम्भ की तथा विश्व में सम्मान पाया। कबीरजी के निर्मल तथा पवित्र धार्मिक विचारों से प्रभावित हो गुरु नानक ने 'सिख धर्म' की नींव रखी जिन की धर्म पुस्तक 'गुरु ग्रन्थ' में कबीरजी के दोहे तथा शब्द गूंज रहे हैं। कबीरजी के ही उदात्त सांस्कृतिक आदर्शों से प्रेरणा पाकर महात्मा गांधी ने सरल जीवन तथा उच्च विचार का पुनः उद्घोष किया।'

प्रो. ओबराय ने सभी साहित्य एवं संस्कृति के प्रेमियों से अपील की है कि वे सन्तोष तथा शान्ति के देवता भारत की महान् आत्मा महात्मा कबीर को अपने हृदय की हरी-भरी क्यारियों के श्रद्धासुमन चढ़ा कर अपने महान् सांस्कृतिक कर्तव्य का पालन करें।

दैनिक 'वीर प्रताप' में प्रकाशित

मुझे लगता है पाश्चात्य विज्ञान को जीवित रखने के लिये पूरब से कुछ रक्त संचार की आवश्यकता है क्योंकि पश्चिमी विज्ञान आध्यात्मिकता की कमी के रोग से ग्रस्त है।

—एडविन श्रोडिंजर

अन्यत्र नोबेल पुरस्कार विजेता परमाणु वैज्ञानिक श्रोडिंजर छांदोग्य उपनिषद् (छठा अध्याय) को उद्धरित करते हैं जिसके अनुसार 'आप वह असीम आत्मा हैं।' 'तत्त्वमसि'। उसी प्रकार प्रोफेसर J.B.S. हाल्डेन, एक नास्तिक ब्रिटिश माइक्रोबायोलोजिस्ट जब जर्मनी में अपने मित्र की माइक्रोबायोलॉजी की प्रयोगशाला में गये वहाँ पर भी उन्होंने वही उपनिषद् संदेश—'तत्त्वमसि' को लिखा हुआ देखा। उन्होंने कहा, यदि कोई भी यह सत्य आत्मसात् कर ले तो वह संसार का सबसे सुखी व्यक्ति होगा।

× ×

हिन्दुत्व का स्वभाव है कि वह जितना ही परिवर्तित होता है, उतना ही अपने मूल स्वरूप के अधिक समीप पहुंच जाता है।

—रामधारीसिंह दिनकर

सन्त ज्ञानेश्वर का सर्वात्म-दर्शन

यदि भारत ने विश्व भुवन में गौरव का पूज्य स्थान प्राप्त किया है तो राजनीतिज्ञों अथवा कूटनीतिज्ञों के कारण नहीं वरन् उन ब्रह्मज्ञानी सन्तों एवं आत्मदर्शी अवतारी महापुरुषों के कारण, जिन्होंने न केवल मानव-मानव के बीच की भेद भरी प्राचीरों को अपने अनन्त प्रेम के प्रवाह में बहा कर मानवात्मा को मुक्ति प्रदान की वरन् विश्व के कण-कण में, किंवा सृष्टि के अणु-अणु में 'अणोरणीयान्महतो महीयान् (कठ उपनिषद् 1/2/20)'—सूक्ष्मता से अधिक सूक्ष्म तथा महानता से भी अधिक महान् साक्षात परब्रह्म के दर्शन किए। यूनान, मिस्र, रोम, असीरिया तथा बेबिलोन की ध्वस्त संस्कृतियों के खण्डहरों के भीतर से आज भी इतिहास का महान् नीतिवचन गूंज रहा है। नश्वर पर आधारित संस्कृति सदा नश्वर है तथा अमृत से उद्भूत अविनश्वर आत्मतत्त्व पर केन्द्रित संस्कृति मृत्युंजय है, अविनाशी है, चिरन्तन जीवी है।

वेद में जिस ब्रह्म की वन्दना में गाया गया है—**सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म**, उसी अनन्त ज्ञान के मूर्तिमान अवतार पुण्यश्लोक सन्त ज्ञानेश्वर भारत के ही नहीं वरन् विश्व के सर्वोच्च महापुरुषों की पंक्ति में भी अपनी प्रकार की एक अद्भुत अलौकिक विभूति हैं। केवल 21 वर्ष का उनका लघुजीवन विश्व में ऐसा आध्यात्मिक प्रकाश बिखेर गया है जिसके सम्मुख आज तक बड़े-बड़े तत्त्ववेत्ताओं की आंखें चौंधिया जाती हैं।

आजकल के वैज्ञानिकों का कथन है कि प्रायः 30-32 वर्ष की अवस्था में मनुष्य की दन्तावली में अकल की दाढ़ निकलती है जो मनुष्य की बुद्धि के परिपक्व होने की परिचायक है। प्रायः यह माना जाता है कि दुनिया के अधिकांश नेता इस आयु के पश्चात् ही प्रकाश में आए तथा उन्होंने विश्व के ज्ञान में कुछ वृद्धि की। आज के वैज्ञानिकों के इस तथ्य को चुनौती देते हुए भारत ने वामदेव, शुकदेव, शंकराचार्य, रामतीर्थ, विवेकानन्द तथा ज्ञानेश्वर जैसे बाल-ब्रह्मज्ञानी पैदा किए जिन्होंने अल्पायु में ही विश्व को चमत्कृत कर दिया। सन्त ज्ञानेश्वर ने तो कुल 21 वर्ष, 3 मास, 5 दिन इस धराधाम पर देह धारण किया। तिस पर भी केवल 15 वर्ष की अवस्था में जब उनके दूध के दांत अभी गिरे ही थे, उन्होंने

गीता ज्ञानेश्वरी नामक गीता पर जिस महान् भाष्य की रचना की उसका अवलोकन कर आज तक बड़े-बड़े दिग्गज विद्वान् भी दांतों तले अंगुली दबा कर रह जाते हैं। सन्त ज्ञानेश्वर तो जन्म से ही मुक्त पुरुष थे। अपने जीवन के अल्पकालिक विद्युत् प्रकाश से वे मानवता के क्षितिज पर ऐसा आलोक छोड़ गए जो सदा सर्वदा पथभ्रष्ट मानवता का मार्गदर्शन करता रहेगा। उनकी जीवन रागिनी वेद की ऋचा के समान संक्षिप्त किंतु गहन-गंभीर, अनादि, अनन्त एवं रसानन्द पूर्ण है।

सन्तप्रवर ज्ञानेश्वरजी का जन्म एकनाथ, तुकाराम, नामदेव, समर्थ रामदास जैसे महान् सन्तों की जन्म भूमि महाराष्ट्र में हुआ। किन्तु इन सभी सन्तों में से सब से पहले जन्म लेने के कारण वे सब के प्रेरक रहे तथा महाराष्ट्र के धर्मगुरु बन कर आज तक पूजित हैं। उनका जन्म तो संवत् 1332 की भाद्रपद कृष्णा अष्टमी के दिन स्वयं भगवान् कृष्ण के जन्म दिवस पर मध्य रात्रि में ही हुआ। क्योंकि उसी दिन भारतीय जनगण भगवान् कृष्ण की जयन्ती मनाता है इसलिए सन्त शिरोमणि ज्ञानदेव का उनकी पुण्य निर्वाण तिथि मार्गशीर्ष कृष्णा त्रयोदशी पर ही पावन स्मरण एवं पूजन किया जाता है। ज्ञानमूर्ति ज्ञानदेवजी के पूर्वज पैठण से 4 कोस की दूरी पर गोदावरी तट के वासी थे। इनके पिता विट्ठल पन्त ने वैराग्य भाव से बहुत छोटी आयु में ही युवा पत्नी का त्याग कर संन्यास लेने का निश्चय किया। कहा जाता है कि उनकी पत्नी ने स्वामी रामानन्दजी के दर्शन के समय जब उन्हें प्रणाम किया तो स्वामीजी ने पुत्रवती होने का आशीर्वाद दिया। जब उसने बताया कि उसके पतिदेव उसे त्यागकर चले गए हैं तो स्वामीजी ने विट्ठलपन्त से कहा—तूने अपनी सन्तानहीन युवा पत्नी को छोड़कर संन्यास का विचार किया है जो दोषपूर्ण है। मेरी आज्ञा से तुम दुबारा गृहस्थी बनो। भगवद्भक्त विट्ठलपन्त तथा उसकी साध्वी पत्नी सविमेणी बाई से ही ज्ञानदेव, निवृत्तिनाथ, सोमनाथ पुत्र तथा मुक्ताबाई पुत्री हुई। समाज के अत्याचार का दंश बड़ों-बड़ों को विचलित कर देता है। रूढ़ियों के दलदल में फंसे लोग प्रायः मुक्तात्मा महापुरुषों पर कीचड़ उछालते हैं। धर्म-ध्वजी पंडों ने विट्ठलपन्त तथा उसकी सन्तान की निन्दा की। संन्यासी की सन्तान कहकर उनको बहुत दुत्कारा। जब ज्ञानदेव 5 वर्ष के ही थे, सोपानदेव केवल 4 वर्ष थे, मुक्ताबाई केवल तीन वर्ष की नन्ही बच्ची थी तभी इन मासूम बच्चों के माता-पिता ने पुनः गृहस्थ प्राप्ति पर प्रायश्चित्त करने के लिए त्रिवेणी संगम में जीवित ही जल समाधि ले ली। चारों बच्चे अनाथ हो गए। कच्चा अन्न भिक्षा में मांग कर लाते तथा भगवद् भजन करके समय बिताते। कौन जानता था कि ये अनाथ ही किसी दिन नाथों के नाथ बनकर पूजित होंगे!

निवृत्तिनाथ, ज्ञानदेव तथा सोपानदेव यज्ञोपवीत संस्कार करवाना चाहते थे। आलंदी के पण्डे लोग इसके विरुद्ध थे। उन्होंने सलाह दी कि तुम पैठण जाओ।

वहाँ के विद्वान् ब्राह्मण यदि तुम्हारे उपनयन की व्यवस्था कर देंगे तो हम लोग भी उसे मान लेंगे। पैदल यात्रा करते भगवन्नाम कीर्तन करते यह भक्त भाई-बहिन मण्डली पैठण पहुंची। ब्राह्मणों ने द्वेषवश कहा कि यदि तुम लोग अपने ऊपर हंसने वाले लोगों को, कुत्तों और चाण्डालों को, सभी लोक-लाज को छोड़कर भूमि पर लेटकर प्रणाम करो तो शुद्ध हो सकते हो।

कुछ दुष्टों ने उस बालभक्त मण्डली से छेड़छाड़ शुरू की। एक ने ज्ञानेश्वरजी से नाम पूछा तो उन्होंने कहा—ज्ञानदेव। दुष्टों ने एक भैंसे की ओर संकेत करके कहा—हमारे यहाँ तो यही ज्ञानदेव है। सन्त ज्ञानेश्वर ने हंसकर कहा—क्यों नहीं, यह भी तो मेरी ही आत्मा है। इसमें और मुझ में कोई भेद नहीं। इस पर एक दुष्ट ने भैंसे की पीठ पर दो साटे जमा दिए और ज्ञानदेव से पूछा—इन साटों की पीड़ा तुम्हें तो नहीं पहुंची होगी? आत्मदर्शी ज्ञानदेव ने पीठ दिखाई तो उस पर दोनों साटों की भीषण मार के रक्तिम चिह्न पड़े हुए थे। एक व्यक्ति ने कहा—यदि यह भैंसा भी ज्ञानदेव है तो यह भी तुम्हारे समान वेदमन्त्र गाए। ज्ञानदेव ने भैंसे की पीठ पर हाथ रखा तो वह ओंकार सहित वेदमन्त्र गाने लगा। इस पर सारे पण्डा लोग उस रहस्यदर्शी महात्मा के चरणों में नतमस्तक हुए। कहा जाता है कि एक ब्राहाण के घर श्राद्ध पर ज्ञानदेवजी ने उस ब्राह्मण के पितरों को सशरीर बुलाकर भोजन कराया। ज्ञानदेवजी की अनेक चमत्कारी घटनाएं प्रसिद्ध हैं। नेवासे में एक स्त्री अपने पति के शव को गोद में लिए विलाप कर रही थी। उसके पति का नाम सच्चिदानन्द था। ज्ञानेश्वरजी ने कहा—सच्चिदानन्द की मृत्यु नहीं हो सकती। उसके शरीर पर हाथ फेरने से वह उठ कर खड़ा हो गया। कहते हैं इसी सच्चिदानन्द बाबा ने आगे चलकर गीता ज्ञानेश्वरी को लिपिबद्ध किया। ज्ञानेश्वरजी का सब चमत्कारों से बड़ा चमत्कार तो यह 'गीता ज्ञानेश्वरी' ही है जो ज्ञान में शंकराचार्य की गीता के तुल्य है तथा भाषा व अलंकार तथा रसानन्द में विश्व साहित्य में बेजोड़ है। ज्ञानेश्वरजी ने सभी चमत्कार योगशक्ति से ही दिखाये थे पर जगत के उद्धार के लिए सरल मार्ग ही बताया। ज्ञानेश्वरी में गीता के 12वें अध्याय की व्याख्या करते हुए वे कहते हैं—योग मार्ग से भी योगीजन अन्त में मुझे ही प्राप्त होते हैं, कुछ अधिक नहीं मिलता। कुछ अधिक मिलता है तो केवल कष्ट ही। भक्ति मार्ग ही सरल मार्ग है।

भगवान् कृष्ण के शब्दों में वे पुनः कहते हैं 'मेरे साथ समास होते ही जातिभाव का लोप हो जाता है।' इस प्रकार ज्ञानेश्वरजी ने घोषित किया कि गीता मनुष्य मात्र के लिये मोक्ष-द्वार खोलती है।

स्वयं ज्ञान के प्रखर सूर्य होते हुए भी ज्ञानदेव विनय की मूर्ति थे। अपने ही बड़े भाई निवृत्तिनाथ को गुरु मानने के पश्चात् उन्होंने उन्हें भाई नहीं कहा। उनके

विषय में ज्ञानदेव लिखते हैं। 'गुरुदेव के भोग के जितने पदार्थ हैं वे सब पदार्थ मैं स्वयं बनना चाहता हूँ। मैं श्रीगुरु का भवन, द्वार, द्वारपाल, छत्र, छत्रधारी, चंवर डुलाने वाला, दीपक दिखाने वाला और ताम्बूल खिलाने वाला बनूं। गुरुदेव के नेत्र स्नेह से जो-जो रूप देखें वह सब रूप भी मैं ही बनूंगा और मरने पर इस शरीर की मिट्टी उसी भूमि में मिलाऊंगा जिस पर गुरुदेव के श्रीचरण अंकित होंगे।' संवत् 1353 मार्गशीर्ष कृष्णा त्रयोदशी के दिन आत्मदर्शी सन्त ज्ञानदेवजी ने जीवित ही भू समाधि लेकर अपनी मुक्तात्मा को परमात्मा में सदा के लिए विलीन कर लिया। आज उन ज्ञानमूर्ति सन्त ज्ञानेश्वर की पुण्य तिथि पर उनके चरणों में हमारी कोटि हृदयाञ्जलियाँ समर्पित हों।

ज्ञान देवाय शान्ताय, वेद वेदान्त मूर्तये।
शुद्धाय, प्रबुद्धाय, ज्ञानेश्वराय नमोनमः।।

10 दिसम्बर 1958
दैनिक 'वीर प्रताप' में प्रकाशित

'जब तक भारत उस परम पुरुष परमेश्वर की खोज में लगा रहेगा तब तक यह अमर रहेगा, इसका कोई नाश नहीं कर सकता।'

—स्वामी विवेकानन्द

आनंद विग्रह श्री चैतन्य महाप्रभु

काल की कठोर क्रूरताएं महापुरुषों को जन्म देती हैं। समूचे संसार को सभ्यता का प्रथम प्रकाश देने वाला यह महिमा मण्डित भारत देश कभी पराधीनता की शृंखलाओं में बंदी हो जाएगा, यह कौन जानता था? इस धर्मप्राण देश में ही हिन्दू धर्म के निष्ठावान पुत्रों को कभी तोपों और संगीनों का भय दिखाकर धर्म परिवर्तन के लिए बाध्य किया जाएगा, इसका भी अनुमान किसे था? कौन जानता था कि समूची मानवता को अपना वात्सल्य लुटाने वाली भारत जननी के वक्ष पर लगभग एक हजार वर्ष तक बर्बर म्लेच्छों का अति निंद्य, नग्न नृत्य होता रहेगा? मध्यकालीन भारत का चित्र विदेशी आक्रमणों और विधर्मी अन्यायों का चित्र है। उसी चित्र में हमें प्रयागराज में त्रिवेणी तट पर स्थित सनातन अक्षयवट के मूल में प्रहार होता दिखाई देता है, हकीकत राय के शीर्ष पर आरे चलते दिखते हैं, ऐश्वर्य के लिए धर्म को बेचने वाले मानसिंह और जयचन्द के दर्शन होते हैं, सम्भाजी की आंखें निकलती दिखाई देती हैं, बन्दा वैरागी की सत्तर लाख नस नाड़ी का कटना दिखाई देता है, गुरु अर्जुन का तप्त लोहे के तवों पर जलना दिखाई देता है, गुरु तेग बहादुर का शीर्ष छेदन भी दिखाई देता है, गुरु गोविन्द के नन्हे लाडलों का जीवित ही दीवारों में चुना जाना दिखाई देता है, नालन्दा के हजारों विद्यार्थियों को बोरे में बन्द करके समुद्र में फेंका जाना भी दिखाई देता है, पापी औरंगजेब का प्रतिदिन सैकड़ों जनेऊ तथा उतने ही शीश काटने का दृश्य भी दिखता है तथा दिल्ली की गलियों में दो-दो पैसे में माँ भारती के पुत्रों के शीशों के बिकने का हृदय-विदारक दृश्य भी खून भरी आंखों से देखना पड़ता है। वह चित्र कितना भयानक है, कितना बर्बरता पूर्ण है, कितना अमानुषिक है!

संकट की ऐसी विकराल रात्रि में ही भक्ति के पूर्ण चन्द्र का उदय हुआ। अत्याचार तथा अनाचार के कठोर थपेड़ों ने भारतीय मानस का जो भीषण आलोड़न किया उसी हृदय मन्थन से भारत की आत्मा पुनः जागृत हुई तथा अध्यात्म के क्षीर-निधि से शीतलता, स्निग्धता तथा पावनता से परिपूर्ण भक्तिरूपी सुधाकर नवनीत बन कर प्रकट हुआ और फिर जो भक्ति की पावन भागीरथी

प्रवाहित हुई, उसमें असंख्यात जंगमतीर्थ रूप महापुरुष प्रकट हुए। भक्ति की दिव्य गंगाधारा में तैरते हुए तीर्थों के समान हमें दिखाई देते हैं भगवान् रामानुजाचार्य, स्वामी रामानन्दजी, सन्त कबीर, गुरु नानक, सन्त रैदास, नामदेव, रसखान, रहीम, गोस्वामी तुलसीदास, महाकवि सूरदास, महाप्रभु वल्लभाचार्य, गोसाईं विट्ठलनाथ, मीराबाई, दयाबाई, जयदेव, विद्यापति, बिल्वमंगल, तुकाराम, एकनाथ, समर्थ रामदास, सन्त ज्ञानेश्वर इत्यादि-इत्यादि। ये तीर्थ स्वरूप महापुरुष जाति को संकट सागर से उबारने के लिये प्रकट हुए थे। जो व्यक्ति इन में से किसी एक भी नौका के सहारे लग गया वह पार हो गया। ये सभी महापुरुष उस परम ज्योति के दीप्तमान प्रदीप बनकर नैराश्य की काली रजनी में प्रकाश बिखेरने लगे। किंतु सं. 1542, फाल्गुन सुदी पूर्णिमा को बंग भूमि के नवद्वीप नगर में जिस पूर्ण गौर चन्द्र का उदय हुआ उससे तो भारत का भाग्य ही बदल गया। उन श्री श्री चैतन्य महाप्रभु की पावन गाथा बड़ी हृदयहारी और मनोमुग्धकारी है। उन गौरांग महाप्रभु का पावन चरित्र अगाध सुस्वादु रस का सागर है। उस सुधा सिंधु में से कोई कितना भी पान कर ले, वह अनन्त रत्नाकर सदा ही आनन्द की उर्मियों से छलकता रहता है। श्री श्री चैतन्य चरितावली के महान् लेखक श्रद्धेय श्री प्रभुदत्त ब्रह्मचारीजी के शब्दों में, 'महाप्रभु' अपने समय के प्रेमी और भावुक महापुरुषों में सर्वश्रेष्ठ समझे जाते हैं।' उन रसावतार प्रेममूर्ति महापुरुष की झांकीमात्र भी मानव हृदय के सकल कलुष, कल्मष का प्रक्षालन कर हृदय सिंधु में दिव्यानन्द का संचार करने वाली है।

बंगभूमि का नवद्वीप नगर श्री चैतन्य देव की लीलाभूमि होने के कारण भगवान् श्री कृष्ण चन्द्र की लीलाभूमि वृन्दावन के समान ही गौरांग भक्तों के लिए पूर्व भारत का वृन्दावन ही बना हुआ है। वहीं जन्म पाकर श्री चैतन्य देव ने अपनी बाल लीला की। वह बालक 'विश्वम्भर' पालने में पड़ा-पड़ा कभी रोने लगता तो स्त्रियों के 'हरिबोल-हरिबोल' गाने से तुरंत चुप हो जाता। नन्हे शिशु की रुचि देखने के लिए जब उस नवागत प्राणी के सम्मुख अन्न, वस्त्र, हथियार और पुस्तकें रखी गयीं तो उस तेजस्वी बाल विभूति ने तुरंत श्रीमद्भागवत पुराण पर हाथ रख लिया। बालक विश्वम्भर को माता शचीदेवी प्यार से निमाई कह कर पुकारा करतीं। अपने बालपने की उद्दाम चंचलता में वह नन्हा निमाई एक दिन गुड़मुड़ी मारे हुए काले सर्प पर जा बैठा और सर्प से खेलने लगा। वह भयंकर विषधर भी भय और विष को भूलकर आनन्द से झूमने लगा।

आनन्द मूर्ति निमाई का रूप हृदय को बड़ा लुभाने वाला था। उनका गौरवर्ण मुख पूर्णचन्द्र के समान था। जिस पर एक विश्वविमोहन-प्रेम तथा एक अमृतमयी मुस्कान सदा खेलती रहती थी। उन गौरांग देव में प्रारम्भ से ही एक ऐसी प्रेम की आकर्षक विद्युत् शक्ति विद्यमान थी जो पापी से पापी को भी उनके प्रति आकर्षित

होने को बाध्य कर देती थी। स्वजनों, प्रतिवेशियों तथा अभ्यागतों के लिए तो आनन्द विग्रह 'निमाई' नयनों के प्राणप्रिय तारक ही थे।

नन्हा निमाई बचपन में बड़ा नटखट था। एक बार यह 4 वर्ष की अवस्था में बहुत रोने लगा। माँ के पूछने पर बताया कि 'पड़ोसी पण्डितों के घर जो ठाकुरजी के लिए नैवेद्य बना है, उसे लेकर ही मैं चुप होऊंगा।' बिना पूजा किए नैवेद्य को लाकर बालक को देना बड़ा कठिन था। माँ ने बड़ा समझाया और डराया कि बिना पूजा की मिठाई खाने से बड़ा पाप होता है किन्तु निमाई न माना। अन्त में दोनों पड़ोसी पंडितों ने नैवेद्य उस बाल-गोपाल के सम्मुख रखा और उसने सभी सामग्रियों में से थोड़ा-थोड़ा आस्वाद लिया।

एक बार एक ब्राह्मण को घर में भोजन के लिए आमन्त्रित किया गया। तीन बार उसके सामने भोजन परोसा गया और तीनों बार जब वह आंखें मूंदकर 'श्रीकृष्णाय नमः' कहता तो वह नन्हा कृष्ण चैतन्य उसके अन्न को आकर खाने लगता। एक बार तो उसे कोठरी में भी बन्द कर दिया गया किन्तु उस निष्ठावान ब्राह्मण के कृष्णस्मरण करते ही तुरंत प्रकट हो गया और पकवान का भोग लगाने लगा। कहते हैं उस ब्राह्मण के विस्मय पर गौरांग ने उन्हें चतुर्भुज रूप में दर्शन भी दिए।

पाठशाला भेजने पर वह अलौकिक बालक खड़िया मिट्टी को शरीर पर मल लेता तथा माथे पर लम्बे-लम्बे तिलक लगा कर कहता—'देख माँ! तेरे घर में एक परम वैष्णव आया है, कुछ भिक्षा दोगी?' मक्खन तथा छछिया भर छाछ का लोभ देकर जैसे गोपियां श्रीकृष्ण को नचाया करती थीं वैसे ही नदिया की रमणियां बंगाली मिठाई (सन्देश) का प्रलोभन देकर नन्हे निमाई का नृत्य देखा करतीं।

नवद्वीप के पार्श्व में सुरसरिता भागीरथी कल-कल निनाद करती हुई बहती है। वहाँ नहाने वाले भक्तों के वस्त्रों को उठाकर निमाई कभी वृक्ष पर जा बैठता, कभी पानी के छींटों से उनके परिधान भिगो देता, सूर्य को अर्घ्य देने वालों की नकल करता, कभी आंखें बन्द कर संध्या का स्वांग भरता। कभी-कभी वह ध्यान में बैठे हुए भक्तों के सामने से शिवलिंग की पिण्डी उठा लिया करता तथा कभी उनका भरा हुआ नैवेद्य स्वयं चट कर जाता। इस प्रकार कालिंदी के तट पर जैसी बाल-लीलाएं बालकृष्ण ने की थी वैसे ही विनोदमयी आनन्दवर्द्धिनी लीलाएं भागीरथी के तट पर बाल निमाई ने कीं।

एक दिन निमाई के बड़े भाई विश्वरूप पाठशाला से नहीं आए थे और माता गृह में भोजन के लिए उसकी प्रतीक्षा कर रही थी। निमाई उन्हें बुलाने पाठशाला चला गया, पाठशाला में गुरु अद्वैताचार्य इन्हें देखकर मोहित हो गए। बालक की

दिव्य कांति ने उनके हृदय को जीत लिया था। अन्त में यही वयोवृद्ध तथा ज्ञानवृद्ध अद्वैताचार्यजी गौरांग महाप्रभु के परम भक्त बन गए थे और सारा आयुष्य उन्हीं की पावन लीलाओं का आस्वाद लेते रहे।

भ्रातृ, विश्वरूप परम विद्वान् थे। उनके अन्तस्तल में वैराग्य की एक गुप्त गंगा बहुत काल से हिलोरें ले रही थी। वह सहसा फूट निकली। जाड़े की एक रात्रि को अपने वृद्ध माता-पिता तथा नन्हे निमाई को सोता छोड़कर विश्वरूप संन्यास के लिए गृह से निकल चले। स्वजनों ने बड़ा अश्रुपात किया, निमाई भी खूब रोया। बड़े पुत्र के ज्ञानी बनकर गृह त्यागने से माता-पिता को भय हुआ कि कहीं नन्हा निमाई भी पण्डित बन कर संन्यासी न बन जाए। अतः उन्होंने निमाई को पाठशाला में भेजना बन्द कर दिया। नन्हा बालक एक दिन गन्दगी के घूरे पर जा बैठा तथा टूटी-फूटी टोकरियों को सिर पर धारण कर लिया। माता-पिता तथा पड़ोस के लोगों के एकत्र होने पर निमाई बोल उठा—'माँ! मूर्ख बेटे से तुम और क्या आशा रख सकती हो, यदि पढ़ाओगी-लिखाओगी नहीं तो हम ऐसा ही कार्य करेंगे?' इस बात से माता-पिता लज्जित हुए और निमाई को पुनः पाठशाला भेजना प्रारम्भ कर दिया। माता रोते-रोते निमाई को कहा करती—'बेटा! हम वृद्धों का एकमात्र सहारा, हमारी अन्धे की लकड़ी तू ही है। तू भी विश्वरूप की तरह हमें धोखा मत दे जाना।'

माता-पिता नवयुवक निमाई को देखकर ही जीते थे। पिता सोचते, यह ग्यारह वर्ष का हो गया है, तनिक जवान हो जाने पर इसका विवाह करूंगा। किन्तु विधाता के मन में कुछ और ही बात थी। पाठशाला जाने से पहले जब निमाई पिता को प्रणाम करने आये तो देखा पिता ज्वरक्रांत हैं। पिता की जीवन यात्रा समाप्त होने वाली थी। भागीरथी के तट पर रोते हुए निमाई के सिर को अपनी छाती पर रखकर पिता बोले—'निमाई, मैं तुझे भगवान् विश्वंभर के हाथ सौंपता हूँ, वे ही तेरी रक्षा करेंगे।' फिर पिता ने पुण्यसलिला भागीरथी में अपनी नश्वर देह का विसर्जन किया। शचीमाता और निमाई अश्रु-विगलित नेत्रों से घर लौटे।

विद्याध्ययन से निमाई का पांडित्य सूर्य के तेज के समान चमकने लगा था। वाद-विवाद में वे बड़े-बड़ों को परास्त कर देते थे। उन्हीं निमाई पण्डित ने व्याकरण पर एक 'पञ्चीटीका' तथा टिप्पणी लिखी थी जिसका विद्वत्समाज में बड़ा मान हुआ। उन दिनों न्यायदर्शन का विशेष प्रचार था। न्याय पर 'दीधिति' महाग्रन्थ के रचयिता पं. रघुनाथ निमाई के सहपाठी थे। उन्हीं की टीका उन दिनों सर्वश्रेष्ठ समझी जाती थी। निमाई भी न्यायदर्शन के महान् विद्वान् थे। एक दिन नौका पर गंगा पार करते हुए निमाई ने रघुनाथ के बहुत आग्रह करने पर उन्हें न्याय पर लिखी हुई अपनी टीका सुनाई। वह सुनकर रघुनाथ रोने लगा। पूछने पर रघुनाथ

ने बताया 'आपकी इस महान् टीका के होते हुए मेरी टीका को कौन पूछेगा? मेरी चिराभिलाषित आशा थी कि मेरा ग्रन्थ जगत् प्रसिद्ध हो। आज उस आशा पर पानी फिर गया।' यह शब्द सुनते ही उन करुणासिन्धु श्री चैतन्य देव ने हंसते-हंसते अपना ग्रन्थरत्न गंगा में बहा दिया और कहने लगे—'हे बन्धु! बस इतनी सी बात से आप दुःखी हो रहे हैं, आपकी प्रसन्नता के लिये तो मैं प्रचण्ड अग्नि में भी कूद सकता हूँ। यह साधारण-सी पोथी तो कोई मूल्य ही नहीं रखती।' रघुनाथ पंडित ने निमाई पंडित को गले से लगा लिया तथा प्रेम और पश्चात्ताप के अश्रुकणों से उनके गौरवर्ण श्रीविग्रह को भिगो दिया।

हे भारत! तुम मत भूलना कि तुम्हारी स्त्रियों का आदर्श सीता, सावित्री, दमयंती है; मत भूलना कि तुम्हारे उपास्य सर्वत्यागी उमानाथ शंकर हैं; मत भूलना कि तुम्हारा विवाह, धन और जीवन, इन्द्रिय सुख के लिए, अपने व्यक्तिगत सुख के लिए नहीं; मत भूलना कि तुम्हारा जन्म ही 'माता' के लिए समर्पित होने के लिए हुआ है; मत भूलना कि तुम्हारा समाज उस विराट महामाया की छाया मात्र है; मत भूलना कि नीच, अज्ञानी, दरिद्र तुम्हारे भक्त है, तुम्हारे भाई हैं। हे वीर! साहस का आश्रय लो। गर्व से कहो कि मैं भारतवासी हूं और प्रत्येक भारतवासी मेरा भाई है, कहो कि अज्ञानी भारतवासी सब मेरे भाई हैं, भारतवासी मेरे प्राण हैं, भारत के देव-देवियां मेरे ईश्वर हैं, भारतीय समाज मेरे बचपन का झूला, जवानी की फुलवारी और मेरे बुढ़ापे की काशी है? भाई, बोलो कि भारत की मिट्टी मेरा स्वर्ग है, भारत के कल्याण से मेरा कल्याण है, और रात-दिन कहते रहो—हे गौरीनाथ! हे जगदंबे! मुझे मनुष्यत्व दो, मां! मेरी दुर्बलता और कापुरुषता दूर कर दो! मां मुझे मनुष्य बना दो।

—स्वामी विवेकानन्द

प्रेमरसावतार श्रीकृष्ण चैतन्य

जिन महामहिम महापुरुष के विषय में कहा जाता है 'व्यासोच्छिष्टं जगद्त्रयं' (अर्थात् तीनों लोक व्यास भगवान् की जूठन मात्र हैं) उन्हीं जगद्गुरु भगवान् वेदव्यास का अमर वचन है—

कुलं पवित्रं जननी कृतार्था, वसुन्धरा पुण्यवती च तेन।
अपार संवित्सुखसागरेऽस्मिन्, लीनं परे ब्रह्मणि यस्य चेतः।।

अर्थात् जिसका चित्त ब्रह्मानन्द के अपार सुख-सागर में लीन रहता है, उसके जन्म से तो उसका कुल पवित्र हो गया, उसकी जन्मदात्री माता धन्य-धन्य हो गई तथा (उसके चरणस्पर्श से) सारी धरती ही पुण्य-पावन हो उठी।

कोटिशः धन्य एवं शतकोटिशः वन्द्य हैं श्री श्री चैतन्य महाप्रभु जिनकी चरण धूलि के स्पर्श से न केवल बंगदेश या भारत अपितु समूची वसुन्धरा का भाग्य बदल गया।

चपल, चंचल, सुन्दर एवं विद्वान् निमाई पण्डित आते-जाते वैष्णवों से पूछ बैठते 'किं तावत् वैष्णवत्वम्' वैष्णवता किसे कहते हैं? कभी पूछते, 'ऊर्ध्वपुण्ड्रेन किं स्यात्' ऊर्ध्व पुण्ड्र लगाने से क्या होता है? बेचारे वैष्णव परेशान रहते। उनका एक पुराना मित्र मुकुन्ददत्त प्रश्नों की बौछार के भय से गंगास्नान के लिए जाते हुए रास्ते में इन्हें देख कर रास्ता बदल लेता। एक बार निमाई पण्डित ने ऊँचे स्वर में कहा, 'अच्छा बेटा, हमें अवैष्णव समझ कर हमसे दूर भागते हो! कितने दिन तक इस तरह हमसे दूर रहोगे? एक दिन हम भी वैष्णव होंगे और ऐसे वैष्णव होंगे कि तुम सदा पीछे-पीछे फिरते रहोगे।'

निमाई पंडित गृहस्थी बन चुके थे। उन्हीं दिनों श्री ईश्वरपुरी नाम के महान् भक्त-सन्त नवद्वीप में पधारे। वे निमाई के सौंदर्य को देखकर मुग्ध हो गए। निमाई उन्हें घर लिवा लाए तथा उनका यथोचित सत्कार किया। पुरी महोदय ने उन्हीं दिनों निमाई को 'श्रीकृष्ण लीलामृत' के मधुर रस का पान कराया। निमाई के हृदय में भी भक्ति के अंकुर फूटने लगे। निमाई पण्डित ने अपनी शिष्यमण्डली के संग पूर्वी बंगाल की यात्रा की तथा अनेकों को हरिनाम का पावन मंत्र दिया। पीछे सर्पदंश

से पत्नी का देहान्त हो गया। उन्हीं दिनों नवद्वीप में एक कश्मीरी दिग्विजयी पण्डित पधारे। वह पण्डित नवद्वीप को भी विजय करने आया था। निमाई पण्डित ने उस केशव कश्मीरी को गंगा-महिमा पर कविता करने को कहा। फिर उसके गर्व को खर्व करने हेतु उन्होंने उसकी कविता में गुण और दोष, दोनों ढूंढ़ निकाले। बूढ़ा दिग्विजयी उस नवयुवक निमाई के चरणों में नतमस्तक हो गया। माँ का घर बहू के बिना सूना हो गया था। उसी शची माता के वात्सल्यपूर्ण अनुरोध से ही निमाई पण्डित ने विष्णुप्रिया जी से विवाह करना स्वीकार कर लिया। किन्तु उनके जीवन का सारा प्रेम तो किसी अलौकिक प्रेमी के चरणों पर चढ़ने के लिए आकुल था।

विजयादशमी का पावन दिन था। निमाई पण्डित पिता का पिण्डदान करने के लिए गया जी में पधारे हुए थे। वहाँ इन्हें तीव्र ज्वर आ गया। इनकी आज्ञा से इनके दो शिष्य दो ब्राह्मणों के चरण धोकर चरणोदक ले आए। उस चरणोदक का पान करते ही यह लीलावतार तुरंत अच्छे हो गए। वहाँ भीड़ में से निकल कर श्री ईश्वरपुरी जी महाराज ने इन्हें आलिंगन किया। बस उसी स्पर्श से श्री चैतन्य देव के महान् जीवन में चैतन्यता का बीजारोपण हो गया। यह बीज नवद्वीप में लौटकर आने पर कुछ अंकुरित और परिवर्धित हुआ। नीलांचल (जगन्नाथपुरी) में वह पल्लवित, पुष्पित और अमृतमय फलों वाला बन गया। उसके सुधामय सुस्वादु फलों से कोटि-कोटि जीव तृप्त हुए तथा उनकी आध्यात्मिक बुभुक्षा शान्त हुई। उसी चैतन्य के वृक्ष की नित्यानंद और अद्वैत रूपी दो बड़ी-बड़ी शाखाओं ने सम्पूर्ण देश को सुखमय और शान्तिमय बना दिया था।

श्री ईश्वरपुरी का मन्त्र पाकर तो अब नवद्वीप में लौटकर भी निमाई पहले जैसे निमाई नहीं रहे थे। उनके हृदय से प्रेम-भक्ति का ऐसा स्रोत फूट निकला था जिसमें सारा नवद्वीप आप्लावित हो रहा था। कृष्णप्रेम की अजस्र अश्रुधारा में उनका पाण्डित्य धुल कर बह गया। निमाई पण्डित का प्रसिद्ध विद्यालय उजड़ गया। पाठशाला में भी संकीर्तन-सुधा का ही वर्षण होता। उन दिनों नवद्वीप में सर्वत्र यही गूंजता—

हरि हरि बोल, हरि हरि बोल।
मुकुन्द माधव, गोविंद बोल॥

अक्षर और शब्द पढ़ाते-पढ़ाते निमाई उस 'अक्षर ब्रह्म' और 'शब्द ब्रह्म' तक जा पहुँचे थे। मृदंग बजता, मुरचंग बजता, ढोल की ध्वनि गूंजती और श्री चैतन्य अपने पैरों में घुंघरू बांध नृत्य करते हुए 'हरि हरि बोल' की पावन ध्वनि को उच्चारते। नवद्वीप की गली-गली में संकीर्तन की धुन गुंजा कर उन्होंने भक्ति भागीरथी को मानव के गृह-गृह तथा हृदय के प्रत्येक स्पन्दन में पहुँचा दिया। भारत को श्री चैतन्य देव की यह महानतम देन है कि उन्होंने हिन्दू धर्म को भेद-भाव

के बन्धनों से मुक्त कर जनगण-सुलभ बनाने के निमित्त उसे ऊँचे-ऊँचे पर्वतों की कन्दराओं अथवा जनसाधारण के लिए दुर्लभ ऊँचे भवनों से उतारा। अब तो गौरांगदेव श्रीकृष्ण प्रेम में पागल हो गए थे और सदा प्रेम-वारुणी का पान किए हुए, उसके मद में भूले से, भटके से, उन्मत्त से बने हुए प्रायः लोकबाह्य प्रलाप सा करने लगते। एक सच्चे प्रेमी को प्रियतम का वियोग असह्य हो उठता है। संत कबीर के शब्दों में 'नाम-वियोगी न जिए, जिए तो बाउर होय।' प्रेम-वियोगी चैतन्य अब 'बाउर', बावले ही हो गए थे। उनके प्रेमोन्माद की प्रथम कृपा-किरण का अधिकारी उन्हीं की पाठशाला का विद्यार्थी रत्नगर्भाचार्य बना। गौरांग के आलिंगन करते ही वह भी उन्मत्त हो गया। शची माता तथा बहू विष्णुप्रिया दोनों रोतीं कि न जाने हमारे गौरांग को क्या हो गया है? कोई कहता, वायु का प्रकोप है, कोई कहता मस्तिष्क विकार है। पड़ोस के वयोवृद्ध श्रीवास पण्डित उन्हें देखने गए। उन आनंदमूर्ति को देखने मात्र से ही उनका हृदय हिलोरें लेने लगा तथा अन्तःकरण उमड़ने लगा। श्रीवास पण्डित ने कहा—'हे शची माता! तुम धन्य हो, तुम्हारे पुत्र में भक्ति के पूर्ण लक्षण हैं।' गौरांग देव बोले—'सदा प्रभु-प्रेम में विकल होकर मैं रोया करूं यही मेरी हार्दिक इच्छा है।' श्रीवास पण्डित ने रोकर कहा—हे महाप्रभु! हमें भी इस पागलपन का आशीर्वाद दें। अब तो श्रीवास के गृह में संकीर्तन का अनुपम अमृत बरसने लगा। उन्हीं दिनों गौरहरि के पावन प्रेम से खिंचे हुए अनेक भगवद्प्रेमी नवद्वीप में आने लगे। गौरांगदेव को स्वप्न आया कि नित्यानंद अवधूत नवद्वीप पधार रहे हैं। वे अपनी भक्तमण्डली के संग नित्यानंद जी की खोज में निकले। नित्यानंद का जन्म राढ़देश में हुआ था तथा वे छोटी अवस्था में ही संन्यासी बन गए थे। ब्रज की यात्रा में इन्हें ज्ञात हुआ कि नवद्वीप में अमृतवर्षी गौरचन्द्र का उदय हुआ है। उन्हीं गौरांगदेव की खोज में वे नवद्वीप आए थे। नित्यानंद तथा निमाई दोनों गौरवर्ण थे, दोनों की आकृति अत्यन्त लुभावनी थी, दोनों में प्रेमोन्माद अद्भुत था, दोनों के सुन्दर काले नेत्र और लम्बे काले घुंघराले बाल थे। सब से बढ़कर दोनों का हृदय एक था। इन दोनों महापुरुषों का महामिलन बड़ा हृदयहारी है। शची-माता को तो जैसे अपना खोया हुआ बड़ा पुत्र विश्वरूप ही मिल गया हो। वे प्यार से नित्यानंद को निताई बुलाया करती। निमाई, निताई की यह जोड़ी साक्षात् कृष्ण-बलराम की जोड़ी के समान थी। वे दोनों महाभागवत जब हाथ पकड़कर संकीर्तन नृत्य करते तो नवद्वीप में माधुर्य की मंदाकिनी बह उठती। इन्हीं दिनों विश्वरूप के गुरु अद्वैताचार्य जी भी पुनः गौरांगदेव की प्रेम पयस्विनी से कृतकृत्य हुए। वे वृद्ध भी दोनों भुजा उठाकर मस्ती से संकीर्तन लीला करने लगे। इस प्रकार श्री गौरांग के चैतन्य वृक्ष की यह दो बलवान शाखाएं नित्यानंद और अद्वैत जनगण को शीतल शान्ति प्रदान करने लगीं। गली-गली में कीर्तन का मधुर स्वर गूंजने से कुछ लोगों ने काजी को इसके

विरुद्ध भड़काया। किन्तु गौरांगदेव के दर्शन मात्र से वह काजी भी पावन मन वाला हो गया।

भक्ति की पावन गंगा ने वर्ण भेद की थोथी दीवारों को तो गिरा ही दिया था, अब धर्म भेद के बाहरी बन्धनों को भी बहा दिया। कृष्ण-भक्ति वाला यवन भी एक नास्तिक हिन्दू से श्रेष्ठ है। कबीर जी के शब्दों में—

नाम जपत कुष्ठी भलो, चुइ-चुइ गिरै जो चाम।
कंचन देह किस काम की, जिहि मुख नाहीं राम॥

एक यवन भक्त गाता था, 'हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे, हरे कृष्ण...'

एक अत्यन्त सुन्दरी वरांगना ने देखा। वह चार दिन निरंतर उसके पास जाती रही और एकान्त में उससे प्रेम की भीख माँगती रही। किन्तु वह प्रतिदिन 3 लाख जाप करने का अभ्यासी उस वेश्या के हाव-भाव से कैसे विचलित हो सकता था। अंत में वह वेश्या स्वयं उस भक्त के चरणों में गिर गई तथा अपने अपराधों के लिए क्षमायाचना करने लगी। श्री चैतन्य चरणों के प्रताप से यह यवन भक्त हरिदास इतनी महान् एवं अविचल आस्था वाला महापुरुष बन गया था। हरिदास के कृष्ण प्रेम को देखकर मुसलमान शासक जलते-कुढ़ते। उन्होंने हरिदास को कई भय तथा कई प्रलोभन दिखाए किन्तु उसका कहना था, 'आप मेरी देह के टुकड़े-टुकड़े करवा दें, तो भी जब तक मेरे शरीर में प्राण हैं, तब तक मैं हरिनाम नहीं छोड़ सकता। काजियों के हुक्म से हरिदास को बाजारों में होकर घुमाया गया और निरन्तर बेंतों से मार देकर हरिदास के शरीर की खाल उधेड़ी गई, किन्तु हरिदास के मुख से निरन्तर यही ध्वनि निकलती थी 'हरे राम हरे राम, राम राम हरे हरे...' उनके शरीर से खून की धाराएं बह रही थी किन्तु उनके मुख से आह तक न निकली। वे निरन्तर हरि ध्वनि कर रहे थे। इससे भी बढ़कर वे अपने को दण्ड देने वालों के कल्याण के लिए भी प्रभु से प्रार्थना कर रहे थे। अंत में जब मुल्कपति (मुसलमान शासक) ने हरिदास जी से इतना घोर दण्ड देने के लिए क्षमा मांगी तो इस महान् भक्त ने कहा—'इसमें आपका क्या दोष है? मनुष्य अपने कर्मों के अनुसार ही दुःख-सुख भोगता है।'

गुरु रविदास के उपदेश आज के संदर्भ में

भारत धर्म-प्राण देश है। यहाँ की वाणी धर्म की वाणी है जबकि पश्चिम की भाषा राजनीति की भाषा है। वहाँ धर्म के कार्य भी राजनीतिक शैली से होते हैं। इसकी तुलना में भारत में समाज-नीति, राजनीति, लोक-नीति, व्यवहार-नीति सभी का माध्यम धर्म ही है। पश्चिम में सर्व-संग्रही, अधिक से अधिक धन एवं सत्ता का स्वामी, महान् गिना जाता है। जैसे सिकन्दर महान्, सीजर महान्, नेपोलियन महान्, बिस्मार्क महान् इत्यादि। भारत में सर्वस्व त्यागी, निष्काम, निर्लोभी सन्त को ही महान् मान कर पूजा जाता है। बुद्ध एवं महावीर, अशोक एवं चाणक्य त्याग से महान् बने। ऐसे पावन सन्तों-महन्तों ने ही भारत के निर्माण में अधिक बड़ा योगदान दिया है। मनु से महात्मा गांधी तक उनकी एक उज्ज्वल परम्परा है।

मध्यकालीन भारत के सन्तों में महात्मा रविदासजी का स्थान बड़ा ऊँचा है। वे कबीर, नानक, सूर, तुलसी के समकालीन, प्रेम दीवानी मीराबाई के प्रेरक, धन्ना और पीपा के संगी और भक्ति के महान् आचार्य स्वामी रामानन्दजी के अनन्य शिष्य थे। हिन्दी-साहित्य का भक्तिकाल अनेक दृष्टियों से स्वर्णकाल माना जाता है। भक्ति में जैसे भक्त का हृदय ही बोल उठता है वैसे ही भक्तिकाल में इस धर्म-प्राण देश के हृदय की पुकार साहित्य के माध्यम से गूंज रही थी। उस काल में जात-पांत की भेद-भरी दीवारें भक्ति-भागीरथी के अजस्र प्रवाह में बह गईं तथा मानवता के भीतर की एकात्मता के दिव्य दर्शन प्राप्त हुए। इसी काल में नामदेव दर्जी, दादू धुनियां, कबीर जुलाहा, गोरा कुम्हार, धन्ना जाट एवं रविदास चमार जैसे पुण्यश्लोक भक्तरत्न हुए, जो केवल भारत के ही नहीं, वरन् समूची मानव-जाति का मुख उज्ज्वल करने वाले हुए।

भक्त रविदासजी ने 15वीं शताब्दी में काशी में जन्म पाकर कबीर के समान स्वामी रामानन्दजी की भक्ति-मन्दाकिनी के पावन स्पर्श का लाभ लिया। जन्म से ही साधु-सेवी होने के कारण इनके क्रोधी पिता ने इनको घर से निकाल दिया। एक साधारण घास-फूस की झोंपड़ी में रविदासजी जूते गांठते रहते थे और जूते की सिलाई के प्रत्येक त्रोप के साथ भगवन्नाम भी स्मरण करते रहते। वे तीर्थ यात्रा

पर जाने वाले सन्तों-महात्माओं को बिना मोल के जूते बनाकर दे देते थे। सन्तों की इस निष्काम सेवा को वे भगवान् की पूजा मानकर करते थे। गीता में भगवान् ने कहा है—**स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य सिद्धिं विन्दति मानवः** अर्थात्, मानव अपने स्वाभाविक कर्म से भगवान् की पूजा करके सिद्धि को प्राप्त करते हैं। रविदासजी इसके ज्वलन्त आदर्श थे। इनके पास ही एक ठाकुरजी की छोटी सी मूर्ति पड़ी रहती थी। काम से थककर वे अपने ठाकुरजी से प्रेमाश्रु पुलकित वाणी में बातें किया करते थे।

रविदासजी जाति से छोटे होते हुए भी भक्ति के प्रताप से इतने ऊँचे बन गये कि आज तक सारे भारत के मन्दिरों में श्रेष्ठ से श्रेष्ठ प्रवक्ताओं के मुख से उनके भक्तिपद आदर से गाये जाते हैं।

रविदासजी कहते हैं—

जाति भी छोटी, कर्म भी ओछा, ओछा किसब हमारा।
नीचे से प्रभु ऊँच कियो है, कह रविदास चमारा।।

वर्ण-व्यवस्था

आज वर्ण-व्यवस्था आधुनिक समाज-शास्त्रियों की तीखी आलोचना का विषय बन गया है, किन्तु रविदास जैसे सन्तों के चरित्र यह सिद्ध करते हैं कि भारत में भक्ति एवं अध्यात्म के क्षेत्र में वर्ण कोई बाधा नहीं थी। छोटे वर्ण का व्यक्ति भी ईश्वर-भक्ति का पूर्ण अधिकारी था तथा उसी के माध्यम से वह केवल उच्च वर्णों के लिए ही नहीं वरन् सारे विश्व के लिए पूजनीय बन सकता था। रविदासजी ने आज के तथाकथित नेताओं के समान वर्ण-व्यवस्था का तिरस्कार न कर अपनी वर्ण मर्यादा का पालन करते हुए भगवद् भजन के चमत्कार से ऊपर उठने का मार्ग दर्शाया। इसके विपरीत आज के कुछ नेता ऊँचा उठाने वाली भगवद् भक्ति का तिरस्कार कर वर्ण-व्यवस्था को ही व्यर्थ धिक्कारने लगते हैं। रविदासजी कहते हैं—

तुम चन्दन हम एरण्ड बापुरे, संग तुम्हारे बासा।
नीच रूंख से ऊंच भये हैं, गन्ध सुगन्ध निवासा।।
जाति ओछा, पांति ओछा, ओछा जनम हमारा।
राजा राम की सेव न कीन्हीं, कह रविदास चमारा।।

भगवद्-भजन से सब जातियाँ पवित्र होती हैं, यह रविदासजी का निश्चित मत है।

बामन वैश्य, शूद्र अरु क्षत्रिय, डोम चण्डाल मलेच्छ किन सोई।
होइ पुनीत भगवत-भजन ते, आप तरे, तारे कुल दोई।।

निर्धनता एवं अर्थ-शुचिता

आज के घोर आर्थिक युग में एक ओर आर्थिक संकट और दूसरी ओर अर्थ-लोलुपता, आर्थिक भ्रष्टाचार एवं आर्थिक शोषण का दृश्य दिखाई देता है। आधुनिक काल के जर्मन अर्थ-चिन्तक कार्ल मार्क्स ने कहा है कि 'अर्थ ही सब समस्याओं का मूल है तथा अर्थ के असमान वितरण के कारण कुछ लोग अर्थ के अभाव से निर्धनता का दुःख भोग रहे हैं और कुछ लोग अर्थ के प्रभाव से पूंजीपति बनकर निर्धनों का शोषण कर रहे हैं। अतः निर्धनों एवं अभावग्रस्त लोगों को रक्त-क्रान्ति के द्वारा धनिकों के धन-धान्य एवं परिवारों को लूटने का अधिकार है।' अर्थ की असमानता के कारण जगत् में अशान्ति है। अर्थ की समानता हो जाने पर ही शान्ति हो सकेगी। इसकी तुलना में भारतीय ऋषियों एवं सन्तों का दृष्टिकोण भिन्न है। जहाँ कार्ल मार्क्स कहता है कि अर्थ ही सब समस्याओं का मूल है, वहाँ भगवान् शंकराचार्य ने भी कहा है, **अर्थमनर्थं भावय नित्यम्** अर्थात् नित्य यही भावना करो कि अर्थ ही सब अनर्थों का मूल है। वास्तव में अर्थ साधन है, साध्य नहीं। अर्थ किसी महान् अर्थ के लिए लगे तभी सार्थक है, अन्यथा अनर्थ, व्यर्थ, या निरर्थ है। पश्चिम में लोग अर्थ-संग्रह में ही महानता मानते हैं किन्तु भारतीय परम्परा में अर्थ ने धर्म को सदा नमस्कार किया है। यहाँ धर्म-साधक अर्थ को धर्म में बाधक जानकर स्वतः ही निर्धनता का वरण करते हैं, तथा अर्थ की गुलामी से मुक्त रह धर्म की सिद्धि प्राप्त करते हैं। उन पर निर्धनता लादी नहीं गई वरन् वे स्वयं अपनी स्वेच्छा से ही कम से कम धन पर निर्भर रह कर आत्मविकास कर महान् बनते हैं। अर्थ-लोलुपता से मनुष्य स्वार्थी बनता है। स्वार्थ बढ़ने पर पाप का पैसा कमाने वाला भ्रष्टाचारी एवं अर्थ-शोषक बन जाता है। अतः निर्धनता का स्वेच्छया वरण कर लेने अथवा सन्तोषरूपी सद्गुण को धारण कर लेने पर ही अर्थ-शुचिता का पालन हो सकता है। कार्ल मार्क्स ने कहा है कि अभाव ही सब आर्थिक अपराधों का कारण है, अर्थात् निर्धन ही विवश होकर चोरी करता है।

महात्मा रविदास का चरित्र एवं सन्देश इसके नितान्त विपरीत है। स्वयं निर्धन होते हुए भी तनिक अर्थ लोभ न रखते हुए अर्थ की पवित्रता का आचरण करने वाले वे अनोखे सन्त थे। उनकी निर्धनता देखकर एक महात्मा उन्हें पारसमणि दे गये तथा उनके एक लोहे के औजार को स्पर्श कर सोना बनाकर भी दिखा दिया। निर्लोभी सन्त, भक्त रविदासजी ने उसे स्पर्श तक नहीं किया। वे महात्मा रविदास की कुटिया के छप्पर में पारसमणि को खोंस कर चले गये। एक वर्ष पश्चात् वे महात्मा लौटे। उनकी कल्पना थी कि रविदास की कुटिया के स्थान पर एक विशाल महल खड़ा होगा। किन्तु वे देखकर विस्मित हो गये कि रविदास की वही फूस की झोपड़ी है तथा उसी प्रकार वे हरिनाम गाते हुए जूता गांठ रहे

हैं। महात्माजी के पूछने पर रविदासजी ने कहा कि तुम्हारी अमानत वहीं पड़ी है। कृपया उसे ले जाओ, मुझे व्यर्थ की चिन्ता में मत डालो।

महात्मा रविदास का सिद्धान्त वचन है—

हरि-सा हीरा छाड़ि के, करे आन की आस।
ते नर यमपुर जाहिंगे, सत भाषै रैदास।।

इसी प्रकार कहते हैं कि रैदासजी (रविदास) ने गंगा-स्नान के लिए जाने वाले एक सेठ को जूता बिना मोल के दे दिया तथा कहा कि मेरी एक सुपारी गंगा मैया को चढ़ा देना। जन-श्रुति के अनुसार गंगा मैया ने भक्त रैदास की भेजी हुई सुपारी ग्रहण करने के लिए जल से बाहर हाथ निकाला तथा प्रतिदान में एक बहुमूल्य कंगन दिया। कहते हैं कि सेठ ने वह कंगन रैदासजी को वापस न करके राज-दरबार में देकर बदले में धन-राशि चाही। राजा ने सेठ से कहा कि इस जोड़ी का दूसरा कंगन लाओ अन्यथा तुम्हारे वध की आज्ञा दे दी जाएगी। इस पर सेठ को सारा भेद खोलना पड़ा तथा रैदासजी की महिमा सारे नगर में फैल गई। महात्मा रैदासजी स्वयं कंगाल होते हुए भी निर्लोभी होने के कारण अर्थ-शुचिता के अवतार थे। न उन्हें कंगन का लोभ था न प्रतिष्ठा का। दूसरी ओर सेठ धनी होने पर भी लोभी होने के कारण कंगन में बेईमानी कर बैठा। परिणामस्वरूप कंगन भी खोया तथा प्रतिष्ठा भी खोई।

निर्लोभी निष्पाप है।
जहाँ लोभ तहं पाप।।

नास्तिक युग में जीवन्त प्रभु विश्वास

रविदासजी का जन्म भक्ति काल में हुआ, किन्तु वह काल साहित्य की दृष्टि से भक्ति काल होते हुए भी इतिहास की दृष्टि से अत्याचार का काल और जन साधारण की दृष्टि से घोर संकट काल था। उसी काल में राम जन्मभूमि और कृष्ण जन्म भूमि के मन्दिरों को तोड़ा गया, काशी-विश्वनाथ के मन्दिर का भंजन किया गया। नारियों का शीलहरण, नागरिकों पर अत्याचार, गुरु अर्जुन एवं तेग बहादुर जैसे सन्तों को तप्त लोह एवं सूली, गुरु गोविन्दसिंह के बच्चों का प्राचीर में चुनवाना, हिन्दुओं पर जजिया नामक अतिरिक्त कर इत्यादि उस युग के संकट का भयावह चित्र प्रस्तुत करते हैं। शासकों के अत्याचार और जनता के हाहाकार के दिव्य उपचार के रूप में ही इस धर्म-प्राण देश का हृदय भक्ति की वाणी में सृष्टि के कर्तार को पुकारने लगा।

मनुष्य नास्तिक दो परिस्थितियों में होता है। सुख में भोगों के प्रलोभन से ईश्वर को भूल जाता है। दुःख में संकटों के भय से वह ईश्वर भक्ति के पथ से विचलित हो जाता है। मध्यकाल में विदेशी आक्रान्ताओं के अत्याचार से भयभीत

होकर लोग ईश्वर को भूलने लगे थे। आज भौतिकवाद की चकाचौंध में सांसारिक भोगों की चमक-दमक से प्रलुब्ध होकर लोग नास्तिक बन रहे हैं। महात्मा रविदास की ईश्वर-भक्ति-पूरित जीवन्त आस्थामयी वाणी मध्यकाल के संकट पीड़ित नास्तिकों के लिए जितनी उपयोगी थी, आज 21वीं शताब्दी के भोगी-विलासी नास्तिकों के लिए भी उतनी ही उपयोगी है। वे भगवान् को अपना जीवन-सर्वस्व मान कर अपने हृदय के प्रेम का अर्घ्य चढ़ाते हैं—

रैदास रात न सोइये, दिवस न करिये स्वाद।
अह निशि हरिजी सुमिरिये, छाड़ि सकल प्रतिवाद।।

वे नास्तिक जग को उद्‌बोधन करते हुए कहते हैं।

मुकुन्द मुकुन्द जपहु संसार।
बिनु मुकुन्द तनु होई अऊलार।
सोइ मुकुन्द मुक्ति का दाता।
सोइ मुकुन्द हमरा पित माता।।
जीवत मुकुन्दे मरत मुकुन्दे।
ताके सेवक कउ सदा अनन्दे।
मुकुन्द मुकुन्द हमारे प्रान।
जपि मुकुन्द मसतकि नीसान।

महात्मा रविदास जैसे सन्तों ने मध्यकाल के अत्याचारों की आंधियों में संकटापन्न, म्रियमाण भारतीय समाज को प्रभु आस्था का भक्ति रसामृत पिलाकर बचा लिया।

महात्मा रविदास कबीर के समान एकेश्वरवाद के प्रबल समर्थक थे तथा ईश्वर के भिन्न-भिन्न नामों के पीछे एक ही परम सत्ता के उपासक थे। वे गाते हैं—

कृष्ण करीम रहीम राम हरि, जब लगि एक न पेखा।
वेद, कितेब, कुरान पुराननि, तब लगि भ्रम ही देखा।

कर्म एवं धर्म का समन्वय

जीवन में प्रायः कर्म एवं धर्म के बीच एक खाई दृष्टिगोचर होती है। संसार के कर्मों में लगे हुए लोग प्रायः यह बहाना करते हैं कि उन्हें धर्म के लिए फुरसत ही कहाँ है? दूसरी ओर धर्मात्मा लोग प्रायः साधु-सन्त बनकर संसार के कर्तव्य कर्मों से उपराम हो जाते हैं। महात्मा रविदास के जीवन में कर्म एवं धर्म का समन्वय था। वे भगवद् भक्ति के साथ-साथ अपने जातिगत व्यवसाय चर्म-कर्म को करते रहते थे। मध्यकालीन सन्तों में प्रायः सभी कुछ न कुछ आजीविका हेतु कर्म करने वाले ही थे।

महात्मा रविदासजी ने अपनी भक्ति के प्रताप से बहुत ऊँचा पद प्राप्त कर लिया। किन्तु उन्होंने अपना जातिगत व्यवसाय तब भी नहीं छोड़ा—

मेरी जाति कुट वांढला,
ढोर ढुवंता बनारसी आस-पासा।
अब विप्र परधान तिहि करहिं,
दण्डउति,
तेरे नाम सरणाइ
रविदासानुदासा।

भक्त एवं भगवान् का शाश्वत प्रेम सम्बन्ध

रविदास अपने प्रसिद्ध पद में गाते हैं—

प्रभुजी तुम चन्दन हम पानी।
जाकी अंग अंग बास समानी।
प्रभुजी तुम घन हम वन मोरा।
जैसे चितवत चन्द्र चकोरा।।
प्रभुजी तुम दीपक हम बाती।
जाकी ज्योति बरै दिन राती।।
प्रभुजी तुम मोती हम धागा।
जैसे सोनहि मिलत सुहागा।
प्रभुजी तुम स्वामी हम दासा।
ऐसी भक्ति करै रैदासा।।

प्रतिष्ठा की पराकाष्ठा में भी नितान्त निरहंकार

चित्तौड़ की महारानी रत्न कुंवरी (झाली रानी) जो विश्व विश्रुत प्रेम योगिनी मीराबाई की सास थी, वह अपने पति महाराणा कुम्भा के साथ काशी में गंगा स्नान हेतु आई। वहाँ महात्मा रविदासजी के कीर्तन एवं उपदेश से प्रभावित होकर उन्हें गुरु बनाने का संकल्प किया। इस पर उनके साथ आए कुछ ब्राह्मण पुरोहित आपत्ति करने लगे। महाराणा ने कहा कि यदि रविदासजी अपने कीर्तन द्वारा भगवान् को साक्षात् प्रकट कर सकें तभी उन्हें गुरु धारण किया जाएगा। महात्मा रविदास ने भक्ति की मस्ती में आत्मविभोर होकर गाया—

मैं तै तोरि मोरि असमझि सौं, कैसोई करि निस्तारा।
कह रैदास कृस्न करुनामय, जै जै जगत अधारा।।

झाली रानी रविदासजी को गुरु धारण कर चित्तौड़ ले गई। वहाँ मीराबाई ने भी रविदासजी से प्रेरणा प्राप्त की। मीराबाई ने भी अपने पदों में गाया है—

मेरो मन लागो गुरु सों, अब न रहूंगी अटकी।
गुरु मिल्या रैदासजी म्हाने, दीनी ज्ञान की गुटकी।।

चित्तौड़ में महात्मा रविदासजी की छतरी अभी तक प्रतिष्ठित है। महात्मा रविदासजी राज-परिवारों में सम्मानित होने के उपरान्त भी अपना चर्म-कर्म प्रतिदिन करते ही रहते थे। इनके भक्तों ने जब उनसे आग्रह किया कि अब व्यवसाय की कोई चिन्ता न होने के कारण उन्हें जूता गांठने का काम छोड़ देना चाहिए, तो उन्होंने आंखों में आंसू भरकर उत्तर दिया—मुझसे भगवान् की पूजा क्यों छुड़वाते हो। सचमुच ही रविदासजी ने अपने कर्म को ही उपासना बना लिया था और वे गीता के शब्दों में—'स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य सिद्धिं विन्दति मानवः'—को चरितार्थ कर रहे थे। किन्तु प्रतिष्ठा के शिखर पर भी उन्हें तनिक भी अभिमान नहीं छू पाया था। उनका मार्मिक पद है—

जब लग नदी न समुद्र समावै, तब लग बढ़ै हुंकारा।
जब मन मिल्यो राम सागर सौं, तब यह मिटी पुकारा।।

सन्त रविदास (रैदास) का साधनात्मक रहस्यवाद

भारत की अध्यात्म वाटिका में भांति-भांति के सुन्दर सुवास भरे पुष्प खिलते रहे हैं। उन पुष्पों में सन्त रविदासजी का स्थान अनन्यतम है। माघ पूर्णिमा के दिन दो महान् आत्माओं का प्रादुर्भाव हुआ। एक काशी के मध्यकालीन ब्रह्मदर्शी सन्त रविदासजी तथा दूसरे बंगाल के भारत सेवाश्रम संघ के संस्थापक अध्यात्म विभूति स्वामी प्रणवानंदजी जिनका जन्म सन् 1896 में हुआ।

सन्त रैदास एक उच्च कोटि के रहस्यवादी सन्त-कवि थे। आत्मा की परमात्मा से मिलने के लिए छटपटाहट काव्यात्मक भाषा में वर्णित होने पर रहस्यवाद के नाम से जानी जाती है।

जो आंख सारे विश्व को देखती है वह बेचारी अपने आपको नहीं देख सकती। जब आंख स्वयं अपने आपको देखने के लिए व्याकुल हो उठे तो बड़ी ही विचित्र दशा होती है। जब जीव सारे विश्व को खोजता-खोजता थक जाता है और परम तत्त्व को नहीं पा सकता तब अन्तर से आवाज आती है—'तत्त्वमसि'—वह तू ही है। जब तक ज्ञाता स्वयं अज्ञात है तब तक सब ज्ञान अज्ञान है, जब तक स्वयं हमारे अपने ही नेत्रों में प्रकाश नहीं है तब तक बाहर का सारा प्रकाश भी अन्धकार ही है। रहस्यदर्शी सन्त रैदास ने काशी नगरी की एक तुच्छ झोंपड़ी में जूता गांठते-गांठते भी उस विराट विभु की अनन्त लीला का रहस्य पा लिया था जहाँ वर्ष भर की सारी पूर्णिमा ही पूर्णत्व को पाने वाले ब्रह्मज्ञानी सन्तों-महात्माओं के जन्म के साथ सम्बन्धित है, वहाँ माघ पूर्णिमा ब्रह्मदर्शी महात्मा रविदासजी के पुनीत स्मरण के लिए पवित्र है।

जगत् का मिथ्यात्व

मानवता को जागरण का मंत्र देते हुए सन्त रविदास गाते हैं—

का तू सौवे जाग दिवाना, झूठी जीवन सत्त करि जाना।
जिन जन्म दिया तो रिजक उमड़ावे, घट-घट भीतर रहट चलावे।
एक ईश्वर की सत्ता के बिना, सब जगत और जीवन झूठा है।

थोथी काया, थोथी माया, थोथा हरि बिन जनम गवाया।
थोथा पण्डित, थोथी बानी, थोथी हरि बिन सवै कहानी।

एकतत्त्ववाद

रविदासजी एक ही चिन्मय सत्ता को स्वीकार करते थे तथा नाम-रूपों के भेद के कारण उस अखण्ड एकतत्त्व में भेद नहीं मानते थे—

कृष्ण, करीम, राम, रहीम, हरि, जब लग एक न पेखा।
वेद, कतेब, कुरान, पुराननि, तब लगि भ्रम ही देखा!

मानव की मूलभूत एकता

रैदासजी अध्यात्म के क्षेत्र में जात-पांत का भेद भाव बिल्कुल स्वीकार नहीं करते थे। उस एकतत्त्व के सम्मुख सभी एक जैसे हैं कोई भी छोटा-बड़ा नहीं। देह चर्म के भीतर के तत्त्व को पहचानने वाले इस चर्मकार सन्त ने गाया—

रे चित! चेत अचेत काहे, बालक को देख रे!
जाति ते कोई पद नहिं पहुंचा, राम भगति बिसेख रे।।

स्वयं अपने बारे में उनकी स्वीकारोक्ति है—

जाति भी छोटी, करम भी ओछा, ओछा किसब हमारा।
नीचे ते प्रभु ऊंच कियो है, कह रैदास चमारा।।

विश्वात्मा से मिलने की व्याकुलता

महात्मा रविदासजी उस आनन्दघन से मिलने को अत्यन्त व्याकुल हैं। वे रो-रो कर गाते हैं—

सब घट अन्तर रमसि निरन्तर, मैं देखन नहीं जाना।
गुन सब तोर मोर सब औगुन, कह उपकार न माना।
मैं तै तोरि मोरि असमझि सों, कैसे करि निस्तारा।
कहि रैदास कृष्ण करुणामय, जै जै जगत अधारा।

उस प्राण-प्राणेश्वर से मिलने की प्रेम-पीर कोई सच्चा प्रेमी ही जान सकता है—

सो कहा जानै पीर पराई, जा के दिल में दर्द न आई
दुखी दुहागिनी होई पिय हीना, नेह निरति करि सेव न कीना।।
स्याम प्रेम का पन्थ दुहेला, चलन अकेला, कोई संग न हेला।।

गुरु नानकदेव कहा करते थे—

'आखां जीवां, बिसरे मर जांवां।' उसी भाव को अपने गीत के माध्यम से गाते हुए संत रैदास कहते हैं—

दरसन तोरा जीवन मोरा, बिन दरसन क्यूं जिवै चकोरा।
साधो सतगुरु सब जग चेला, अबकै विसुरै मिलन दुहेला।
रैदास रात न सोइये, दिवस न करिए स्वाद।
अहनिसि हरिजी सुमिरिए, छांडि सकल प्रतिवाद।।

कर्म सिद्धान्त

ब्रह्म-लाभ करने के लिए रैदासजी कर्म, भक्ति और ज्ञान—तीनों भागों का महत्त्व मानते हैं। कर्म-सिद्धान्त की घोषणा करते हुए वे सन्त गाते हैं—

जो कुछ बोय, बुनिये सोई, ता में फेर-फार कस होई।
छाड़िये-कूर, भजै हरि-चरना, ताकौ मिटै जनम अरु मरना।

उपनिषदों में धर्म मार्ग को **क्षुरस्य धारा निशिता दुरत्यया** कहा गया है।

उसे सन्त रैदास कहते हैं—

आगे पन्थ खरा है झीना, खांडे धार जैसा है पैना।
जिस ऊपर मारग है तेरा, पन्थी पन्थ संवार सवेरा।।

पुष्टिमार्ग

केवल कर्म के भरोसे मुक्ति को कमाया नहीं जा सकता। प्रभु की कृपा की बड़ी आवश्यकता है। रैदास पुकारते हैं—

प्रतिज्ञा प्रतिपाल प्रतिज्ञा चिह्न, जुम भगति पूरन काम।
आस तोर भरोस है, रैदास जै जै राम।।

वे पुनः कहते हैं—

तुम चन्दन हम एरंड बापुरे, निकट तुम्हारे आसा।
संगत से परताप महातम, आवै बास सुबासा।।

अनन्यता

अपने आप को सर्वभावेन प्रभु के चरणों में चढ़ाने वाले सन्त रैदास गाते हैं—

जो तुम तोरो राम! मैं नहिं तोरौं।
तुम सौं तोरि कवन सौं जोरौं।
तीरथ वरत न करौं अन्देसा,
तुम्हरे चरन-कमल का भरोसा।
जहं जहं जाऊं तुम्हारी पूजा
तुम सा देव अन्य नहीं दूजा।

मैं अपनो मन हरि सौं जोर्‌यो, हरि सौं जोरि सवन सौं तोर्‌यो।
सब ही पहर तुम्हारी आसा, मन क्रम वचन कहै रैदासा।।

उनके शब्दों में अनन्यता की कसौटी है—

हरिजन हरिहि और न जानै, तजै आन तन त्यागी।
कह रैदास सोई जन निर्मल, निसि दिन जो अनुरागी।।

पराविद्या का चमत्कार

रैदासजी अपनी तुच्छ झोंपड़ी में बैठे-बैठे जूते गांठते-गांठते ही पराविद्या को प्राप्त कर गए थे। उन्होंने अपने मन को प्रभु की ही पाठशाला में पढ़ाया था—

चल मन, हरि चटसाल पढ़ाऊं।
गुरु की साटी, ग्यान का अक्षर,
बिसरै तो सहज समाधि लगाऊं।
प्रेम की पाटी सुरति की लेखनि,
ररौ ममौ लिखि आंक लखाऊं।

सर्व हरिमन जगत्

प्रभु की लाली को देखने के लिए गए हुए सन्त रैदास स्वयं भी उसके संग लाल हो गए थे। सब ओर उसी को देखते हुए वे गीत के माध्यम से नाच उठते हैं—

ऐसो कछु अनभौ कहत न आवै।
साहिब मिलै तो को बिलगावै।
सब में हरि है, हरि में सब हैं,
हरि अपना जिन जाना।
साखी नहीं और कोई दूसरे,
जानन हरि सयाना।

चन्द्रमा को चांदनी से अलग करके किसने देखा है? दीपक को बाती से अलग करके किसने प्रकाश को जाना है? नभ को नीलिमा के बिना कौन देख सका है? अपने हृदय वीणा के स्पन्दनों में बिठा विभु की अनन्त लीला के द्रष्टा महात्मा रविदास गुरु अनादि अनन्त के विद्युत्प्रकाश से अलग करके कौन पहचान सकेगा? आज चर्म के भीतर के अनन्त का मर्म जानने वाले रहस्यद्रष्टा रैदास के चरणों में हमारी अनन्त कोटि भाव सुमनांजलियाँ सादर समर्पित हों।

13 फरवरी 1960
दैनिक 'वीर प्रताप' (जालन्धर) में प्रकाशित

अनन्त रहस्य के द्रष्टा सन्त रैदास

काशी अघनाशी ने हमारे सांस्कृतिक इतिहास के अनेक रोमांचकारी दृश्य देखे हैं। नीलकण्ठ भगवान् विश्वनाथ की इस नगरी में एक कबूतर को बचाने के लिए अपने हाड़-मांस को तुला पर चढ़ाते राजा शिवि की तथा सत्य धर्म की रक्षा के लिए चौराहे पर खड़ा होकर अपने आपको स्त्री तथा इकलौते पुत्र समेत एक चांडाल के हाथ बेचते हुए सत्य प्रेमी राजा हरिश्चन्द्र को भी देखा। काशी की जनाकीर्ण वीथियों को वह दृश्य नहीं भूला होगा जब भगवान् शंकराचार्य की परीक्षा लेने को स्वयं भगवान् शंकर चांडाल का वेश धारण कर आचार्य शंकर का मार्ग रोक कर खड़े हो गए तथा काशी के धर्मध्वजी पण्डे तथा पण्डित उसकी छाया के स्पर्श के भय से चतुर्दिक भागने लगे थे और युवक संन्यासी शंकराचार्य ने उस पतित चांडाल को भुजाओं में भरकर आलिंगन किया था। उन्हीं की परम्परा में आए थे भगवान् रामानुजाचार्य। वे प्रतिदिन गंगा स्नान करने के पश्चात् एक शूद्र को आलिंगन कर लेते। पूछने पर वे कहा करते—जल स्नान से तो तन शुद्धि होती है पर मन की शुद्धि के लिए ऊँचे से ऊँचे ब्राह्मण को नीचे से नीचे शूद्र का आलिंगन कर आत्मा की सार्वभौम एकता की शिक्षा लेनी चाहिये।

शक्ति और भक्ति की, कर्म एवं ज्ञान-वैराग्य की इसी महान् शिवपुरी में स्वामी रामानन्दजी गाया करते थे—

रामहिं केवल प्रेम पियारा, जानि सके जो जानन हारा।
जात-पांत पूछे न कोई, हरि को भजे सो हरिका होई।

इन्हीं महान् गुरु के चरण स्पर्श से जिस फकीर के ज्ञान कपाट खुल गए वह पुण्यश्लोक संत-कवि कबीर गाया करता था—

एकै बूंद, एक मल-मूतर, एक चाम, एक गूदा।
एक जोति तैं सब उत्पन्न, को ब्राह्मन, को शूद्रा।।

इस रहस्यवादी अलमस्त फकीर ने जान लिया है—

कौम छत्तीस एक ही जाति, ब्रह्म बीज का सकल पसारा।

समता एवं समरसता की यह रागिनी जब पंजाब में गुरुनानक की रबाब से तथा काशी में कबीर के हथकरघे के ताने-बाने की तार-तार से झंकृत हो रही थी तभी काशी में एक अन्य महान् ब्रह्मज्ञानी सन्त का उदय हुआ। यह महात्मा रविदासजी, कबीर, नानक के समकालीन, प्रेमदीवानी मीरा के प्रेरक तथा धन्ना और पीपा के संगी थे।

हिन्दी साहित्य का भक्तिकाल इसलिए भी स्वर्णकाल माना जाता है कि उस काल में जात-पांत की भेद भरी दीवारें भक्ति भागीरथी के अजस्र प्रवाह में बह गईं तथा मानवात्मा के भीतर की एकात्मता के दर्शन प्राप्त हुए। इसी काल में नामदेव दरजी, दादू धुनिया, कबीर जुलाहा, गोरा कुम्हार, धन्ना जाट एवं रैदास चमार जैसे पुण्यश्लोक भक्तरत्न हुए जो केवल हिन्दूजाति का ही नहीं वरन् समूची मानव-जाति का मुख उज्ज्वल करने वाले हैं।

सन्त रविदासजी एक विराट चिन्मय सत्ता के उपासक थे। उनका कथन है कि जब तक हम उस एक तत्त्व को नहीं पहचानते हैं तब तक जो कुछ देखते हैं वह भ्रम ही भ्रम है।

अनन्त रहस्य के द्रष्टा : सन्त रैदास

कृष्ण, करीम, रहीम, राम-हरि, जब लग एक न पेखा।
वेद, कतेब, कुरान, पुराननि, तब लगि भ्रम ही देखा।।

सृष्टि में सब ओर उसी लीलामय की अनन्त लीला देखकर जब भक्त उस चिन्मय तत्त्व को पाने के लिए तड़प उठता है तब हृदय की दशा बड़ी विचित्र हो जाती है। भक्तों की भक्ति समझी जा सकती है पर वेदांतियों का भक्ति विरह तो समझ से ऊपर की वस्तु है क्योंकि उनकी तो अपने आप से ही मिलने की तड़प है। यह तो वैसे ही है जैसे आंख स्वयं अपने आप को देखने के लिए आकुल हो उठे। स्वामी रामतीर्थ ने इसी अवस्था का वर्णन करते हुए गाया है—

मेरा इक यार और मैं भी, एक ही बस्ती में बसते हैं,
मगर किस्मत का चक्कर है, कि दर्शन को तरसते हैं।

कवि इकबाल ने इसी तड़प को अपने गीतों में साकार करते हुए कहा है—

ढूंढ़ता फिरता हूं मैं इकबाल अपने आप को,
आप ही गोया मुसाफिर, आप ही मंजिल हूं मैं।।

उस विराट् की प्राप्ति के लिए अनेक साधनाएं बताई जाती हैं, उन में माला फेरना, नमाज पढ़ना, पूजा-अर्चना करना इत्यादि कई प्रकार का कर्मकाण्ड भी सम्मिलित है। प्रभु के प्यारे रविदासजी इस बाह्याडंबर की आवश्यकता नहीं मानते—

तसबी फेरो प्रेम की, दिल में करौं नमाज,
फिरौं सकल दीदार को, उसी सनम के काज।।

क्योंकि हरि तो अन्तर में ही समाया हुआ है। इसलिए बाहरी क्रियाओं का क्या लाभ है।

तौजी और नमाज न जाऊं, न जानूं धरि रौजा
बांग जिकर तब ही नें बिसरी, जब तें यह दिल खोजा।।

उस अन्तर के नारायण को पाने का एक ही मार्ग है—

प्रेम की कठिन डगरिया
जिस के इश्क आसरा नाहीं,
क्या नमाज क्या पूजा।।

अन्तर के पट खुल जाने पर, भीतर कुरेल करने वाले हंस का साक्षात् हो जाता है। उस अवस्था में तो 'नानक लीन भयो गोविन्द सौं ज्यों पानी संग पानी।' आत्मा-परमात्मा के उस महा मिलन पर्व पर सन्तप्रवर रविदासजी गाने लगते हैं—

मन ही पूजा मन ही धूप।
मन ही सेऊं सहज स्वरूप।।

आह्लाद के दर्पण में आह्लाद के दर्शन करने वाले अनश्वर प्रेमी के अनन्त प्रेमामृत को पाने वाले वे रहस्यदर्शी महात्मा रविदास आत्मा एवं परमात्मा की मूलभूत एकता से अनुप्राणित दृश्यमान द्वैतलीला कौतुक देख कर गीत के माध्यम से नृत्य कर उठते हैं—

प्रभुजी! तुम चन्दन हम पानी, जाकी अंग अंग बास समानी।
प्रभुजी! तुम घन, हम वन मोरा, जैसे चितवत चन्द चकोरा।
प्रभुजी! तुम दीपक हम बाती, जा की जोति बरै दिन राती।
प्रभुजी! तुम मोती हम धागा, जैसे सोनहिं मिलत सुहागा।
प्रभुजी! तुम स्वामी, हम दासा, ऐसी भक्ति करै रैदासा।।

चन्द्रमा को चांदनी से अलग करके किसने देखा है? दीपक को बाती से अलग करके किसने प्रकाश को जाना है? नभ और उसकी नीलिमा में भी कौन अन्तर देख सका है? इसी प्रकार हृदय के स्पन्दनों में विराट् की अनुभूति पाने वाले महात्मा रविदास को विराट के विद्युत्प्रकाश से अलग करके कौन पहचान सकेगा? 'प्रियतम की लाली में मैं,' भी हो गई लाल, को चरितार्थ करने वाले सन्त रविदास अनन्त रहस्य के दर्शन से स्वयं भी अनन्त रहस्य बन गए हैं।

अनन्त की वन्दना। अनन्तद्रष्टा की वन्दना। विश्ववन्द्य की वन्दना।

महाराष्ट्र के सन्त एकनाथ

जैसे सगर के साठ हजार पुत्रों का उद्धार करने के लिए राजर्षि भगीरथ के तपोबल से दिव्यालोक से निःसृत होकर सदा पावनी जाह्नवी, गंगा कलकल निनाद करती हुई भारत भूमि में प्रवाहित हुई तथा अपने पावन सलिलामृत के स्पर्श मात्र से उन सगर पुत्रों का उद्धार करती गई, उसी प्रकार मध्यकालीन भारत में विदेशी तथा विधर्मी अन्यायों एवं अत्याचारों से हत्प्राण हुए कोटि-कोटि भरत-सुतों का उद्धार करने के लिए इस धर्म प्राण देश की युगों की संचित कमाई से जो पावन भक्ति भागीरथी प्रवाहित हो चली, उसी ने कोटि-कोटि भारत सन्तानों को उस महान् संकट सागर से उबार लिया। जैसे गंगा की हजारों मील की लम्बी यात्रा के चप्पे-चप्पे पर तीर्थ हैं उसी प्रकार इस भक्ति-भागीरथी के रुचिर प्रवाह के पग-पग पर हमें मुक्तात्मा तीर्थ स्वरूप महापुरुषों के दर्शन होते हैं। उन अमर-विभूतियों की कोई भी यशोगाथा महाराष्ट्र के पुण्यश्लोक सन्त-महात्मा एकनाथ की अर्चना के बिना अधूरी रहेगी।

विक्रम की 17वीं शती में भक्ति-भागीरथी अपने पूर्ण यौवन पर थी। पंजाब की पुण्यभूमि सन्त शिरोमणि गुरु अर्जुनदेव के भक्ति पदों से गूंज रही थी, गंगा के तट पर श्रीमद्गोस्वामी तुलसीदासजी का 'मानसामृत' पान कर जाति में चैतन्य संचरित हो रहा था, यमुना के तट पर प्रज्ञाचक्षु सूरदासजी अपनी हृदय वीणा के स्वरों को अपने एकतारों की झंकार में आंक रहे थे, चित्तौड़ की प्रेम वियोगिनी मीरा अपने माधवजी से मिलने के लिए परम व्याकुल हो उठी थी, राजस्थान में दादूदयालजी के पदों से लक्षावधि हृदयों को शान्ति लाभ हो रहा था, दिल्ली में रहीम और रसखान के हृदयहारी पद अभी वातावरण में गूंज ही रहे थे और महाराष्ट्र में सन्त ज्ञानेश्वर तथा नामदेवजी के पश्चात् सन्त तुकाराम, एकनाथ तथा समर्थ गुरु रामदास का युग आ चुका था।

महाराष्ट्र जीवन प्रभात में इन पूज्य सन्त-विभूतियों का स्थान एक साथ उगने वाले अनेक सूर्यों के समान है। महाराष्ट्र की कृतज्ञ जनता आज तक इन महाभागवत सन्तों के यश में गाती है—

ज्ञानेश्वर, एकनाथ, रामदास जय।
तुकाराम, नामदेव, पाण्डुरंग हरि।।

अर्थात्—भगवान् ज्ञानेश्वर, महात्मा एकनाथ, समर्थ रामदास, सन्त तुकाराम तथा भक्त नामदेव—ये साक्षात् श्रीहरि पाण्डुरंग के स्वरूप हैं।

महाराष्ट्र के महातीर्थ पैठण में ही भगवान् पाण्डुरंग के एक घनिष्ठ भक्त सन्त एकनाथजी का प्रादुर्भाव हुआ था। एकनाथजी का प्रारम्भिक जीवन रामचरित मानस के अमर गायक श्रीमद्गोस्वामी तुलसीदासजी से बहुत मिलता है। तुलसीदासजी का जन्म गंगा तीर स्थित सौरों नगर में संवत् 1554 में हुआ तथा एकनाथजी का प्रादुर्भाव दक्षिण की गंगा, गोदा-गंगा (गोदावरी) के पावन तीर पर पैठण नगर में सं. 1589 में हुआ। इन दोनों महाभागवत महापुरुषों के बारे में किवदन्ती है कि वे अमुक्तमूल नक्षत्र में पैदा हुए तथा एक वर्ष के भीतर ही दोनों के सिर से माता की वात्सल्यमयी शीतल छाया उठ गई। तुलसी-जननी हुलसी की मृत्यु के पश्चात् तुलसीदास का लालन-पालन कुछ समय दासी चुनियाँ ने किया था, पीछे उन्हें नरहरिदास तथा शेष सनातन प्रभृति गुरुओं का आशीर्वाद प्राप्त हुआ था। एकनाथजी के माता-पिता की मृत्यु के पश्चात् लालन-पालन दादा-दादी ने किया था। 6 वर्ष की अवस्था में उनका यज्ञोपवीत संस्कार हुआ तथा 12 वर्ष की अवस्था में उन्होंने रामायण तथा महाभारत की शिक्षा प्राप्त कर ली थी। तभी उनके मन में तीव्र वैराग्य का स्रोत फूट निकला और वे जनार्दन स्वामी के दर्शनार्थ देवगढ़ पहुँचे तथा गुरु सेवा एवं योगाभ्यास करने लगे। तीर्थ-यात्रा करने के बाद वे 25 वर्ष की अवस्था में पैठण वापस आए तथा शेष आयुष्य ईश्वर भजन में बिताया। तुलसी तथा एकनाथ दोनों ने विवाह किया किन्तु दोनों ही गृहस्थाश्रम के मोहपाश से मुक्त हो गए थे। तुलसीदासजी ने रामकथा लिखी तथा एकनाथजी ने कृष्णकथा लिखी। तुलसीदासजी के रामचरित मानस का हिन्दी जगत में जैसा मान है मराठी जगत में 'एकनाथी भागवत' के लिए वैसी ही श्रद्धा है। तुलसी की पीयूष धारा का प्रवाह गंगा तथा यमुना के पुलिनों पर हुआ, एकनाथजी की अमृत स्रोतवाहिनी का प्रवाह गोदा-गंगा के तीर से हुआ। संवत् 1631 में जब तुलसीदासजी की रामायण अयोध्या में प्रसिद्धि को प्राप्त हुई, उसी वर्ष काशी में एकनाथजी की नाथ भागवत निर्मित हुई। जहाँ तुलसीदासजी ने चौपाई छन्द में राम कथामृत छलकाया वहाँ एकनाथजी ने ओवी छन्द में श्रीकृष्ण लीलामृत संगीत मुखर कर दिया है। भारत की कोटि-कोटि सन्तानें इन दो भागवत भक्ति के अमर गायकों की चिर ऋणी रहेगी। महाराष्ट्र के महलों से लेकर कुटियों तक सन्त शिरोमणि एकनाथजी की वाणी जनता की आध्यात्मिक प्यास बुझाती आई है और युगों तक उनकी वाणी की यह सुधा सलिला जनगण के हृदय की तृषा बुझाती रहेगी।

संवत् 1656 चैत्र कृष्णा 6 को महाभागवत, एकनाथजी महाराज ने गोदावरी के पावन तीर पर अपने नश्वर शरीर को त्यागा। 'नाथ षष्ठी' की इस पुण्य पावन तिथि पर हम उन भगवतदर्शी, महाभागवत महापुरुष के चरणों में कोटि-कोटि हृदयांजलियाँ समर्पित करते हैं।

युग-गुरु राजा राममोहनराय

26 सितम्बर 1833 के दिन इंग्लैण्ड के ब्रिस्टल नगर में भारतमाता के अत्यन्त गौरवशाली पुत्र का स्वर्गवास हो गया। तब से अब तक हमारी धरती अपने जन्मदाता भगवान अंशुमाली के गिर्द 125 चक्कर लगा चुकी है और उसके साथ ही भारत का भाग्य-चक्र भी कई बार ऊपर और नीचे घूम चुका है, किन्तु उस महापुरुष का यश आज तक अक्षुण्ण बना हुआ है। वे महामानव भारत के आधुनिक युग के निर्माता, युग-गुरु राजा राममोहनराय हैं। ब्रिस्टल नगर की अनन्त शान्ति में उनकी एकान्त समाधि है। वहाँ भारतमाता का लाडला इंग्लैण्ड की गोद में चिरनिद्रा में सोया हुआ है। अपने जीवन द्वारा उसने पूर्व तथा पश्चिम को निकट लाने का प्रयास तो किया ही था, अपनी मृत्यु द्वारा भी उसने प्राच्य एवं पाश्चात्य को सदा के लिये एक पवित्र सम्बन्ध से जोड़ दिया है। राजा राममोहनराय की समाधि पर एक अंग्रेज पहरेदार सदा पहरा देता है। उसके पास एक पुस्तक है जिसका दर्शन करना बड़ा आनन्ददायक है—समाधि पर आने वाले दुनिया के भिन्न-भिन्न देशों तथा भिन्न-भिन्न धर्मों के हजारों महापुरुषों द्वारा राजा राममोहनराय को समर्पित की गई श्रद्धाञ्जलियाँ उसमें अंकित हैं। पूरी सवा शताब्दी पश्चात् उस महान् भारतीय की विदेश-स्थित समाधि को अपने मानस पटल पर चित्रित कर आज भारत के कोटि-कोटि नर-नारी उस युगद्रष्टा को अपनी श्रद्धा के फूल चढ़ा रहे हैं।

संस्कृतियों के संगमस्थल पर महापुरुषों का आविर्भाव होता है। प्रभु रामचन्द्र द्वारा निर्मित सागरसेतु की अपेक्षा उन द्वारा आर्य-अनार्य संस्कृतियों के मध्य निर्मित सांस्कृतिक सेतु-बंध अधिक महत्त्व का है। भारत के धर्म का पश्चिम के विज्ञान से सम्बन्ध आने पर, केवल एक धर्मगुरु की नहीं वरन् महागुरु की आवश्यकता थी। आचार्य क्षितिमोहन सेन के शब्दों में, युग की प्रबलतम मांग के उत्तर में आने वाले राजा राममोहनराय तथागत कहे जा सकते हैं—यथा अपेक्षितः तथा आगतः। उस महान् सांस्कृतिक वीर का जन्म 22 मई 1774 के दिन बंगाल के जिला हुगली के राधानगर गांव में एक उच्च ब्राह्मण परिवार में हुआ।

तत्कालीन भारत की दशा बड़ी दयनीय थी, प्राचीन गौरव नष्ट हो चुका था। शासक भारतीय जनमत पर अपना धर्म लादने के लिये प्रयत्नशील थे। पश्चिम

के बुद्धिवाद ने भी धर्म पर तीक्ष्ण प्रहार शुरू कर दिये थे। धर्म रूढ़ियों के दलदल में फंसा हुआ था। धर्म के नेता केवल अनपढ़ पण्डा लोग थे। समाज में अनेक कुरीतियाँ घुस चुकी थीं। इस सबको बदलकर आलोक का मार्ग दिखाने वाले वीर का नाम ही राममोहनराय है। धर्म, राजनीति, समाजसुधार, शिक्षा, विश्वप्रेम, सभी क्षेत्रों में मार्गदर्शक का कार्य राजा राममोहनराय ने किया। युगद्रष्टा ने भावी भारत का एक भव्य चित्र आंखों के सामने रखकर सम्पूर्ण जीवन उसी चित्र को साकार करने के लिये अर्पित कर दिया। उस महान् द्रष्टा के विचारों के अंकुर आज तक फूट रहे हैं तथा नये-नये फूलों तथा फलों द्वारा नवीन भारत की फुलवारी को सुवासित कर रहे हैं। श्रीयुत एन.सी.ई. जकारिया के शब्दों में, 'हिन्दू नवोदय की धारा के युग में छोटे-बड़े अनेक व्यक्तित्व उत्पन्न हुए हैं। यह धारा अब भी प्रवाह में है और आज भी ऐसे व्यक्तित्वों का आविर्भाव अवरुद्ध नहीं हुआ है। किन्तु इन सारे व्यक्तित्वों के आध्यात्मिक पिता राममोहनराय हैं।'

राजा राममोहनराय की प्रतिभा सर्वतोमुखी थी। बड़ी अल्पायु में ही उन्होंने फारसी, अरबी, संस्कृत, अंग्रेजी, लातीनी, हिब्रू तथा ग्रीक भाषाओं में उच्च योग्यता प्राप्त की तथा अन्य धर्मग्रंथों के अतिरिक्त यहूदी और ईसाई बाइबिल का अध्ययन उनकी मूल भाषाओं में किया।

भारत के शिक्षा-शास्त्रियों में राजा राममोहनराय का स्थान इसलिये महत्त्वपूर्ण है कि उन्होंने ही सबसे पहले वर्तमान शिक्षा प्रणाली के लिये मांग की थी, राजा राममोहनराय बड़े दूरदर्शी थे, वे स्पष्ट देख सके थे कि भारत का भविष्य विज्ञान, शिल्प, इतिहास, राजनीति और अन्य पाश्चात्य शास्त्रों का ज्ञान प्राप्त करने में है और यह ज्ञान भारत में अंग्रेजी द्वारा ही फैलाया जा सकता है। भारत को विश्व ज्ञान से भर देने के लिये वे अंग्रेजी को एक अच्छा साधन समझते थे, किन्तु अंग्रेजी के साथ वे अंग्रेजीयत के समर्थक कभी नहीं थे। राममोहनराय इस निष्कर्ष पर पहुँचे थे कि भारत के प्राचीन सत्यों का यूरोप के नवीन सिद्धान्तों के साथ सामंजस्य बिठाये बिना भारत का कल्याण नहीं है। वेदान्त और वैज्ञानिकता के मणि-कांचन संयोग का संदेश जो बाद में विवेकानन्द और रवीन्द्रनाथ की वाणी से गुंजारित हुआ, सबसे पहले राममोहनराय की ही मेधा का फल था। उन्होंने लार्ड एम्एर्स्ट को पत्र लिखकर भारत के लिये आधुनिक वैज्ञानिक शिक्षा की प्रबल मांग की थी तथा अपने दो मित्रों की सहायता से सन् 1816 में हिन्दू महाविद्यालय की स्थापना की जो आगे चलकर प्रेसिडेन्सी कॉलेज के नाम से सुस्थापित हुआ। आधुनिक युग में नारी शिक्षा के लिये सबसे पहले आवाज उठाने वाले राजा राममोहन ही थे। देशवासियों को मोह-निद्रा से जगाते हुए उस क्रान्तदर्शी राजा ने कहा कि भारत की नारियों को वैसी ही विद्या-विदुषी बनना चाहिए जैसी प्राचीन काल में मैत्रेयी, गार्गी, लीलावती और विद्योत्तमा थी।

भारत के कोटि-कोटि जनगण के हृदयों पर राज करने वाले इस सर्वस्वदानी राजा ने सबसे पहले हिन्दी को राष्ट्रभाषा के रूप में घोषित किया। तब तक स्वामी दयानन्द सरस्वती या भारतेन्दु हरिश्चन्द्र का जन्म तक न हुआ था तथा हिन्दी का आधुनिक काल भी प्रारम्भ न हुआ था। राजा राममोहन ने ब्रह्मसूत्रों पर अपना भाष्य बांग्ला में प्रकाशित करने से पहले हिन्दी में प्रकाशित किया था। आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी के मत में, राममोहनराय आधुनिक हिन्दी गद्य के प्रारम्भिक लेखकों में से एक हैं। बांग्ला भाषा में भी ब्रह्म संगीत के आदि रचयिता राजा राममोहनराय ही हैं। उसी रहस्यवादी गीत-शैली का चरमोत्कर्ष कवीन्द्र रवीन्द्र की गीताञ्जलि में हुआ जिसका विश्वभर में गान हुआ। राजा राममोहन हिन्दू धर्मसुधार के पिता माने जाते हैं। ईसाई धर्म के विषय में जो बात जॉन विकलिफ के लिये कही जाती है, वही हिन्दू धर्म के विषय में राममोहनराय के लिये कही जा सकती है। राय के उदय से पूर्व की स्थिति बड़ी गम्भीर थी। बाहर से आने वालों ने हिन्दू धर्म के जर्जरित वृक्ष को देखा और परामर्श दिया कि इस प्राचीन, सूखे, फलरहित अनावश्यक झाड़-झंखाड़ को रखने से क्या लाभ? श्री रामधारीसिंह दिनकर के शब्दों में—'ईसाई पादरी हिन्दुत्व पर निन्दा की वृष्टि कर रहे थे। हिन्दू धर्म पर चारों ओर से आलोचना के बाण बरस रहे थे। किन्तु उनका उत्तर देने वाला कोई नहीं था। हिन्दू धर्म का नेता पंडा और पुरोहित वर्ग था जिसकी सबसे बड़ी पूंजी रूढ़ियाँ और अंधविश्वास था। भला यह वर्ग क्या कहकर निन्दकों को जवाब देता?' पढ़े-लिखे तथा अनपढ़ हिन्दू धड़ा-धड़ ईसाई बन रहे थे। प्रायः धर्म-परिवर्तन का उद्देश्य सामाजिक सुविधा होता था। स्वयं माइकल मधुसूदन दत्त जैसे विद्वान ने भी स्वीकार किया है, 'मैंने पेट भरने के लिये ही ईसाई धर्म स्वीकार किया।' राजा राममोहन को तिहरा कार्य करना था। ईसाई आक्रमण से हिन्दू धर्म की रक्षा करना, निरर्थक रूढ़ियों की चट्टानों को तोड़कर हिन्दुत्व को शुद्ध धर्म के आलोक से भरना तथा सभी धर्मों के श्रेष्ठ तत्त्वों के समन्वय से विश्वधर्म का स्वरूप निर्माण करना। इतिहास साक्षी है कि राजा राममोहन इन तीनों कार्यों में यशस्वी हुए। जैसे कृषिकार धान्य बोने से पहले घास-फूस आदि को उखाड़ता है, अध्यात्मिक कृषिकार को रूढ़ियों के झाड़-झंखाड़ को उखाड़ना पड़ता है, राममोहन ने बताया कि मूर्तिपूजा केवल सीमित सामर्थ्य एवं मंद बुद्धिवाले लोगों के लिये मार्ग है जबकि आनन्द प्राप्ति का सर्वोत्तम मार्ग है—शुद्ध अध्यात्मिक-चिंतन। चाहे वे स्वयं मूर्तिपूजा के समर्थक नहीं थे किन्तु वे किसी का हृदय दुःखाना भी नहीं चाहते थे। ब्रह्म समाज के नियमों में उन्होंने स्पष्ट लिखा था कि 'पूजा में किसी भी ऐसी सजीव या निर्जीव वस्तु की निन्दा नहीं की जायेगी जिसकी थोड़े से लोग भी पूजा या आराधना करते हों। ब्रह्म समाज हिन्दू धर्म की वह पहली अंगड़ाई थी जो विदेशियों के प्रहारों से हिन्दुत्व की नींद टूटने पर सबसे पहले प्रकट हुई थी। भारतवर्ष यूरोप के साथ जो समन्वय खोज रहा था, उसकी

झलक हमें ब्रह्म समाज के रूप में दिखाई दी। राजा राममोहन हिन्दुत्व, इस्लाम तथा ईसाई धर्म, तीनों पर समान अधिकार रखते थे। हिन्दुत्व में उन्होंने वेदान्त का आश्रय लिया। उनकी साधना में गायत्री मंत्र का जाप तथा उपनिषदों का पाठ सम्मिलित था। गम्भीर अध्ययन एवं वैज्ञानिक दृष्टिकोण के कारण वे विश्ववादी बन गये थे। दिनकर के शब्दों में, 'भारत का कायाकल्प हुआ, निरर्थक रूढ़ियाँ धूलवत् झड़ गईं, मनुष्य की उदारता में वृद्धि हुई और हिन्दूधर्म इस रूप में खड़ा हुआ जिसे हम विश्व धर्म की भूमिका कह सकते हैं।'

राजा राममोहन धार्मिक सुधारक से भी बढ़कर समाज सुधारक अधिक थे। सती-प्रथा के उन्मूलन का श्रेय उन्हीं को मिलता है। वैसे इस प्रथा को समाप्त करने का एक असफल प्रयास पहले सम्राट् अकबर भी कर चुका था। राजा राममोहन के बड़े भाई का देहांत होने पर उन्होंने अपनी भावज को बहुत समझाया कि वह सती न होवे, परन्तु वह उस समय तो न मानी। बाद में वह चिता पर रखी गई तो उसने चीख-चिल्लाहट शुरू की और उठकर भागने का यत्न किया पर सम्बन्धियों ने बांसों से उठने न दिया और ढोल बजाकर उसके रुदन को भी दबा दिया। राममोहन के कोमल हृदय पर इस करुण दृश्य से बड़ा आघात लगा। उन्होंने मनुस्मृति तथा अन्य धर्मशास्त्रों के आधार पर यह प्रमाणित किया कि बलपूर्वक किसी नारी को जला डालना घोर पाप है। उनके प्रयत्नों के फलस्वरूप उनके देहान्त से 4 वर्ष पूर्व ही सन् 1829 में लार्ड विलियम बेंरिङ्क ने सती-प्रथा को अवैध घोषित कर दिया। भारत में आज पहली बार बहु विवाह प्रथा अवैध घोषित हुई है, किन्तु राजा राममोहनराय ने डेढ़ शती पूर्व ही इसे हिन्दू धर्मशास्त्रों के विरुद्ध घोषित किया था। स्त्रियों के अधिकारों तथा सम्पत्ति-उत्तराधिकार पर भी उन्होंने ऐसे मत स्थापित किये थे जो आज मान्य हो रहे हैं।

सन् 1857 के महान् भारतीय संग्राम से आधी शती पूर्व ही राजा राममोहन में हमें भारतीय स्वातंत्र्य की एक ज्वलन्त भावना के दर्शन होते हैं। इंग्लैण्ड के सम्राट् को उन्होंने लिखा कि यदि भारत के साथ उदारता का व्यवहार हुआ तो भारत ब्रिटेन का मित्र बन सकता है अन्यथा वह एक पक्के शत्रु के समान स्थायी संकट भी बन सकता है। उनकी आत्मा की सबसे बड़ी आकांक्षा स्वतंत्रता ही थी। भारत की गुलामी की शृंखलाओं को तोड़ने के लिये प्रयत्नशील उस स्वातंत्र्यवीर के विषय में उनके समकालीन एक अंग्रेज लेखक ने लिखा—'वह या तो स्वतंत्र होकर रहेगा या रहेगा ही नहीं।' उन्होंने भारत में स्वतंत्र प्रेस के लिये प्रयत्न किया तथा प्रेस रेग्यूलेशन ऐक्ट का घोर विरोध किया।

विश्व प्रेम तथा अन्तरराष्ट्रीयता के क्षेत्र में भी राममोहनराय युग के पथ-प्रदर्शक थे। स्पेन में वैधानिक शासन हो जाने का समाचार सुनकर वे प्रफुलित

हो गये तथा उन्होंने कलकत्ता के टाउन हॉल में एक महान् भोज दिया। उन्होंने आयरलैंड के साथ उसकी राजनीतिक स्वाधीनता के संघर्ष में भी सहानुभूति प्रकट की। इंग्लैण्ड जाते हुए वे मार्ग में वे-कैप पर रुके तथा चाहे वे तनिक लंगड़ाते हुए ही फ्रांस के स्वाधीनता के झण्डे तक चलकर गये तथा फ्रांस के झण्डे को स्पर्श कर फ्रांस की राज्य-क्रान्ति की भावना का अभिवादन किया। जब नेपल्स में स्वाधीनता आन्दोलन असफल हो गया तो उन्होंने अपने मित्रों से मिलना बंद कर दिया। लीग ऑफ नेशन के निर्माण से एक शताब्दी पूर्व राजा राममोहनराय के ऐसे उदार अन्तरराष्ट्रीय विचार थे। राममोहनराय के अपने विचार में, 'सारी मनुष्य-जाति एक परिवार है तथा जो अनेक जातियाँ और राष्ट्र हैं वे उसी एक परिवार की शाखायें हैं।' आज भारत की वैदेशिक नीति भी इसी भावना से अनुप्राणित है, जिसका मूल्यांकन करते हुए भी दिनकर ने लिखा है—'यूरोप की विश्व मानवता संकीर्ण थी, क्योंकि उसमें पूर्वी जगत् के लिये स्थान नहीं था, दुर्बल जातियों की गणना नहीं थी।.... किन्तु राममोहनराय की विश्व मानवता का वृत्त बहुत अधिक विस्तृत था जिसमें समस्त भू-मण्डल की स्वतंत्र, समृद्ध, पराधीन, दलित और निम्नोन्नत जातियों के लिये एकसमान स्थान था।'

उस युगद्रष्टा एवं युगस्रष्टा राजा राममोहनराय को उनकी 125वीं श्राद्ध तिथि पर कोटि-कोटि श्रद्धाञ्जलियाँ सादर समर्पित हो।

27-9-1958
आकाशवाणी वार्त्ता

प्रत्येक राष्ट्र के प्राण भी किसी बिन्दु विशेष में केन्द्रित होते हैं। वहीं उस राष्ट्र का राष्ट्रीयत्व बसता है और जब तक उस मर्म स्थान पर आघात नहीं होता तब तक वह राष्ट्र मर नहीं सकता....। धर्म ही हमारे तेज, बल, इतना ही नहीं हमारे राष्ट्रीय जीवन का मूलाधार है।....यदि तुमने इस मर्मस्थल को छोड़ दिया तो सावधान! तुम सर्वनाश को निमंत्रण दे दोगे।

—स्वामी विवेकानन्द

स्वामी दयानंद सरस्वती

'मनुष्य उसे कहना चाहिये जो अत्याचारी से न डरे, धर्मात्मा और निर्बल से डरता रहे। इस कार्य में चाहे उसे बड़ा भारी दुःख मिले या जान भी चली जाए किन्तु वह अपने मानव धर्म से कभी अलग न हो।' स्वामी दयानंद द्वारा दी हुई मनुष्य की यह परिभाषा स्वयं उन पर भी कितनी अच्छी तरह लागू होती है। वे मानवता के मुकुटमणि थे और मानवता के उद्यान के एक सुन्दर खुशबूदार फूल थे जिसकी सुगन्ध युग-युग तक फैली रहेगी।

'मैं लोगों को बंधनों से छुड़ाने के लिये आया हूँ, बांधने के लिए नहीं।' इन शब्दों से दया के सागर ने आज से पूरे 75 साल पूर्व अपने को विष देने वाले रसोइये को कुछ पैसे देकर भगा दिया ताकि पुलिस उसे पकड़ न ले। 30 अक्टूबर 1883 की वह संध्या जब मिट्टी के हजारों दीये दीपावली पर जल उठे, तो वेदज्ञान का जिन्दा दीपक स्वामी दयानंद सदा के लिए बुझ गया। स्वामीजी का महानिर्वाण हो गया। उनका शरीर रूपी दीया चाहे उसी दिन टूट गया पर उनकी आत्मा का प्रकाश अभी भी संसार में जगमगा रहा है।

प्रसिद्ध इतिहासकार एच. जी. वैल्स ने अपने ग्रन्थ 'विश्व का इतिहास' में यह लिखा है कि हजरत ईसा मसीह ने सूली पर चढ़ते समय यह कहा, 'भगवान्, आप मेरा साथ क्यों छोड़ रहे हैं?' यह शब्द कोई अधिक गौरव प्रकट नहीं करते। स्वामी दयानंद का मरते समय के वाक्य, 'प्रभु, आपकी इच्छा पूर्ण हो।' बहुत ऊँचे भाव प्रकट करते हैं।

साधु टी. एल. वासवानीजी ने कहा है, 'मैं कभी आर्य समाज का सदस्य नहीं रहा हूँ।....पर स्वामी दयानंद सदा मेरे लिये अनोखी खिंचावट वाला चुम्बक रहे हैं। मैं उनकी याद में आनन्द की हिलोरें लेता हूँ।'

योगीराज अरविन्द घोष लिखते हैं कि यदि भारत के महापुरुषों को हिमालय की चोटियाँ मान लें तो ऋषि दयानंद एक मजबूत ऊँची चोटी के समान है जो साक्षात् बल की मूर्ति है जिसके सिर पर की हरियाली वातावरण को शुद्धता प्रदान

करती है और जिसके वक्ष से फूटकर उठे जल का झरना सारी घाटी को शीतलता और जीवन प्रदान करता है।

भारत में एक नई क्रान्ति के अग्रदूत स्वामी दयानंद सरस्वती का जन्म गुजरात के काठियावाड़ के मौरवी राज के टंकारा नामक ग्राम में हुआ था। गिरनार पर्वत की चट्टानों जैसा बल एवं तट से टकराती लहरें और सागर जैसी गहन गम्भीरता—यह सब स्वामीजी के व्यक्तित्व में समा गए। उनका जन्म गुजराती ब्राह्मणों की औदीच्य शाखा के एक सामवेदी कुटुम्ब में हुआ था। शिवरात्रि के उत्सव में उन्हें बोध प्राप्त होने की घटना जगत प्रसिद्ध है। यह एक विचित्र प्रसंग है कि भगवान् कृष्ण का जन्म मथुरा में हुआ। पर उन्होंने अपना साम्राज्य द्वारिका नगरी में बनाया। इसके विपरीत स्वामी दयानंद का जन्म गुजरात में हुआ। पर वे अपनी शिक्षा प्राप्त करने के लिये मथुरा में आ बसे। पर स्वामीजी के उपदेश का नन्हा पौधा न तो गुजरात में पैदा हुआ और न ही मथुरा में अच्छी तरह फला। यह तो पंजाब की धरती पर खूब फूला फला। पंजाब की धरती जहाँ, सब से प्रथम वेदों का ज्ञान हुआ, वहीं पर स्वामीजी का वेदों का संदेश अपनी जड़ें जमा सका। बहुत कम लोगों को ज्ञात है कि स्वामी दयानंद ने मथुरा में जिस नेत्रहीन गुरु स्वामी विरजानंद से वेदों की शिक्षा ग्रहण की और जिन्हें गुरु दक्षिणा स्वरूप गुरु के आदेशानुसार देश भर में घूम-घूम कर वेदों का उपदेश किया उन स्वामीजी (विरजानंदजी) का जन्म पंजाब के प्रसिद्ध नगर करतारपुर में हुआ था। इसलिये स्वामी दयानंद में गुजरातियों सी दृढ़ता, मथुरावासियों सी विद्वत्ता एवं पंजाबियों जैसा जोश—यह सबकुछ समा गया था।

श्री रामधारीसिंह दिनकर के शब्दों में—जिस प्रकार हमारी राजनीति के क्षेत्र में वीरता का तेज सबसे पहले लोकमान्य तिलक के रूप में प्रकट हुआ उसी प्रकार संस्कृति के क्षेत्र में भारत का गौरव सबसे पहले स्वामी दयानंद के रूप में प्रकट हुआ। ब्रह्म समाज एवं प्रार्थना सभाएं जैसी कुछ संस्थाएं समाज सुधार कार्य में लगी थीं किन्तु उनके अन्दर यह दुःख सताता रहता था कि वे विदेशियों की नकल कर रहे हैं। स्वामी दयानंद ने ललकार कर कहा कि हमारा सच्चा धर्म वैदिक धर्म ही है, अतः इसे अपनाकर ही हम विश्व-विजयी हो सकते हैं।

स्वामी दयानंद का सबसे महत्त्वपूर्ण कार्य है—वेदों का उद्धार करना। हर देश का एक गौरव होता है, उसे भुलाकर वह जाति मिट जाती है। भारत का यह गौरव रहा है कि जब बाकी सारा संसार गफलत की नींद में सो रहा था, अमरीका का कुछ पता ही नहीं था और यूरोप के लोग मनुष्यों और पशुओं का कच्चा मांस खाते थे, तब सब से पहले भारत के ऋषियों ने वेदों के ज्ञान की मशाल हाथ में लेकर सारे विश्व को प्रकाश दिया। ऋग्वेद से ज्यादा पुरातन ग्रन्थ विश्व के किसी पुस्तकालय में

नहीं है। 19वीं सदी में भारत के गुलाम होने के कारण कुछ पश्चिमी विद्वानों ने वेदों को गड़रियों का गीत कह कर पुकारना शुरू किया। इस से भारत के सम्मान को बहुत क्षति पहुँची। इस समय भारत के गौरव की रक्षा हेतु स्वामी दयानंद सरस्वती आए। उन्होंने सकल भारत में घोषणा की कि वेद ही सभी विद्याओं का मूल है। स्वामीजी प्रसिद्ध जर्मन विद्वान बैचलर एवं फ्रांसीसी विद्वान मोनियर विलियम से मिले और उन्हें वेदों का वास्तविक ज्ञान समझाया। स्वामीजी द्वारा वेदों पर भाष्य देखकर प्रो. मैक्समूलर भी जो एक बार अपने मन में वेदों के प्रति कुछ हीन विचार बना चुका था, दुबारा वेदों का भक्त बन गया। योगीराज अरविंद घोष ने लिखा है कि वेद विद्या के जो द्वार समय के बीत जाने पर बंद हो गए थे, ऋषि दयानंद ने उन्हें खोलने की चाबी ढूंढ़ ली और इस तरह कैद हुए ज्ञान के झरनों के बंधन खोल दिये।

स्वामी दयानंद का जीवन तपस्या की भट्ठी में तप कर पवित्र हो गया था। केवल 21 वर्ष की आयु में वे घर से बाहर निकल आये और लगभग 20 वर्ष तक वे वेद ज्ञान की खोज में जगह-जगह विद्वानों के पास आते-जाते रहे। वे आदित्य ब्रह्मचारी थे, अतः ब्रह्मचर्य में ही उन्होंने संन्यास ले लिया। उन्होंने पथ भ्रष्ट एवं योग भ्रष्ट समाज को समझाया कि ब्रह्मचर्य से ही हमारा राष्ट्र बलवान बन सकता है। एक बार स्वामीजी जालंधर में थे तो एक सेठ, जो अपनी बग्घी में बैठ कर स्वामीजी से मिलने आया था, स्वामीजी से बोला कि आप तो ब्रह्मचर्य की बहुत महिमा गाते हो पर आपने कोई ब्रह्मचर्य का चमत्कार नहीं दिखाया। स्वामीजी मुस्कराते रहे, वापस जाते समय सेठजी ने घोड़ों को चाबुक मारी तो वे हिल भी नहीं पाए। उन्होंने मुड़कर देखा कि स्वामीजी एक हाथ से बग्घी को पकड़े हुए थे। वह सेठ बहुत लज्जित हो गए और स्वामीजी के चरणों में गिर पड़े। इसी प्रकार राजस्थान में अपने पर आक्रमण की नीयत वाले राजा की तलवार पकड़ कर दो टुकड़े कर दिए।

संन्यासी के रूप में स्वामीजी का उपदेश सारे विश्व के कल्याण के लिये था। परन्तु वे महान् देशभक्त भी थे। उन्होंने गांधी युग से बहुत पहले ही विदेशी वस्तुओं के विरोध का प्रचार किया था। स्वराज की मांग तो उन्होंने कांग्रेस के जन्म से पहले ही कर दी थी कि अच्छे से अच्छा विदेशीराज भी अपने देश के स्वराज्य की बराबरी नहीं कर सकता है। कुछ विद्वानों का मत है कि सन् 1857 की आजादी की महान् क्रान्ति में वे गुप्त रूप से क्रान्ति को सफल बनाने में सहायता कर रहे थे।

शिक्षा के क्षेत्र में उनकी देन महान् है। प्राचीन गुरुकुलों के ढंग पर निःशुल्क उच्च भारतीय शिक्षा के बारे में उन्होंने बहुत अच्छा कार्य किया। शिक्षा का प्रकाश उन्होंने सबके लिये खोल दिया, क्या स्त्री, क्या शूद्र। ज्ञान के अमृत से कोई वंचित नहीं रहना चाहिये। पंजाब में कन्या पाठशाला खोलने के विषय में सबसे पहला प्रयास स्वामीजी ने ही किया।

स्वामीजी महान् समाज सुधारक थे, उन्होंने कुरीतियों, रूढ़ियों और फिजूल रीतियों का विरोध किया। उन्होंने धर्म को बुद्धि का सहारा देकर खड़ा किया। विधवा पुनर्विवाह का उन्होंने समर्थन किया और बाल विवाह का घोर विरोध किया। जाति प्रथा के विषय में स्वामीजी का कथन है कि जाति जन्म से नहीं मिलती, बल्कि गुण, कर्म और स्वभाव से मानी जानी चाहिये। यदि ब्राह्मण होकर कोई शर्मा 'बूट फैक्टरी' खोलता है तो उसका कर्म तो शूद्र का ही है। इस प्रकार कोई शूद्र होकर भी विद्वान और धर्मात्मा हो तो वह महर्षि वाल्मीकि जैसा पूज्य है।

भाषा के विषय में स्वामीजी ने सबसे पहले रोशनी दिखाई। स्वयं गुजराती होते हुए भी उन्होंने हिन्दी को राष्ट्रभाषा स्वीकारा और सत्यार्थप्रकाश हिन्दी में लिखा। स्वामीजी हिन्दी गद्य लिखने वाले लेखकों में उच्च माने जाते हैं। वे संस्कृत के धुरंधर विद्वान थे और संस्कृत के प्रचार-प्रसार में बहुत योगदान दिया। इस प्रकार यह मृतप्राय भाषा फिर जीवित हो उठी। हिन्दी का पढ़ना-लिखना उन्होंने आर्य समाज के नियमों में ही मिला दिया। इस प्रकार हजारों-लाखों लोगों ने हिन्दी सीखी, पढ़ी। इस प्रकार स्वामी दयानंद भाषा की स्वतंत्रता, धर्म की स्वतंत्रता, सांस्कृतिक स्वतंत्रता, राजनीतिक और विचारधारा की स्वतंत्रता के महान् अग्रदूत थे। भारत के कृतज्ञ नर-नारी उनकी सेवा को सदैव याद रखेंगे।

30-10-1958
आकाशवाणी जालंधर से प्रसारित वार्त्ता

जब मनुष्यों के मन में अपने ही प्रति घृणा उत्पन्न हो गयी तब समझ लेना चाहिये कि वह विनाश की अन्तिम सीढ़ी पर आ गया है। मेरी ओर देखिये, मैं हिन्दू जाति का एक तुच्छ प्राणी हूँ, फिर भी मुझे अपनी जाति का अभिमान है अपने पूर्वजों पर गर्व है। अपने को हिन्दू कहने में मुझे गर्व का अनुभव होता है। मुझे अभिमान है कि आपके अयोग्य सेवकों में भी एक हूँ। मुझे इस बात पर घमंड है कि मैं आपका देशवासी हूँ जो ज्ञानियों के वंशज है तथा संसार में अद्वितीय महाप्रतापी ऋषियों के वंशज है। अतः अपने में विश्वास रखिये और अपने पूर्वजों पर लज्जित होने के बजाय उन पर अभिमान कीजिये।

—स्वामी विवेकानन्द

परमहंस देव का जीवन-दर्शन

पश्चिम की आवाज राजनीति की आवाज है और भारत की ध्वनि धर्म की ध्वनि है। पश्चिम अधिकारों के लिए क्रान्तियाँ और संग्राम करना जानता है पर भारत धर्म एवं कर्तव्य की रागिनी गाने वाले प्रशान्तात्मा, स्थितप्रज्ञ महात्माओं को उत्पन्न करने में सारे संसार से आगे रहा है। पश्चिम में जहाँ मनुष्य की क्षुधा और वासना को अधिक महत्त्व दिया है, वहाँ भारत ने मानवता के मान तथा चारित्रिक गौरव के स्वामी महापुरुषों को जन्म दिया है, जो मानव हृदय की क्षुद्र वासनाओं तथा कामनाओं से ऊपर उठकर अपनी चेतना को विश्व चेतना से तदाकार कर स्वयं सत्य स्वरूप बनने में समर्थ हो सके हैं। भगवान् रामकृष्ण परमहंस भगवान् बुद्ध के पश्चात् सब से बड़े लोकनायक हुए हैं। जिन का सन्देश सात समुद्र पार के विदेशों में भी पहुँचने में समर्थ हुआ है। केवल इतना ही नहीं, उनके पट्ट शिष्य स्वामी विवेकानंद के द्वारा समस्त संसार में जहाँ भारत एवं भारतीयता का शीश ऊँचा हुआ है, वहाँ आज तक भी उन्हीं परमहंस महात्मा के पवित्र नाम से संसार भर में चलने वाले रामकृष्ण मिशन की असंख्यात शाखाओं द्वारा कोटि-कोटि भारतीय एवं विदेशी आत्माओं की आध्यात्मिक पिपासा को अमर तृप्ति लाभ हो रहा है।

उन परमहंस देव की प्रशस्ति में फ्रांस के लब्धप्रतिष्ठ विद्वान श्री रोमां रोलां ने कहा है, 'भारत महादेश के कोटि-कोटि नर-नारियों की 2000 वर्ष की कठोर तपश्चर्या के फलस्वरूप भारत को एक ईश्वरीय वरदान मिला भगवान् रामकृष्ण परमहंस। उन पुण्यश्लोक महात्मा के चरणों में अपनी श्रद्धांजलि चढ़ाते हुए राष्ट्रपिता महात्मा गांधी ने गाया है—'यह परमहंस देव का जीवन धर्म को व्यवहार में साकार करने के प्रयास की एक अमर गाथा है।' स्वयं भारत-गौरव स्वामी विवेकानंद ने अपने महान् गुरु की यशोगाथा गाते हुए कहा—'धर्म पुस्तकें तो केवल सिद्धान्त मात्र हैं, वे मूर्तिमान सिद्ध थे। उन्होंने केवल 50 वर्ष के अपने लघु जीवनकाल में ही 5000 वर्ष के जीवन की आध्यात्मिक यात्रा तय कर ली थी। इस प्रकार वे आने वाली पीढ़ियों के लिए मार्गदर्शक दिव्यादर्श बन गये थे।'

सन् 1833 में बंग भूमि के हुगली जिला में कामारपूकर नामक गांव में एक धार्मिक ब्राह्मण खुदीराम चट्टोपाध्याय के गृह में उस महान् ईश्वरीय ज्योति का आविर्भाव हुआ, कालांतर में जिस के नाम स्मरण मात्र से कोटि मानव हृदयों का अज्ञानान्धकार दूर हुआ तथा जिस के आश्रमों की छाया में भौतिकता की मृगतृष्णा से विक्षुब्ध हुई मानवता को शीतल आश्रय प्राप्त होता था।

निरन्तर हृदय गुहा के भीतर के चेतन तत्त्व की खोज में लगे रहने वाले इस तेजस्वी बालक गदाधर ने भौतिकवादी लौकिक शिक्षा के प्रति अरुचि दिखाई। वह ईश्वरीय विभूति का अंश अपने अंशी की खोज में सर्वदा छटपटाता रहता। श्रुतिमधुर वाणी में वह अपने उस विराट् सत्य को पुकारा करता था, उसी प्राणेश्वर के विरह में सुस्वर गायन करता।

देश की पतनोन्मुखी कुरीतियों के कारण 'ब्रह्मवेत्ता' बालक का विवाह मात्र पाँच वर्ष की बालिका (पं. रामचन्द्र मुखोपाध्याय की सुपुत्री) शारदा देवी से हुआ। लौकिक शिक्षा के लिए परिवार के सदस्यों की ओर से फिर प्रयत्न किया गया। बालक गदाधर को विद्याध्ययन के लिए भाई के साथ कलकत्ता भेजा गया। किन्तु उनका मन न लगा और बालक गदाधर के भीतर के 'हंस' ने अपने परमहंस को पाने के लिए सब बाह्याडम्बर त्याग दिए।

सत्य एक है, उसके साधन अनेक हैं। उसी एक को पाने के लिये सारे ही संभव उपाय उन्होंने किये। वे शक्ति के उपासक बने। उन्होंने ईसाई बन कर ईसा की अर्चना की, बौद्ध बनकर भगवान् बुद्ध का चिन्तन किया, मुसलमान बनकर अल्ला की वन्दना गाई, कुरान की आयतें पढ़ीं, सिख बन कर गुरुग्रन्थ साहब का स्वाध्याय किया। हर सम्भव उपाय किया अपने प्रियतम को पाने का तथा अपने प्रत्यक्ष अनुभव से जाना कि साईं की नगरी की अनन्त डगरियाँ हैं। सभी मत एक विराट् की ही वन्दना गा रहे हैं। वेद की ऋचाओं में वे भी उच्चार उठे, **एकं सदविप्रा बहुधा वदन्ति**। इन्हीं विलक्षण साधनाओं ने आत्मसाक्षात्कार के लिये परम व्याकुल तेजस्वी तरुण गदाधर को अपने भीतर के कुरेल करने वाले 'हंस' का साक्षात् करा दिया और वे सकल सृष्टि के अणु-अणु में परिवेष्ठित माता जगदम्बा के दर्शन कर 'रामकृष्ण परमहंस' बन गये।

उनके विवाह को 16 वर्ष बीत चुके थे किन्तु वे अपनी पत्नी से एक बार भी नहीं मिले थे। उनके आध्यात्मिक नशे को पागलपन समझ कर उनके ससुराल वालों ने मन में विवाह संबंध को तोड़ने का निश्चय कर लिया था। अचानक ये पागल सन्त एक दिन ससुराल ही जा पहुँचे। सास-श्वसुर बहुत घबराए किन्तु परमहंस देव अपनी तथाकथित बाल पत्नी के सम्मुख जा बैठे तथा धूप, दीप, नैवेद्य, फल, फूल से उस की पोडषोपचार पूजा करके उस की वन्दना गाई—

देवी प्रपन्नार्तिहरे प्रसीद, प्रसीद मातर्जगतोऽखिलस्य।

'हे सकल विश्व की माता, हे जगदम्बे! मैं आपकी वन्दना करता हूँ। हे सकल दुःखों को हरने वाली माँ! तुम मुझ पर अपनी कृपा दृष्टि करो।'

इस प्रकार अपनी पत्नी को भी माता मान कर पूजन करने वाले उन परमहंस की दृष्टि में सकल विश्व माता का ही रूप था। एक बार एक सज्जन ने उन्हें अपने घर बुला कर वेश्याओं का नृत्य आरंभ करवा दिया। एक वेश्या उन के पास आ कर कई प्रकार से अश्लील हाव-भाव करने लगी। वे पावन आत्मा रो कर बोले—माँ, माँ, इस रूप में नहीं माँ, यह किस रूप में दर्शन दे रही हो!' फिर अचानक उन्होंने समाधि लगा ली। वे समस्त वेश्यायें उन ऋषिप्रवर के चरणों में गिर कर क्षमायाचना करने लगीं।

परमहंस कंचन और कामिनी के मोह से पूर्णतया मुक्त हो चुके थे। वे गंगा तट पर बैठ कर एक हाथ में मिट्टी और दूसरे में सोना लेकर, सोने को मिट्टी और मिट्टी को सोना कहते और फिर दोनों को गंगा में फेंक देते थे।

परमहंस देव का युग था महर्षि देवेन्द्रनाथ ठाकुर का युग, बालक रवीन्द्रनाथ ठाकुर का युग, केशवचन्द्र सेन तथा ईश्वरचन्द्र विद्यासागर का युग। उसी युग में उन्हीं के समकालीन थे महर्षि दयानन्द सरस्वती तथा प्रतापचन्द मौजूमदार, उस युग के अन्तिम प्रहर को महात्मा गांधी तथा लोकमान्य तिलक, मोतीलाल नेहरू तथा मदनमोहन मालवीयजी ने भी अपनी चढ़ती जवानी में देखा था। बिना किसी भेदभाव के इन सभी नररत्नों ने परमहंस देव के यश में अविनश्वर श्रद्धांजलियाँ गाई हैं। पर इन सबसे बढ़कर जो महापुरुष इनके दिव्य व्यक्तित्व से चमत्कृत हुआ, वह था भारत गौरव स्वामी विवेकानंद। इन ब्रह्मवेत्ता के आशीर्वाद मात्र से बंगाल के उस नास्तिक बाबू नरेन्द्र के ज्ञान कपाट ऐसे खुले कि वह विश्वविजेता स्वामी विवेकानंद बन कर इतिहास पटल पर अपना अमर वैभव बिखेर गया। ऐसे महान् देवदूत के पुण्यश्लोक गुरु परमहंस देव के पावन जन्म जयन्ती महोत्सव पर हमारी कोटि-कोटि श्रद्धांजलियाँ उन्हीं परमहंस परमेश्वर के चरणों में समर्पित हैं।

कोटिशः प्रणाम शुद्ध बुद्ध रे,
निजानंद रूप सुप्रबुद्ध हे।
राम, कृष्ण, मनु, बुद्ध, मूर्तिमन्त,
यशोगान निरत कंठ रुद्ध रे।
श्रद्धा के अश्रु सुमन चरणों में देव।
हे रामकृष्ण देव, हे परमहंस देव।।

2 मार्च 1958

दैनिक 'वीर अर्जुन' जालन्धर में प्रकाशित

जय परमहंस देव

जय राम कृष्ण देव, जय परमहंस देव।
जिस भू पै जन्म लिया राम ने, गीता सुनाई यहां श्याम ने,
प्रकटे वहीं थे आप देवता, 'तत्त्वमसि' मन्त्र लाए सामने,
जन गण का शीश झुका चरणों में देव।। जय राम कृष्ण देव....

कंचन और कामिनी का मोह त्याग, बन गए निर्लिप्त संत वीतराग,
मां, मां पुकारते थे शक्ति को, आत्म में ही पाया ब्रह्मानंद राग,
धन्य जन्म, दिव्य कर्म, परमहंस देव।। जय राम कृष्ण देव....

धन्य दक्षिणेश्वर के सन्त हे, देव तेरी महिमा अनन्त रे,
तेरे भक्ति-अमृत से तृप्त हो, धरती पै छाया बसन्त रे,
ज्ञान, भक्ति, कर्म के हे प्राण एकमेव।। जय राम कृष्ण देव....

फिरकों पै लड़ते इन्सान थे, अविद्या में जलते जवान थे,
फिर से बचाने मनु सन्तति, आप आए सर्वधर्म-प्राण थे,
सारे मतों का लक्ष्य एक ब्रह्म देव।। जय राम कृष्ण देव....

नर में नारायण के द्रष्टा हे, संस्कृति में नव्य प्राण स्रष्टा हे,
जय हो विवेकानंद के गुरो, स्वयं ब्रह्म रूप, ब्रह्म द्रष्टा हे,
सच्ची ब्रह्म पूजा है जन गण की सेव।। जय राम कृष्ण देव....

कोटिशः प्रणाम शुद्ध बुद्ध हे, निजानंद रूप सुप्रबुद्ध हे।
राम, कृष्ण, मनु, बुद्ध, मूर्तिमन्त, यशोगान निरत कंठ रुद्ध रे।
श्रद्धा के अश्रु सुमन, चरणों में देव।। जय रामकृष्ण देव, जय परमहंस देव।।

20 फरवरी 1958
हिन्दी 'मिलाप' में प्रकाशित

विवेकानन्द विरुदांजलि

विवेक विभाकरं वन्दे, विवेकानंदं स्वामिनं
विश्व जितं यति पुङ्गवं, धर्म-केतु उत्थापकम्।।1।।

विवेकं च आनंदं च, विवेकानन्दमीश्वरं,
नराणाम् हि नरेन्द्रं च, वन्दे नर नारायणम्।।2।।

विवेकाय आनन्दाय, विवेकानन्दाय स्वामिने,
ब्रह्मविद् ब्रह्मरूपाय, ब्रह्मानन्दाय हि नमः।।3।।

भारत गौरवं वन्दे, विवेकानन्दं यतिवरं,
विश्वमंचे हि हिन्दु धर्मे, विश्वधर्मों योऽघोषयत्।।4।।

कोटिशः वंदितं वन्दे, विश्ववन्द्यं महात्मनम्,
परमहंसस्य पट्ट शिष्यं, विवेकानन्दं ऋषिवरम्।।5।।

भारतात्मा स्वधर्मात्मा, विश्वात्मा विश्वेश्वरः
रामकृष्णात्मजः पूज्यः, स विवेको सदा जयेत्।।6।।

शक्ति वरदान प्राप्तं च, शक्ति रूपं महात्मनम्,
शक्ति-मंत्रं स्वतन्त्रं च, वन्दे विवेकं पूजितम्।।7।।

ब्रह्मतेज धृतं वीरं, गौरवोन्नत मस्तकम्,
धर्मनेतृषु नव-सूर्ये, ज्योतिर्मय वर्णाम्बरम्।
शिकागो धर्म संघे च, विश्व-धर्मोपदेशकम्।
विवेकानन्दमहम् वन्दे, आन्नदामृत विग्रहम्।।8।।

जयतु विवेकानन्द, जयतु जय भारत माता
रामकृष्ण गुरुवर, विवेक स्वामी निर्माता।
धन्य भूमि बंगाल, धन्य सुनगर कोलिकाता
शक्ति-भक्ति अवतार, जयतु श्री काली माता।।9।।

'वीर प्रताप' जालन्धर में प्रकाशित

विश्व गुरु स्वामी विवेकानन्द की भारतीय संस्कृति को देन

भारत गौरव स्वामी विवेकानन्द तो भारत के मूर्तिमान गौरवसर्वस्व थे। उन जैसे ही गौरवशाली पुत्रों की माता होने से भारतमाता का मुख उजागर हुआ है। जैसे उन्हीं को श्रद्धांजलि चढ़ाते हुए ही महर्षि वेदव्यास ने लिखा है—

कुलं पवित्रं जननी कृतार्था, वसुन्धरा पुण्यवती च तेन।
अपार संवित् सुख सागरेऽस्मिन, लीनं परे ब्रह्मणि यस्य चेतः।।

सारी वसुन्धरा को ही अपने चरणस्पर्श से पुण्यवती बनाने वाले उस महान् लोकनायक के विषय में प्रसिद्ध फ्रेंच साहित्यकार रोमां रोलां लिखते हैं—'उनका बचपन और युवावस्था के बीच का काल यूरोप के पुनर्जीवन युग के किसी कलाकार राजपुत्र के जीवन-प्रभात का स्मरण दिलाता है।' वे पुनः लिखते हैं कि 'चाहे मेरे तथा विवेकानन्द के देश में हजारों मील का अन्तर है, चाहे दोनों देशों की संस्कृतियों में आकाश-पाताल का भेद है, चाहे मेरे तथा विवेकानन्द के काल में 30 वर्ष की कालावधि का अन्तर है, फिर भी मैं विवेकानन्द की लिखित अथवा उक्त एक भी पंक्ति को अपने रक्त में विद्युत्धारा के प्रवाह का अनुभव किए बिना नहीं पढ़ सकता।'

रामकृष्ण आश्रम बम्बई के स्वामी सम्बुद्धानन्दजी लिखते हैं—'स्वामी विवेकानन्द के विराट व्यक्तित्व में हम भगवान् बुद्ध का अन्तःकरण, शंकराचार्य का मस्तिष्क, श्री चैतन्य महाप्रभु का प्रेम, गुरुनानक का उत्साह, हजरत ईसा की नम्रता और सेंट पाल की वाग्मिता का एकत्र समावेश पाते हैं।'

तेजस्वी तरुण

विश्व-विभूति स्वामी विवेकानन्द का प्रादुर्भाव 1863 में पौष कृष्णा सप्तमी के दिन कलकत्ता के प्रसिद्ध वकील श्री विश्वनाथ दत्त के शुभ घर में हुआ। इस तेजस्वी बालक का शैक्षणिक जीवन बड़ा उज्ज्वल रहा। किन्तु पाश्चात्य दर्शन के गम्भीर अध्ययन से इस तरुण के भीतर कई प्रकार की शंकाएं और नास्तिकता

के बीज अंकुरित होने लगे थे। वह प्रखर बुद्धि वाला नवयुवक नरेन्द्रनाथ सत्य की खोज में केशवचन्द्र सेन तथा महर्षि देवेन्द्रनाथ ठाकुर के पास पहुँचा तथा उनकी भुजा झंझोड़ कर पूछा था—'क्या आपने ईश्वर देखा है?' उनकी ओर से समाधान-कारक उत्तर प्राप्त न होने पर उस बुद्धिवादी युवक की मानसिक कटुता और भी बढ़ गई। श्री दिनकर के शब्दों में, नरेन्द्र बाबू की इस नास्तिकता के भीतर एक जिज्ञासा काम कर रही थी जो पैगम्बरों में उठा करती है, अवतारों और धर्म संस्थाओं में जगा करती है। वस्तुतः नरेन्द्रनाथ जब रामकृष्ण परमहंस की शरण में आए तब नवीन भारत ही प्राचीन की शरण में आया था। भगवान् राम कृष्ण परमहंस धर्म के जीते-जागते स्वरूप थे। रामकृष्ण और नरेन्द्र का मिलन श्रद्धा और बुद्धि का मिलन था, रहस्यवाद और बुद्धिवाद का मिलन था। कदाचित रामकृष्ण और विवेकानन्द के मिलन में पूर्वी और पश्चिमी जगतों का ही मिलन हुआ था।

हृदय परिवर्तन

जिस प्रकार जीवन की एक ही घटना ने रत्नाकर डाकू को महर्षि वाल्मीकि बना दिया, एक जड़-मूर्ख व्यक्ति को महाकवि कालिदास बना दिया, एक कामांध नवयुवक को गोस्वामी तुलसीदास बना दिया। एक पुच्छ के राजकुमार को बन्दा वैरागी बना दिया। बालक मूलशंकर को स्वामी दयानन्द बना दिया, एक पथभ्रष्ट बनिए के बच्चे को महात्मा गांधी बना दिया उसी प्रकार जीवन की एक ही घटना ने बंगाल के महानास्तिक नरेन्द्र बाबू को स्वामी विवेकानन्द बना दिया। नरेन्द्र ने पूछा—'श्रीमान! क्या आपने ईश्वर को देखा है?' रामकृष्ण देव की समाधानकारक हाँ में नरेन्द्र की सारी नास्तिकता गल कर बह गई तथा वही नास्तिक संसार के कोटि-कोटि जनों को अपने संदेश से आस्तिक बनाने वाला बन गया।

भौतिकता के चक्रव्यूह में घुस कर विजय

उपन्यास सम्राट मुन्शी प्रेमचन्दजी ने स्वामी विवेकानन्द के कार्य का मूल्यांकन करते हुए लिखा है—

'ईसा की पिछली शताब्दी के प्रारम्भ में जड़वाद ने फिर सिर उठाया और इस बार उसका आक्रमण ऐसा प्रबल था, अस्त्र ऐसे अमोघ और ऐसे सबल थे कि भारत के अध्यात्म को उसके सामने सिर झुका देना पड़ा। हमारी आंखें इस भौतिक प्रकाश के सामने चौंधिया गईं और हम ने अपने प्राचीन तत्त्व ज्ञान, प्राचीन परम्परा और आदर्शों को त्यागना आरम्भ कर दिया।

ऐसे समय पुनीत भारत भूमि में पुनः एक महापुरुष का आविर्भाव हुआ जिसके हृदय में अध्यात्म भाव का सागर लहरा रहा था, जिसके विचार ऊँचे तथा

दृष्टि दूरगामिनी थी, जिसका हृदय मानव प्रेम से ओत-प्रोत था, उसकी सचाई भरी ललकार ने क्षण भर में जड़वादी संसार में हलचल मचा दी।

उसने नास्तिकता के गढ़ में घुस कर साबित कर दिया कि तुम जिसे प्रकाश समझ रहे हो, वह वास्तव में अन्धकार है और यह सभ्यता जिस पर तुम्हें इतना गर्व है, सच्ची सभ्यता नहीं है।

उनकी घोषणा के पश्चात् जड़वाद के प्रखर प्रवाह ने अपने सामने ऐसी ऊँची दीवार खड़ी पाई, जिसकी जड़ को हिलाना या जिसके ऊपर से निकल जाना उसके लिए असाध्य कार्य था।

यह उसी पूतात्मा के उपदेशों का सुफल है कि हम आज अपने प्राचीन आदर्शों के प्रति पूजा भाव रखते हैं और यूरोप के बड़े-बड़े योद्धा और विद्वान हमारे मनीषियों के सामने निरे बच्चे मालूम होते हैं। यह सब उसी ब्रह्मलीन स्व. विवेकानन्द के आध्यात्मिक उपदेशों का चमत्कार है।

धर्मगंगा के भगीरथ

श्री रामधारीसिंह दिनकर ने रामकृष्ण परमहंस तथा स्वामी विवेकानन्द के कार्य का तुलनात्मक मूल्यांकन करते हुए लिखा है कि रामकृष्ण और विवेकानन्द, ये दोनों एक ही जीवन के दो अंश, एक ही सत्य के दो पक्ष हैं। रामकृष्ण अनुभूति थे और विवेकानन्द उनकी व्याख्या बनकर आए। रामकृष्ण दर्शन थे और विवेकानन्द की व्याख्या ने उनके क्रियापक्ष का व्याख्यान किया। अति अलंकारमयी भाषा में वे पुनः लिखते हैं—'रामकृष्ण हिन्दू धर्म की गंगा थे जो वैयक्तिक समाधि के कमण्डल में बन्द थी। विवेकानन्द इस गंगा के भगीरथ हुए और उन्होंने देव सरिता को रामकृष्ण के कमण्डल से निकालकर सारे विश्व में फैला दिया।'

जागृति के मन्त्र द्रष्टा

स्वामीजी ने भारत को सम्बोधित करते हुए कहा—'उठो भारत! अपनी आध्यात्मिकता से समस्त जगत पर विजय स्थापना करो। उस से कम और कोई आदर्श तुम्हारे योग्य नहीं। उठो, जागो, आदर्श सिद्धि होने तक अथक चलते रहो।'

विज्ञान तथा चरित्र का समन्वय

स्वामीजी ने पश्चिम के लोगों को चेतावनी दी—

'प्रकांड वैज्ञानिक उन्नति के पश्चात् भी समस्त संसार के सम्मुख समस्याएं मुंह बाए खड़ी हैं। उन का हल मनुष्य तभी कर पाएगा जब अपने चारित्रिक स्तर तथा आध्यात्मिक अंश को महत्त्व दे।'

धर्मप्राण भारत

'शताब्दियों से होने वाले आघातों को झेल कर भी हम टिके रहे, इस का एक मात्र कारण यह है कि हम सदैव स्वधर्म के प्रति सजग रहे और उस के लिए निरन्तर अपने सर्वस्व की बलि चढ़ाते रहे। हमारे पूर्वजों ने दृढ़ता से समस्त आपत्तियों को झेला, सहर्ष मृत्यु का भी वरण किया पर स्वधर्म की रक्षा की।'

भारतीय राजनीति का आधार-धर्म

राजनीति सदा संस्कृति की चेरी है। इस विषय पर स्वामीजी का सन्देश मननीय है—

यूरोप में राजनीतिक विचारों से राष्ट्रीय विचारों का गठन होता है। भारतवर्ष में राष्ट्र उन्हीं लोगों का संघ बन सकता है जिनकी हृतंत्री एक ही धर्म के झंकार पर बज उठती है। अतएव भावी भारत की उन्नति के लिये पहली शर्त होने के नाते धार्मिक एकता की नितान्त आवश्यकता है। हम देखते हैं कि भारत में धर्म की इस एकीकरण शक्ति के आगे किस प्रकार जाति-गत, भाषा-गत एवं समाजगत कठिनाइयाँ काफूर हो जाती हैं। हमारे जीवन का मूल स्रोत ही धर्म है। यदि इसका प्रवाह प्रखर, पवित्र और प्रबल बना रहा तो सबकुछ ठीक समझना चाहिए। यदि यह स्रोत निर्मल है तो राजनीतिक-सामाजिक तथा अन्य भौतिक दोष तथा देश की दरिद्रता भी दूर हो जाएगी।

हमारे पराक्रम, हमारी शक्ति, बल्कि हमारे राष्ट्रीय जीवन का आधार भी धर्म ही है। वही हमारी जाति का जीवन है और उसे शक्तिशाली बनाना चाहिए। शताब्दियों से असंख्य आघातों का सामना करने में आप इसीलिए सफल हुए थे कि आप धर्म नहीं भूले थे। आप इस के लिए सबकुछ बलिदान कर देते थे। वास्तविक राष्ट्रीय बुद्धि यही है। राष्ट्रीय जीवनधारा यही है। इसके सहारे चल कर आप यश और प्रताप को प्राप्त होंगे और इसे त्याग कर मृत्यु को। मरण के अतिरिक्त दूसरा परिणाम हो ही नहीं सकता। इस जीवन स्रोत से अलग होते ही आप अपनी जीवन सत्ता खो बैठेंगे। अतएव भावी भारत के निर्माण में हिन्दू धर्म की एकता ही पहली ईंट होगी। हम सब को यह सीख लेना चाहिए कि हम हिन्दू चाहे जिस नाम से भी पुकारे जाते हों, कुछ समान विचार सूत्रों से बन्धे हैं और अब समय आ गया है जबकि अपने तथा अपनी जाति के कल्याण के लिए अपने आपस के झगड़ों एवं मतभेदों को त्यागकर हम एक हो जायें।

पुनः धर्म की शरण में

मैं भी गम्भीरता से पूछता हूँ कि सहस्रों-शताब्दियों की विकसित हुई राष्ट्रीय संस्कृति को छोड़ देना सहज है या कि विदेशों से आई हुई विदेशी सभ्यता को?

बात यह है कि अपने पर्वतीय उद्गम से नदी अब हजारों मील तक नीचे चली आई है। अब क्या यह अपने उद्गम स्थान को वापस जाती है या ले जायी जा सकती है। यदि कभी पीछे बहने की चेष्टा करेगी तो चारों ओर अपना जल व्यर्थ डाल-डाल कर सूख जायेगी। यदि हजारों वर्षों का हमारा राष्ट्रीय जीवन ठीक नहीं रहा तो अब इसके लिए कोई उपाय नहीं है। और अब हम यदि एक नई संस्कृति में डुबकी लगाना चाहेंगे तो केवल एक ही परिणाम होगा और वह यह कि हम डूब मरेंगे।

बलमुपास्व

स्वामीजी शक्ति मंत्र के दाता थे। वे दुर्बलता को ही पाप मानते थे। वे कहते हैं—'पाप का अप्रतिकार एक बड़ी बात है। यह सचमुच बड़े ऊँचे सिद्धान्त हैं। पर हमारे शास्त्रों की आज्ञा है—तुम गृहस्थ हो, यदि कोई तुम्हारे गाल पर तमाचा जड़ता है और तुम उसको जैसे का तैसा बदला नहीं देते तो तुम पापी हो। महाराज मनु कहते हैं—जब कोई तुम्हें मारने आया हो तो उसको मारने में कोई पाप नहीं चाहे वह ब्राह्मण ही क्यों न हो। यह बिल्कुल ठीक है और ऐसी बात है जिसे कभी भूलना नहीं चाहिए, वीरभोग्या वसुन्धरा है। अपने वीरत्व को बाहर लाओ। अपने शत्रु को जीतने का प्रत्येक उपाय करो और संसार का भोग करो। तभी तुम धार्मिक हो अन्यथा यदि जिसके मन में आ गया वही तुम्हें लातों से ठोकर मार कर पद दलित कर देगा, तो यहाँ तुम्हारा जीवन नारकीय है ही, वहाँ भी ऐसा ही रहेगा। मेरे प्यारे सहधर्मियो! तुमको यही मेरी सीख है। निस्सन्देह किसी को हानि न पहुँचाओ और किसी पर अत्याचार न करो।'

स्वामीजी की प्रेरणा

स्वामीजी के सन्देशों ने आधुनिक भारत के प्रायः प्रत्येक महापुरुष को महान् प्रेरणा दी है। योगीराज अरविन्द घोष, नेताजी सुभाषचन्द्र बोस, गांधीजी, तिलक, लाला लाजपत राय, स्वामी शिवानन्द, भाई परमानंद, डाक्टर राधाकृष्णन् प्रभृति महापुरुष उसी ज्योति की रश्मियाँ हैं। आज उन विश्ववंद्य लोकनायक की पावन जयन्ती पर हम अपना तन-मन-प्राण ही उन ऋषिवर के चरणों पर चढ़ा कर अपनी मूक श्रद्धा समर्पित करते हैं।

3 फरवरी 1959
दैनिक 'वीर प्रताप'

स्वामी विवेकानन्द का पश्चिम पर प्रभाव

अमरीका की एक महान् महिला मिस जोसेफान मेकलोड ने कहा, 'ईश्वर ने अपने दिव्य देवदूत संसार के प्रायः सभी देशों में भेजे थे। किन्तु एक देश जिसमें ईश्वर के किसी देवदूत ने कभी चरण नहीं रखा था, वह अमरीका ही था। यदि अमरीका की धरती पर ईश्वर ने कभी चरण रखा तो वह स्वामी विवेकानन्द के रूप में तथा अमरीका की भावी सन्ततियाँ यह याद करके पुलकित हो जाया करेंगी कि उन ऋषितुल्य लोकनायक की चरण धूलि के स्पर्श से सारा अमरीका महादेश पुण्य-पावन हो उठा।'

'स्वामी विवेकानन्द इन अमरीका—न्यू डिस्कवरीज' की महान् लेखिका मेरी लौज़ बर्क का कथन है—'सचमुच स्वामी विवेकानन्द पूर्ण अर्थ में ईश्वर द्वारा अमरीका में भेजे गये अवतार ही थे।'

स्वामी विवेकानन्द स्वयं कहते—'Buddha had a mission in the East, I have a mission in the West.'

'भगवान् बुद्ध का जीवन कार्य पूर्वी जगत में संस्कृति प्रसार का था, मेरा जीवन कार्य पश्चिम में संस्कृति प्रसार का है।' सन् 1893 में शिकागो के विश्व धर्म सम्मेलन के बाद ही वे विश्व विख्यात हुए थे। वे कहते—'भारत का परमेश्वर जो उसके भाग्य का नियन्ता एवं मार्गदर्शक है, उसी ने मुझे सर्वधर्म सम्मेलन में भेजा।' जब विवेकानंद किशोरावस्था में एक कालेज विद्यार्थी के रूप में प्रेजिडेंसी कालेज, कलकत्ता में पढ़ते थे तभी कालेज के जर्मन प्राचार्य प्रिंसिपल हेस्टी ने इस होनहार नवयुवक के विषय में कह दिया था—'मैंने बहुत दूर-दूर के देशों की यात्राएं की हैं किन्तु मैंने नरेन्द्र जैसी संभावनाओं वाला छात्र आज तक नहीं देखा। यह जीवन में अपना नाम अमर करेगा।' इसी प्रकार श्री रामकृष्ण परमहंसदेव ने भी नरेन्द्र द्वारा विश्व की आध्यात्मिक विजय की भविष्यवाणी की थी।

सिस्टर क्रिस्ताइन नामक अमरीकन महिला ने कहा—'धन्य वह देश है, जहाँ विवेकानन्द ने जन्म लिया, धन्य हैं वे लोग जो उसी काल में धरती पर जीते थे तथा त्रिविध धन्य हैं वे लोग जो उनके चरणों में बैठ सके।' आधुनिक अमरीका के प्रख्यात

दार्शनिक, स्टोरी ऑफ फिलासफि एवं स्टोरी ऑव सिविलाइजेशन के विश्वविश्रुत लेखक श्री विलडूरेंट ने अपने ग्रन्थ 'हमारी प्राच्य परम्परा' के पृष्ठ 618 पर लिखा है—'स्वामी विवेकानंद शिकागो के विश्व मेले में सर्वधर्म सम्मेलन में प्रकट हुए, उन्होंने हिन्दुत्व के प्रतिनिधि के रूप में सभा को संबोधित किया और अपने तेजस्वी व्यक्तित्व से, अपने सर्वधर्म समभाव के संदेश तथा ईश्वर की सर्वोत्तम पूजा के रूप में मानव सेवा के सरल नीतिदर्शन से सभी को वशीभूत कर लिया। उनकी वक्तृत्व कला के चमत्कार से (ईसाई पादरियों की दृष्टि में नास्तिक माना जाने वाला) हिन्दू धर्म एक श्रेष्ठ सम्मानित धर्म बन गया तथा पुराणपंथी पादरी एक ऐसे गैर ईसाई का सम्मान करने के लिए विवश हो गये जो घोषणा करता था कि सभी जीवों की आत्मा से अलग कोई अन्य परमात्मा नहीं है।'

इंग्लैण्ड में जन्मी तथा भारत को अपनी आध्यात्मिक जन्मभूमि स्वीकार कर लेने वाली थियोसोफिकल सोसाइटी की एक महान् निर्माणकर्त्री, डॉ. एनी बीसेन्ट भी शिकागो के विश्व धर्म सम्मेलन में उपस्थित थी। उन्होंने स्वामी विवेकानन्द की जनमानस पर छाप का चित्र खींचा है—'उनमें जीवनमूल्य तथा शक्ति का गौरव एवं जन्मजात भाव अभी भी प्रकट था, किन्तु वह सब कुछ उनके द्वारा लाए गए आध्यात्मिक सन्देश के उत्कृष्ट सौन्दर्य में लीन हो गया था—प्राच्य के उस अतुलनीय सन्देश की पवित्रता में, जो भारत का हृदय, किंवा भारत का जीवन ही है—आत्मा का विस्मयकारी ज्ञान। आनन्द विमुग्ध होकर वह विराट जनसमूह उनके शब्दों में बंधा हुआ था, एक अक्षर भी खो न जाय, एक स्वर भी छूट न पाये।'

विश्व धर्म सम्मेलन के प्रतिनिधि चयन समिति के सभापति डॉ. बैरौज के शब्दों में, जब स्वामी विवेकानंद ने जनता को 'मेरे प्यारे अमरीकावासी बहिनो और भाइयो' कह कर सम्बोधन किया तो प्रशस्ति की हर्ष ध्वनि उठी जो कई मिनट तक चलती रही। इस तुमुल करतल ध्वनि का कारण यह था कि स्वामीजी ने विदेशी सभाओं की औपचारिकता को तज कर जनता से उनके हृदय की भाषा में बात की थी।

पोएट्री नामक अमरीका की एक साहित्यिक पत्रिका की संपादक मिस मनरो ने अपनी आत्मकथा, 'ए पोएट्स लाइफ' में शिकागो सर्वधर्म सम्मेलन का संस्मरण लिखते हुए कहा है, 'सब प्रतिनिधियों के अन्त में तेजोमूर्ति स्वामी विवेकानन्द की बारी आई जिन्होंने सारे आयोजन का सर्वोच्च यश लूट लिया तथा सारे नगर को वशीभूत कर लिया। दूसरे विदेशी दल भी अच्छा बोले किन्तु भगवे वेश में उस आकर्षक संन्यासी ने पूर्णतया शुद्ध अंग्रेजी भाषा में अपनी महानतम कृति प्रस्तुत कर दी। उनका प्रभावशाली और चुम्बकीय व्यक्तित्व, मंदिर के कांस्य घंटे के समान गूंजती हुई उनकी वाणी, उनकी भावना का संयमित उत्साह जीवन में प्रथम

बार पश्चिमी जगत को उनके दिये गये संदेश का सौन्दर्य—ये सब मिलकर हमें महानतम आनन्द का दुर्लभ एवं पूर्ण अवसर प्रदान करते थे। यहाँ मानव वक्तृता अपने सर्वोच्च शिखर पर थी।'

विश्व धर्म सम्मेलन के वैज्ञानिक विभाग के सभापति ऑनरेबल श्री मेरविन मेरी ने अभिमत दिया, 'किसी धार्मिक संस्था ने धर्मसंसद, व्यापक रूप से अमरीकी जनता पर ऐसा गंभीर प्रभाव नहीं डाला जैसा हिन्दुत्व ने डाला...तथा सर्व प्रकार से हिन्दुत्व के सबसे महत्त्वपूर्ण एवं विशिष्ट शैली के प्रतिनिधि स्वामी विवेकानन्द ही थे, जो वास्तव में धर्मसंसद में निस्सन्देह सर्वाधिक लोकप्रिय एवं प्रभावशाली व्यक्ति थे....सर्वाधिक पुराणपंथी ईसाई भी उनके विषय में कहते हैं—वे निश्चय ही मानवों में राजा जैसे हैं।

शिकागो में प्रथम बार सर्वधर्म सम्मेलन में विवेकानन्द के पास भारत की सभा-संस्था का कोई प्रमाणपत्र या अधिकारपत्र न रहने के कारण उनको उस संसद में प्रवेश नहीं मिला था। वे अर्थाभाव के कारण शिकागो छोड़कर बोस्टन जैसे एक अपेक्षाकृत सस्ते नगर में चले गये। वहाँ के प्रो. राइट इनके व्यक्तित्व से प्रभावित हुए तथा कहा—'स्वामीजी! आप तो ज्ञान के सूर्य हैं, आप से अधिकार पत्र पूछना तो वैसे ही है जैसे सूर्य से उसके चमकने का अधिकारपत्र पूछा जावे।'

बोस्टन विश्वविद्यालय के विद्वान् प्रो. राइट ने विवेकानन्द को परिचय पत्र देकर पुनः शिकागो भेजा। किन्तु मार्ग में स्वामीजी का वह परिचय पत्र भी खो गया था। अतः शिकागो में उन्हें भूखे पेट भटकना पड़ा, रात्रि की भयंकर शीत में शिकागो रेलवे स्टेशन के बाहर पड़े हुए एक पार्सल के बक्से में एकाध भगवा वस्त्र लपेटे हुए ही बैठ कर, रात बितानी पड़ी। वहाँ की एक सज्जन महिला श्रीमती हेल ने उन्हें सड़क के किनारे बैठे देखा तो उन्हें अपने घर लिवा ले गई तथा फिर शिकागो धर्म सम्मेलन में भी ले गई। वहाँ संयोगवशात बोस्टन के प्रो. राइट भी पहुँचे हुए थे। प्रो. राइट की धर्मपत्नी श्रीमती राइट ने लिखा—'वह (विवेकानंद) वहाँ सर्वाधिक भव्य दृश्य थे। उनके शीश की चेष्टा सुन्दरतम थी। उनकी ग्रीवा की भंगिमा तथा नंगे सिर में भी एक शासक की गरिमा तथा प्रभावोत्पादकता थी जो निकट वाले प्रत्येक व्यक्ति को खड़ा होकर उनकी ओर निहारने को विवश कर देती थी। वे धीरे-धीरे ताल-छंद बद्ध गति से ऐसे चलते थे जैसे, उन्हें कोई जल्दी न हो।'

फ्रांस के नोबेल पुरस्कार विजेता साहित्य-मनीषी रोमां रोलां ने लिखा, 'स्वामी विवेकानन्द के शब्द एक महान् संगीत है, बीथोवन की शैली के पद्यांश, हेण्डल के समूह गान जैसे आन्दोलित करने वाले लय-गीत। चाहे उनके वचन आज पुस्तकों के पृष्ठों के माध्यम से मुझ से 30 वर्ष पूर्व कहे हुए, 30 वर्ष के

अन्तर पर, बिखरे हुए हैं, किन्तु मैं आज तक उनके वचनों को बिना अपने शरीर में एक विद्युत्धारा का रोमांच अनुभव किए स्पर्श तक नहीं कर सकता हूँ। तब कैसे हृदयान्दोलन, कैसा आनन्द ज्वार पैदा हुआ होगा जब वे ज्वलन्त शब्दों में उस महान् वीर के मुख से निःसृत हुए होंगे।' रोमां रोलां कहता है कि किसी ईश्वरीय प्रेरणा से ही उसने फ्रेंच भाषा में विवेकानन्द एवं श्रीरामकृष्ण की महान् प्रेरणादायी जीवनियाँ लिखी, जिनका यूरोप, एशिया एवं मध्य-पूर्व की प्रायः सभी भाषाओं में अनुवाद, स्वागत किया गया।

इंग्लैण्ड में स्वामीजी विश्व विख्यात भाषा वैज्ञानिक डॉ. मैक्समूलर से मिले। उसने पहले ही वेदान्त पर पुस्तकें तथा श्री रामकृष्ण परमहंस पर निबन्ध प्रकाशित किए थे। स्वामीजी की प्रेरणा से उसने परमहंस पर पूरा ग्रन्थ भी लिखा।

आयरलैण्ड के प्रसिद्ध पादरी जॉन नोबेल की सुपुत्री मार्ग्रेट एलिजाबेथ नोबेल इंग्लैण्ड में स्वामी विवेकानन्द के ओजस्वी व्याख्यान को सुनकर उनकी धर्मशिष्या, भगिनी निवेदिता बन गई तथा उसने अपना शेष सारा जीवन भारत एवं भारतीय संस्कृति की सेवा में समर्पित कर दिया।

वे कहती हैं—ऐसे चिन्तनशील व्यक्ति का दर्शन मुझे आज तक कभी नहीं हुआ था....कल्पना करो यदि स्वामीजी उन दिनों लंदन में न पधारे होते तो? यह जीवन निरर्थक बन जाता। अनन्तकाल के लिये उसने दुःखद स्वप्न का रूप धारण कर लिया होता।....हममें से अनेकों के लिये स्वामीजी के शब्द-प्यासे मर रहे व्यक्ति के लिये जीवन प्रदाता जल के समान थे....अन्धकार में भटक रहे लोगों ने प्रकाश की रश्मि के दर्शन कर लिये थे।

जर्मनी के विद्वान् प्रो. पाल डूयसन जो पहले से ही भारतीय विद्या के शोधकर्ता थे स्वामी विवेकानन्द से मिलने के पश्चात् वेदान्त एवं विवेकानन्द के भक्त बन गये। वे कहते हैं—'ज्ञात होता है कि आध्यात्मिकता के मूल स्रोत की ओर एक विचारयात्रा प्रारंभ हो रही है, यह विचारप्रवाह भारत को संसार की जातियों का आध्यात्मिक गुरु बना देगा तथा धरती पर महानतम एवं सर्वोच्च आध्यात्मिक प्रभाव स्थापित करेगा।'

जर्मनी के प्रसिद्ध नोबेल पुरस्कार विजेता मनीषी डॉ. अल्बर्ट स्वित्जर ने लिखा है, 'सितम्बर 1893 के विश्व धर्म सम्मेलन में विवेकानन्द ने एक ओजस्वी व्याख्यान में श्री रामकृष्ण के विचार की व्याख्या की कि सच्ची पावनता सभी धर्मों में निहित है और वही उन सबसे ऊपर भी है। गुरु की भावना के अनुरूप विवेकानन्द ने यह सिद्धान्त प्रतिपादित किया कि धर्म को क्रियात्मक-धर्म होना चाहिए। उन्होंने ऐसे स्वतःसिद्ध वचन कहने का साहस किया कि सर्वोत्तम धर्म,

सभी मानवों में, विशेष रूप से निर्धनों में शिव का दर्शन करने में ही है और वही व्यक्ति ईश्वर की पूजा करता है जो सभी जीवों की सहायता एवं सेवा करता हो। यह उनके लिए सुनिश्चित तथ्य था कि वेद का मौलिक शुद्ध धर्म—प्रेम का धर्म था। उनके द्वारा संस्थापित कार्य रामकृष्ण मिशन अभी तक वर्तमान है और विश्व कल्याण के लिए बड़ा प्रभावकारी है।'

'हम स्वामी विवेकानन्द की स्मृति को अपने हृदयों में संजोये हुए हैं। वे भारत के उन प्रथम दार्शनिकों में से थे जिन्होंने साधारण जन के दुःख-कष्टों की ओर दृष्टिपात किया।' ये विचार लेनिनग्राद की प्रमुख प्राच्य विद्या विदुषी इवालस्तेनिक ने लेनिनग्राद में व्यक्त किये।

स्वामी विवेकानन्द की जन्म शताब्दी के उपलक्ष्य में लेनिनग्राद विश्व-विद्यालय में आयोजित सभा में उन्होंने इस बात पर बल दिया कि इन दिव्य पुरुष, अपने देश की स्वाधीनता के योद्धा की प्रजातंत्रीय भावनाओं के सम्मान में तथा मित्र भारत की संस्कृति के प्रति आदर भाव दिखाते हुए सोवियत जनता ने 'विवेकानन्द वर्ष' मनाया।

सभा में भाग लेने वालों ने भारत के अध्यापक श्री अरुण हालदार का हार्दिक स्वागत किया। श्री हालदार लेनिनग्राद के विद्यार्थियों को दर्शन और बांग्ला भाषा पढ़ाते हैं।

सभा का आयोजन सोवियत-भारत सांस्कृतिक सम्बन्ध सोसाइटी की स्थानीय शाखा और भारत विद्या संबंधी लेनिनग्राद नगर गोष्ठी ने किया तथा इसमें भारतीय विशेषज्ञ और स्नातकोत्तर छात्र शामिल हुए।

भारतीय निरुक्त विभाग के विद्यार्थियों और अध्यापकों ने स्वामी विवेकानन्द के सम्मान में संस्कृत में रचना-पाठ किया।

सन् 1967 में वी.बी. बोद्रोव ने रूसी भाषा में समकालीन भारतीय दर्शन पर एक ग्रन्थ प्रकाशित किया, 'इंदियस्काय फिलोसोफिया नोवोगा व्रेमेनी' जिसमें राममोहन राय, श्री रामकृष्ण, विवेकानन्द, तिलक एवं श्री अरविन्द के दर्शन का भारत के ऐतिहासिक भाग्य निर्माण में योगदान दर्शाया गया। एक अन्य ग्रन्थ में भी स्वामी विवेकानन्द के दार्शनिक विचारों का विश्लेषण प्रस्तुत किया गया। प्रो. ए.डी. लिटमेन का मत है, 'भारत की आध्यात्मिक परम्परा एक ऐसी प्रबल शक्तिधारा बन गई है जो देश के जीवन की सभी विधाओं को प्रभावित करती है तथा भारत के पुनरोदय की प्रक्रिया को एक विशेष राष्ट्रीय रंगत प्रदान करती है।'

स्वामी विवेकानन्द तथा उनका राष्ट्रीय स्वाभिमान

विश्ववंद्य स्वामी विवेकानन्द हमारे स्फूर्तिदाता, प्राणदाता, हमारे मान रक्षक, मार्गदर्शक एवं आने वाले सभी युगों के लिए हमारे गौरव एवं गरिमा के अमर देवता बन गए हैं।

इन महानतम युगपुरुष ने जहां संसारभर में भारतमाता के मुख को उजागर किया वहीं अपने सत्य के महान् संदेश से समस्त भूमण्डल को हिला कर दिखा दिया।

भारत की राष्ट्रीय एकता के तो वे मूर्तिमान अवतार ही थे। श्री रामधारी सिंह दिनकर के शब्दों में **'अभिनव भारत को जो कुछ कहना था, वह विवेकानन्द के मुख से उद्‌गीर्ण हुआ। अभिनव भारत को जिस दिशा की ओर जाना था, उसका स्पष्ट संकेत विवेकानन्द ने दिया।....विवेकानन्द वह समुद्र है जिसमें धर्म और राजनीति, राष्ट्रीयता और अन्तरराष्ट्रीयता तथा उपनिषद् और विज्ञान सबके सब समाहित होते हैं।'** श्री दिनकर पुनः कहते हैं, 'जिस स्वप्न के कवि विवेकानन्द थे, गांधी और जवाहरलाल उसके इंजीनियर हुए।'

स्वयं जवाहरलाल जी की साक्षी है, 'विवेकानन्द आधुनिक भारत के राष्ट्रीय आन्दोलन के महान् संस्थापकों में से एक थे। तथा बाद में इस आन्दोलन में जिन भी लोगों ने भाग लिया उनमें से अधिकांश ने अपनी स्फूर्ति विवेकानन्द से ही प्राप्त की।'

नेताजी सुभाष—बलिदानी वीरों के मणिमुकुट नेताजी सुभाषचन्द्र बोस के शब्दों में, **'स्वामी विवेकानन्द का धर्म राष्ट्रीयता को उत्तेजना देने वाला धर्म था। नयी पीढ़ी के लोगों में उन्होंने भारत के प्रति भक्ति जगाई। उनमें अतीत के प्रति गौरव और भविष्य् के प्रति आस्था उत्पन्न की। उनके उद्‌गारों से लोगों में आत्मनिर्भरता एवं स्वाभिमान के भाव जगे हैं।'**

विश्व विजेता विवेकानन्द—लगभग 1000 वर्षों तक भारत के शीश पर इस्लाम की तलवार तनी रही। किन्तु, वह भारत की आत्मा को पराभूत न कर सकी। शताब्दियों तक भारत में शासन करने के पश्चात् भी इस्लाम भारत की

आत्मा पर शासन न कर सका। अंग्रेजों ने कूटनीति से भारत के मन एवं मस्तिष्क को बंदी बनाने का प्रयत्न किया। ऐसे समय में जब भारत अंग्रेजों की मानसिक गुलामी का शिकार हो रहा था उस समय जगत् विजेता स्वामी विवेकानन्द भारत के ज्ञानदाता एवं मुक्तिदाता बन कर आए। उन्होंने पाश्चात्य सभ्यता के गढ़ के भीतर घुसकर अकेले ही समस्त पश्चिमी जगत् को पराभूत कर पश्चिम के वक्षस्थल पर भारत की श्रेष्ठता की छाप लगा दी।

मानसिक गुलामी की निंदा—पाश्चात्य सभ्यता के अन्धानुकरण की भर्त्सना करते हुए वे कहते हैं—'क्या दूसरों की हां में हां मिलाकर, दूसरों की ही नकल कर, दूसरों का ही मुंह ताक कर, इस दासों की-सी दुर्बलता, इस घृणित निष्ठुरता से ही तुम बड़े-बड़े अधिकार प्राप्त करोगे? क्या इसी लज्जास्पद कापुरुषता से तुम वीरभोग्या स्वाधीनता प्राप्त करोगे? ऐ भारत! तुम मत भूलना कि तुम्हारी स्त्रियों का आदर्श सीता, सावित्री, दमयन्ती है। भूलना नहीं कि तुम्हारे उपास्य सर्वत्यागी उमानाथ हैं शंकर हैं। मत भूलना कि तुम्हारे विवाह, धन और जीवन, व्यक्तिगत सुख के लिए नहीं है। अपितु माता के लिए बलि स्वरूप रखे गए हैं।'

स्वामीजी का भारत-भक्ति से आप्लावित हृदय पुकार उठा—'प्रत्येक भारतवासी मेरा भाई है। भारत की मिट्टी ही मेरा स्वर्ग है। भारत के कल्याण में ही मेरा कल्याण है।'

राष्ट्रीय एकता का आधार—स्वामी विवेकानन्द के मत में राष्ट्रीय एकता के लिए धर्म एवं आध्यात्मिकता का आधार आवश्यक है। वे कहते हैं—'शताब्दियों से होते आने वाले आघातों को झेलकर भी हम टिके रह सके, इसका एकमेव कारण यह है कि हम सदैव स्वधर्म के प्रति सजग रहे और उसके लिए निरन्तर अपने सर्वस्व की बलि चढ़ाते रहे। हमारे पूर्वजों ने दृढ़ता से समस्त आपत्तियों को झेला। सहर्ष मृत्यु का भी वरण किया। पर अपने स्वधर्म की रक्षा की। विदेशी विजेताओं ने एक-एक करके हमारे मंदिरों को भूलुण्ठित किया। किन्तु, जैसे ही वह झंझा का झोंका गया, उन मंदिरों के शिखर पुनः आकाश को छूने लगे। आज भी गुजरात के सोमनाथ सरीखे और दक्षिण भारत के प्राचीन मंदिर हमें अपने जातीय इतिहास के आन्तरिक स्वरूप का वह भव्य दर्शन कराते हैं, जो हमें लाख ज्ञान की पुस्तकों में भी न मिल सकेगा। हम देखें उन मंदिरों की ओर। उन पर परकीयों के सहस्रों आक्रमणों और हमारे सहस्रों पुनरुत्थानों की कहानियां अंकित हैं। आक्रमण पर आक्रमण होने पर भी हर बार आक्रमणकारियों से ध्वस्त मंदिर अपनी पूर्व विभा और शक्ति के साथ खण्डहरों में से जाग उठे। यही है हमारा राष्ट्रीय दृष्टिकोण। यही है हमारी राष्ट्रीय जीवनधारा। हम इसका अनुसरण करेंगे तो इसी से हमारे वैभव का पथ प्रशस्त होगा। भावी भारत के निर्माण के लिए

समय की चट्टानों के बीच से हमें जो प्रथम पग चलना होगा, वह है एकीकरण का। हममें से प्रत्येक को यह संदेश सुनाया जाए कि हम हिन्दू हैं। अब समय आ गया है कि हम अपने अस्तित्व की रक्षणार्थ क्षुद्र-भेदों और आपसी कलह को भूल जाएं। बिखरी हुई आध्यात्मिक शक्तियों का संकलन ही भारत की सच्ची राष्ट्रीय एकता होगी। भारतीय राष्ट्र का अधिष्ठान आध्यात्मिक स्वरों से झंकृत होने वाले हृदयों की एकता पर ही होगा।'

स्वदेश-भक्ति की कसौटी—स्वामी विवेकानन्द की स्वदेश भक्ति की कसौटी भी बड़ी अनूठी रही है। भारत के गौरवसर्वस्व वे महापुरुष कहते हैं—'मैं स्वदेश भक्ति में विश्वास करता हूं। पर स्वदेश भक्ति के सम्बन्ध में मेरा एक आदर्श है। बड़ा काम करने के लिए तीन चीजों की आवश्यकता होती है। बुद्धि और विचार शक्ति हम लोगों की थोड़ी सहायता कर सकती है। वह हमको थोड़ी दूर अग्रसर कर देती है और फिर वहीं ठहर जाती है। किन्तु, हृदय के द्वारा ही महाशक्ति की प्रेरणा होती है। प्रेम असम्भव को सम्भव कर देता है। जगत् के सब रहस्यों का द्वार प्रेम ही है। अत: मेरे भावी संस्कारको! मेरे भावी देश-भक्तो! तुम हृदयवान बनो। क्या तुम समझते हो कि देव और ऋषियों की करोड़ों सन्तान पशु तुल्य हो गई हैं? क्या तुम हृदय में अनुभव करते हो कि करोड़ों आदमी आज भूखे मर रहे हैं और वे कई शताब्दियों से इस भांति भूखों मरते आ रहे हैं? क्या तुम समझते हो कि अज्ञान के काले बादल ने सारे भारत को आच्छन्न कर लिया है? क्या तुम यह सब समझ कर कभी अस्थिर हुए हो? क्या तुम इससे अनिद्रित हुए हो? क्या कभी यह भावना रक्त में मिलकर तुम्हारी धमनियों में बही है? क्या वह तुम्हारे हृदय के स्पन्दन से कभी मिलीं हैं? क्या उसने तुम्हें कभी पागल बनाया है? क्या कभी तुम्हें दरिद्रता और नाश का ध्यान आया है? क्या तुम अपने नाम-यश, सम्पत्ति, यहां तक कि अपने शरीर को भी भूल गये हो? क्या तुम ऐसे हो गए हो? तब जानो कि तुमने स्वदेश भक्ति की प्रथम सीढ़ी पर पैर रखा है।'

एक के पीछे जितना शून्य लगायेंगे उतनी ही उसकी शक्ति बढ़ेगी। एक को हटा लो तब शून्य की कोई शक्ति नहीं रहेगी। इसलिए मैं कहता हूं एक को पहले बैठा लो। एक है ईश्वर और शून्य है विज्ञान, समाजसेवा आदि। ईश्वर को छोड़कर ये सब करने से फलप्रद नहीं होगा। ईश्वर की प्रार्थना करके ही सबकुछ करना है।

—रामकृष्ण परमहंस

स्वामी विवेकानन्द का शिक्षा दर्शन : एक संगोष्ठी

विचारणीय बिन्दु

(1) भारतीय शिक्षा के दृष्टिकोण से स्वामी विवेकानन्द के जन्मपूर्व के संस्कार भी उनके निर्माण में सहायक थे।

(2) भारतीय दृष्टिकोण से जन्मोपरान्त प्रथम गुरु माता-पिता हैं। उनका नरेन्द्रनाथ के निर्माण में योग। माता की लोरियाँ, रामायण, महाभारत की कथाएं। 'माता का जो हाथ पलने को झुलाता है वह विश्व को हिला सकता है।'

(3) आदर्श विद्यार्थी नरेन्द्रनाथ की स्कूल शिक्षा। शरीर, मन, बुद्धि सभी का विकास।

(4) नरेन्द्रनाथ की कालेज शिक्षा, प्रिंसिपल हेस्टी की प्रशंसात्मक उक्ति— 'I have travelled far and wide but I have not seen a boy of his capability. He is sure to make his mark in life.'

(5) ज्ञानार्जन की पिपासा। पुस्तकालय के अधिकतम ग्रंथों का अध्ययन, प्रखर तार्किकता।

(6) तर्क एवं तत्त्व का मानसिक संघर्ष।

(7) अब तक की विद्या अपरा विद्या। बाहर विश्व का ज्ञान, किन्तु समस्त ज्ञान के ज्ञाता का ज्ञान नहीं।

(8) परा विद्या की प्राप्ति परमहंस गुरु की कृपा से।

(9) आदर्श लोक शिक्षक विवेकानन्द। देश तथा विदेश में भारतीय संस्कृति का प्रसार।

(10) शिक्षा के विषय में विचार।

जानकारी ही शिक्षा नहीं है

शिक्षा विविध जानकारियों का ढेर नहीं है, जो तुम्हारे मस्तिष्क में ठूंस दिया गया है और जो आत्मसात् हुए बिना वहाँ आजन्म पड़ा रहकर गड़बड़ मचाया

करता है। हमें उन विचारों की अनुभूति कर लेने की आवश्यकता है, जो जीवन-निर्माण, 'मनुष्य' निर्माण तथा चरित्र-निर्माण में सहायक हों। यदि तुम केवल पाँच ही परखे हुए विचार आत्मसात् कर उनके अनुसार अपने जीवन और चरित्र का निर्माण कर लेते हो, तो तुम एक पूरे ग्रन्थालय को कण्ठस्थ करने वाले की अपेक्षा अधिक शिक्षित हो। यदि शिक्षा का अर्थ जानकारी ही होता, तब तो पुस्तकालय संसार में सबसे बड़े सन्त हो जाते और विश्वकोश महान् ऋषि बन जाते।

हमें क्या चाहिए

हमें तो ऐसी शिक्षा चाहिए जिससे चरित्र बने, मानसिक वीर्य बढ़े, बुद्धि का विकास हो और जिससे मनुष्य अपने पैरों पर खड़ा हो सके। हमें आवश्यकता इस बात की है कि हम विदेशी अधिकार से स्वतंत्र रहकर अपने निजी ज्ञान भण्डार की विभिन्न शाखाओं का और उसके साथ ही अंग्रेजी भाषा और पाश्चात्य विज्ञान का अध्ययन करें। हमें यान्त्रिक और ऐसी सभी शिक्षाओं की आवश्यकता है जिनसे उद्योग-धन्धों की वृद्धि और विकास हो, जिससे मनुष्य नौकरी के लिए मारा-मारा फिरने के बदले अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए पर्याप्त कमाई कर सके और आपत्काल के लिए संचय भी कर सके।

'मनुष्य' निर्माणकारी शिक्षा

सभी प्रकार की शिक्षा और अभ्यास का उद्देश्य 'मनुष्य' निर्माण ही हो। सारे प्रशिक्षणों का अन्तिम ध्येय मनुष्य का विकास करना ही है। जिस अभ्यास से मनुष्य की इच्छाशक्ति का प्रवाह और प्रकाश संयमित होकर फलदायी बन सके, उसी का नाम है शिक्षा। आज हमारे देश को जिस चीज की आवश्यकता है, वह है लोहे की मांस-पेशियाँ और फौलाद के स्नायु—दुर्दमनीय प्रचण्ड इच्छाशक्ति, जो सृष्टि के गुप्त तथ्यों तथा रहस्यों को भेद सके और जिस उपाय से भी हो अपने उद्देश्य की पूर्ति करने में समर्थ हो, फिर चाहे उसके लिए समुद्र तल में ही क्यों न जाना पड़े—साक्षात् मृत्यु का ही सामना क्यों न करना पड़े। हम 'मनुष्य' बनाने वाला धर्म ही चाहते हैं। हम 'मनुष्य' बनाने वाले सिद्धांत ही चाहते हैं। हम सर्वत्र, सभी क्षेत्रों में, 'मनुष्य' बनाने वाली शिक्षा ही चाहते हैं।

स्वामी विवेकानन्द के भारत भ्रमण का निष्कर्ष यह है कि हिन्दू अहिंसा के नाम पर कायर और त्याग के नाम पर आलसी हो गया है। अतः अहिंसा के नाम पर कायर, त्याग के नाम पर आलसी न बनें।

—स्वामी विवेकानन्द

महामानव : स्वामी रामतीर्थ

''हे वाणी! तुझमें उस अलौकिक आनन्द को वर्णन करने की शक्ति ही कहां है? धन्य हूं मैं! कृतकृत्य हूं मैं!!... मैंने दिल खोल कर उस अपने दुलारे का आलिंगन प्राप्त किया है। अहो! यह आँसुओं की झड़ी है कि अभेदता का आनन्द दिलाने वाली वर्षा ऋतु? ऐ शीश! तेरा होना भी आज सफल हुआ। आँखो! तुम भी धन्य हो गईं! कानो! तुम्हारा पुरुषार्थ भी पूरा हुआ! यह आनन्दमय मिलन, मुबारक हो! मुबारक हो!! मुबारक हो!!! ''मुबारक'' शब्द भी आज कृतार्थ हो गया!!... अरे नेत्रो! तुम्हारा यह झर-झर बरसना धन्य हो!! यह मस्ती भरे मेरे नयनों का सावन धन्य हो।...आज मैं स्वयं प्रेमी, स्वयं प्रेमिका, और स्वयं प्रेम ही बन गया हूं। जिधर ही दृष्टि उठाता हूं, पत्ता-पत्ता मेरा स्वागत करता है, प्रत्येक फूल मेरे अभिनन्दन में झूम-झूम कर गाता है—'तत्त्वमसि! तत्त्वमसि! वह तू ही है, वह तू ही है।'

क्या ये उद्गार किसी वैदिक ऋषि के हैं अथवा उपनिषदों के किसी ब्रह्मवेत्ता मुनीश्वर के? नहीं, यह उस महान् आत्मा की वाणी है, जो ऋषि-मुनियों के इस पवित्र देश में, ब्रह्म तेज के जाज्वल्यमान सूर्य के रूप में, आज से 83 संवत्सर पूर्व अवतरित हुई। हमारे दुःख, दैन्य, दास्य और दौर्बल्य को समूल भस्म कर हमें मुक्ति का आलोक-पथ दिखाने के लिए धरा पर प्रकटी!

सत्य के आमने-सामने खड़े होकर उसने सत्य का साक्षात्कार किया था। वह स्वयं ही शाश्वत सत्य बन गया। उसकी सर्वत्र जय-जयकार हुई। उसने प्रेम की मदिरा को जी भर कर पीया। वह स्वयं मूर्तिमान प्रेम ही बन गया। उसकी अलौकिक मस्ती के फव्वारे सारे विश्व को पावन करने वाले थे। संसार के कोटि-कोटि जनों को आत्मानन्द का अमृत बांटने वाले उस सुशील संत का नाम था—स्वामी रामतीर्थ। जिनके महानिर्वाण की पावन अर्द्ध-शताब्दी के उपलक्ष्य में हमारा देश दीपमालिका के पुनीत पर्व पर, परम श्रद्धा के साथ उनकी सुभग अर्चना कर रहा है।

कोटिशःवन्दित, ब्रह्मलीन स्वामी रामतीर्थ परमहंस वर्तमान युग में भारत की प्राचीन गौरव-गरिमा के जीते-जागते प्रतीक थे। यह वर्तमान युग स्वयं उस

ऋषि-तुल्य लोकनायक के पावन पदचिह्नों से आलोकित हो उठा है। वह विलक्षण महापुरुष जगद्गुरु भगवान् शंकराचार्य की भांति ही आया था, केवल 33 वर्ष की ही अल्पायु लेकर। किन्तु, इतने थोड़े समय में ही वह हमारे अन्तस्तल पर अपने स्वर्गीय व्यक्तित्व की ऐसी अमिट छाप छोड़ गया कि आधुनिक भारत की कोई भी कहानी उसकी अर्चना के बिना अधूरी रहेगी।

जीवन-वृत्त

प्रथम रश्मि

हमारे धर्म-प्राण देश भारतवर्ष के शीर्षभाग में स्थित पंजाब प्रदेश को अनादि-काल में वैदिक ऋचाओं का मंगल-गान कर सर्वप्रथम मानव सभ्यता की मशाल जलाने का श्रेय प्राप्त है। अनेकानेक ऋषि-मुनियों की चरण-रज से पवित्र हुई उस पुण्यस्थली में, लाहौर के निकट जिला गुजरांवाला में स्थित मुरारीवाला नामक छोटे-से गांव में, सन् 1872 में इस महान् विभूति का जन्म हुआ। जिनके यश में सहसा मुख से निकल पड़ता है—

कुलं पवित्रं जननी कृतार्था, वसुन्धरा पुण्यवती च तेन,
अपार संवित्सुखसागरेऽस्मिंल्लीनं परे ब्रह्मणि यस्य चेतः।

अर्थात् जिसका चित्त ब्रह्मानन्द के अपार सुख-सागर में लीन रहता है, उसके जन्म से तो उसका कुल पवित्र हो गया, उसकी जन्मदात्री माता धन्य-धन्य हो गई, तथा सारी धरती ही पुण्य-पावन हो उठी।

'श्री रामचरितमानस' के अमर गायक जनगण-पूजित श्रीमद्गोस्वामी तुलसीदास के पावन-कुल में गोसाईं हीरानन्दजी के गृह में दीपमालिका के कोटि-कोटि दीपों के प्रकाश में यह कुल-दीपक अवतरित हुआ—केवल अपने वंश, जाति और देश का ही नहीं वरन् समूची मानवता का मुख उज्ज्वल करने के लिए।

शैशव की झांकी

इस विलक्षण बालक 'तीर्थराम' के भाग्य में अपनी वात्सल्यमयी माता की शीतल छाया न लिखी थी। केवल एक वर्ष के दुधमुंहे बच्चे को प्रायः निराश्रय छोड़ कर माता स्वर्ग सिधारीं। सब भूतों की माता, गो-माता के अमृतमय दुग्ध पर इस तेजस्वी बालक का पालन-पोषण हुआ। अपनी वृद्धा बुआ की गोदी में यह 'भावी ब्रह्मवेत्ता' मन्दिरों में जाया करता। अपने नन्हे-नन्हे नेत्रों से देव-दर्शन करता। उसके कोमल कर्ण-रंध्रों में रामायण, महाभारत, भागवत इत्यादि पावन गाथाओं की अमृतवाणी प्रवाहित होती और अपनी तुतली वाणी से वह ॐ ॐ गाने लगता। केवल डेढ़ वर्ष की अवस्था का वह अद्भुत बालक मन्दिरों की आरती की ध्वनि की ओर स्वाभाविक रूप से खिंचने लगा। शंख की ध्वनि में उस

ब्रह्मज्ञानी बालक को ओंकार की पवित्र ध्वनि सुनाई देती। रोता हुआ बालक भी शंख-ध्वनि को सुन कर चुप हो जाता, उसका तन-मन रोमांचित हो उठता। तीन वर्ष की अवस्था में एक बार उसके पिता उसे एक कथा में ले गए। दूसरे दिन कथा का समय आते ही बालक मचलने लगा। रो-रो कर उसने आकाश-पाताल एक कर दिया। कथा में पहुंचकर बालक का मुख-मण्डल प्रफुलित हो उठा। यह है उस महान् व्यक्तित्व की नन्ही-सी झलक। जिसने कालान्तर में वेदान्त का प्रखर सूर्य बन कर सारे संसार को आलोकित कर दिया।

होनहार बिरवान के होत चीकने पात

गृहस्थी के तंतु

देश की पतनोन्मुखी होती कुरीतियों के कारण केवल दो वर्ष की अवस्था में ही भगवत् कथाओं के लिए मचलने वाले इस होनहार बालक की सगाई वजीराबाद जिले के पं. रामचन्द्र की सद्य: जाता कन्या से हो चुकी थी तथा केवल 10 वर्ष की अल्पायु में 'गुड्डे-गुड़िया का यह विचित्र विवाह' भी सम्पन्न हो गया। किन्तु शुकदेव, वामदेव, अष्टावक्र, बुद्ध तथा आचार्य शंकर की दिव्य परम्परा में उत्पन्न होने वाले इस ब्रह्मज्ञानी को जगत् के माया-जाल की शृंखलाएँ कब तक बाँधकर रखने में समर्थ हो सकती थी? अपने 33 वर्ष के अत्यल्प जीवन-काल में ही उसने ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ तथा संन्यास, चारों आश्रमों का विधिवत् पालन कर अन्त में ब्रह्मानन्द के परम पद को प्राप्त करने का अभूतपूर्व चमत्कार भी कर दिखाया।

ज्ञान-साधना

बचपन की शिक्षा में ही इस क्रान्तदर्शी महापुरुष ने अपने अलौकिक भविष्य की एक झलक-सी दिखा दी थी। उसकी अलौकिक बुद्धि, अपूर्व मेधा तथा सुशील वाणी अध्यापकों के मन पर अपना प्रभाव अंकित किए बिना न रही। जिन मौलवी साहब से इनने प्राइमरी शिक्षा प्राप्त की उन्हें गुरुदक्षिणा में अपने घर की दूध देने वाली भैंस दे देने के लिए उसने पिता से अनुरोध किया। गुजरांवाला में अंग्रेजी शिक्षा के लिए भेजते समय इनके पिता ने इस 'विवाहित' बालक को अपने मित्र धन्नारामजी के संरक्षण में छोड़ा। श्रीमान् धन्नारामजी, एक नैष्ठिक ब्रह्मचारी तथा कई यौगिक सिद्धियों के स्वामी थे। बालक तीर्थराम ने श्रद्धा से उन्हें गुरु माना तथा उनके चरणों में आत्म-समर्पण कर दिया। यह बात शत-प्रतिशत सत्य है कि बालक तीर्थराम के हृदय में भगवद्भक्ति का जो कोमल बिरवा प्रारम्भिक जीवन में आरोपित हो चुका था, वह भक्त धन्नारामजी की छत्र-छाया में उनके स्नेह से सिंचित तथा ज्ञान से पोषित होकर पल्लवित तथा पुष्पित होने लगा। अनुभवी, सिद्ध एवं महात्मा धन्नारामजी बालक तीर्थराम के भीतर कुछ भावी महानता की

आभा का आभास पा गए। ऐसे गुरु की भक्ति से तीर्थराम की तो काया ही पलट गई। गुरु के चरणों में अपना प्रथम प्रणाम करने के दिन से लेकर सौभाग्य की उस घड़ी तक जब सारा संसार उसके अपने चरणों की धूलि लेने के लिए लालायित हो उठा था, उनकी श्रद्धा-भक्ति धन्नारामजी के चरणों में एक जैसी ही रही। वे अपने पत्रों में प्रायः उनको इन शब्दों में सम्बोधन करते—

सत्यं ज्ञानमनंतं ब्रह्म, आनंदामृत, शान्ति निकेतन मंगलमय,
शिवरूपं, अद्वैतं, अतुलं परमेशं, शुद्धं, अपापविद्धं।।

अपूर्व थी गुरु-भक्ति उस महापुरुष की जो स्वयं विश्व का गुरु बनने के लिए अवतीर्ण हुआ था।

अपने विद्यार्थी-जीवन में इस कोमलकाय बालक को निर्धनता के महा भयंकर दैत्य से भी खूब जूझना पड़ा। प्रायः निर्धनता की भयंकर अग्नि में मानव के हृदय की आशा-रूपी वल्लरी झुलस-सी जाती है। किन्तु धन्य है गोसाईं तीर्थराम। **घोर से घोर विपत्तियों से दुर्धर्ष संग्राम करते हुए भी उनके हृदय में अहर्निश जलने वाली ज्ञान-साधना की लौ कभी बुझने न पाई।** निरन्तर 12 वर्ष के इस देवासुर संग्राम में भी उनके मुखमण्डल की मधुर मुसकान तथा हृदय की पावन ज्ञान-पिपासा कभी मन्द न हुई।

कॉलेज की पढ़ाई के लिए लाहौर आए हुए गोसाईं तीर्थराम अविभाजित पंजाब की राजधानी लाहौर की बच्छोवाली नामक एक गंदी-सी गली में एक रुपया मासिक पर किराये की कोठरी में रहते थे। भोजन के लिए 3 पैसे रोज की भठियारे की रोटियों पर गुजारा करते थे। प्रातः दो पैसे की रोटी तथा दाल तथा सायं एक पैसे की रोटी तथा दाल। यही था उस महान् विभूति का भोजन, जो संसार में 'शहंशाह राम' बनने के लिए पैदा हुआ था। जब दुकानदार ने एक पैसे की रोटी के साथ दाल देने से इनकार कर दिया तो गोसाईं तीर्थराम ने शाम का खाना ही बन्द कर दिया। कई बार एक समय का भोजन वह इसलिए नहीं खाता कि रात्रि को तेल के लिए पैसे बच जाएं। वह अद्भुत युवक, प्रायः कई दिनों तक भूखा रहकर भी मुसकराता रहता। इस 'शहंशाह' के पास न पहनने को कोट था, न पतलून, न नैकटाई। फीस के लिए पैसे तक भी न थे। घर से कानी कौड़ी भी मदद के लिए न मिल पाती थी। वह कर्मवीर अपनी स्वयं की पढ़ाई के अतिरिक्त खाली पेट ही कई ट्यूशनें पढ़ाने जाता। ट्यूशनों के पैसे तथा वज़ीफ़े के पैसे मिलाकर भी मुश्किल से भोजन तथा पढ़ाई का गुजारा चल सकता था। पर यह धैर्यशील-शूरवीर बालक इसमें से भी कुछ बचाकर घर भेज दिया करता। इस प्रकार घोर संकट की काली घटाओं के बीच भी मानवता की फुलवारी का यह अद्भुत प्रसून सदैव मुसकराता ही रहता। श्रीमद्भगवद्गीता में जो स्थितप्रज्ञ महात्मा के लक्षण

दिए गए हैं, गोस्वामी तीर्थराम उसके मूर्तरूप ही थे। निस्सन्देह उसके एक आदर्श उदाहरण!!

महानता की ओर

असाधारण प्रतिभा वाले इस बालक ने विद्यार्थी-जीवन में ही अनेकानेक ग्रंथों का अध्ययन कर लिया था। वह वेदान्त तथा उपनिषदों के मधुर श्लोक गाता रहता। फ़ारसी के मनीषी सूफी मौलाना रूमी तथा शम्स तब्रेज तथा अंग्रेजी के ऋषि-तुल्य साहित्यकार इमर्सन, गेटे, शैली और कार्लाइल इत्यादि के अध्ययन से गोसाईंजी ने एक विद्युत्मयी स्फूर्ति प्राप्त कर ली थी।

संसार के अधिकांश महापुरुषों की नाईं गोसाईं तीर्थराम को भी गणित जैसे सुस्पष्ट, पूर्ण और नियमबद्ध विषय से असीम प्रेम था। बिन्दु, शून्य अथवा वृत्त उनके लिए अनादि, अनन्त ब्रह्म के प्रतीक थे। गिनती के प्रथम अंक 1 तथा फ़ारसी वर्णमाला के प्रथम अक्षर अलिफ (एक) से उन्हें एक ईश्वर का बोध होता था। गणित में प्रयुक्त होने वाला अनन्त का चिह्न उनके लिए ईश्वर की असीम, अनन्त, अगाध शक्ति का सूचक था। जब वे स्वयं बी.ए. में पढ़ते थे तो गणित के विषय में वे विश्वविद्यालय के सर्वश्रेष्ठ विद्यार्थी माने जाते थे। कुछ दिनों के लिए गणित के प्रोफेसर के बीमार पड़ जाने पर उन्हें कालेज की कक्षाओं में पढ़ाने के लिए भी कहा गया और इस कार्य में उन्होंने विलक्षण प्रतिभा का परिचय दिया।

एक बार बच्छोवाली गली की तंग कोठरी में संध्या के समय धीरे-धीरे जलती हुई मोमबत्ती के सम्मुख बैठे हुए उस विलक्षण विद्यार्थी ने प्रतिज्ञा की कि 'सूर्योदय से पहले-पहले यदि वह बिना किसी प्रोफेसर या पुस्तक की सहायता के गणित के चार अत्यन्त कठिन प्रश्न हल न कर सका तो अपनी गर्दन को धड़ से अलग कर देगा।' इस प्रकार जान की बाजी लगाकर और अपने आसन के नीचे एक तेज खंजर रख कर वह वीरव्रती कार्य में जुट गया। अर्धरात्रि तक तीन प्रश्न हल हो गए। किन्तु, बार-बार प्रयत्न करने पर भी चौथा हल न हो सका। इधर उषा की स्वर्ण-रश्मियां झरोखे से झांकने लगीं। प्रण का पक्का राम तेज खंजर लेकर छत पर जा चढ़ा। खंजर की बारीक नोक गर्दन पर रख ली। तुरन्त थोड़ी-सी खरोंच बन गई और लाल रुधिर की बूँदें टपकने लगीं। किन्तु, उसी क्षण प्रश्न का हल स्वर्ण अक्षरों में लिखा हुआ उनके नेत्रों के सामने चमकने लगा। राम ने तुरन्त उस प्रश्न को भी हल कर दिया।

इस प्रतिभा-सम्पन्न विद्यार्थी का नाम जब उसके अंग्रेज प्रिंसिपल ने सिविल सर्विस के लिए अपनी सिफारिश के साथ भेजना चाहा तो गोसाईं तीर्थराम की आँखों में आँसू भर आए। उन्होंने कहा—

‘मैंने इतनी मेहनत से ज्ञान का जो खजाना पाया है, वह मुंसिफ और जज बनकर अपराधियों के मुकदमे सुन-सुन कर फैसले देने में क्यों खो दूँ। इस **ज्ञान की दौलत को बांट कर अपने आप को और दूसरों को सुखी करना मेरा कर्तव्य है।’**

एक अन्य वार्तालाप में इस भावी लोक-शिक्षक ने अपने प्रिंसिपल को उत्तर दिया—

‘यदि कोई इच्छा है तो यही कि अपना सारा जीवन और इस जीवन की हर साँस प्रभु की सेवा में लगा दूँ और मनुष्य मात्र की सेवा करूं। क्योंकि लोकसेवा ही ईश्वर सेवा है।’

केवल अपनी आत्मा के भरोसे ज्ञान-साधना के कठिन पथ पर निरन्तर बढ़ने वाले इस वीरव्रती की प्रतिभा बाधाओं के चक्रव्यूह में पड़कर भी कुंठित न हुई थी। एम.ए. (गणित) की परीक्षा में इस तेजस्वी परीक्षार्थी ने प्रश्न-पत्र में लिखित तेरह प्रश्नों में से नौ का उत्तर पूछे जाने के उपरान्त भी तेरह के तेरह प्रश्न हल करके नोट लिख दिया कि परीक्षक तेरह में से कोई से भी नौ प्रश्न देख लें। परिणाम घोषित होने पर गोसाईंजी प्रान्त भर में प्रथम रहे।

असाधारण प्रतिभा और उच्च योग्यता होने के उपरान्त भी गोसाईं तीर्थराम को बेकारी के भूत से भी खूब लड़ना पड़ा। उधर उनकी निरीहा बाल-पत्नी की चिन्ता भी उनको खाए डालती थी। दर-दर की ठोकरें खाने के पश्चात् गोसाईंजी को मिशन स्कूल, स्यालकोट में अध्यापक का स्थान मिला। उसी कालेज में जहां उसने पढ़ा था, (एफ.सी. कालेज, लाहौर में)। प्रोफेसर पद मिलने पर भुखमरी में पल कर बड़ा होने वाला यह उदार प्राणी कालेज के आल्मा-मेटर के प्रति कृतज्ञता प्रकट करने के लिए एक वर्ष तक लगातार अपना पूरा वेतन कालेज को अर्पित करता रहा।

धीरे-धीरे उनकी आर्थिक दशा सुधरने लगी। किन्तु अपनी चिरसंगिनी निर्धनता के बिछुड़ने पर गोसाईंजी अश्रुपात किया करते। अपने वेतन का कुछ भाग वे अपने स्वाध्याय के लिए धर्म और दर्शन की पुस्तकें खरीदने में व्यय करते। उसी वेतन में से वे कुछ निर्धन विद्यार्थियों की फीस देने में लगाते। अपना उदर-पोषण भी करते। सभा-सोसाइटियों को दान भी देते। अपने गुरु भक्त धन्नारामजी को भी कुछ न कुछ अवश्य भेजते तथा मुरारीवाला में अपने वृद्ध पिता तथा अपनी तरुण पत्नी तथा परिवार के निर्वाह के लिए भी भेजते।

वर्तमान युग में मनोवैज्ञानिक प्राय: कहते हैं कि जिस व्यक्ति ने जीवन के पूर्व भाग में भुखमरी और कंगाली देखी हो, उसके पास जब धन आने लगता है तो वह अपने अभाव की प्रतिक्रिया के फलस्वरूप या तो पैसे से खूब चिपक जाता

है, कृपण पूँजीपति बनता है, अथवा पूँजीवाद के विरुद्ध विद्रोह करने वाला निर्धनों का प्रतिनिधि बन कर साम्यवाद के झण्डे के नीचे चला जाता है। किन्तु धन्य हैं स्वामी राम! अतिशय अभाव और कंगाली में पलकर भी वह महापुरुष कभी माया में लिप्त न हुआ। मनोविज्ञान के सारे सिद्धान्तों को एक ही बार में झूठा सिद्ध करते हुए वह वीतरागी प्रोफेसर धन की लिप्सा तथा वैभव की तुच्छ कामना से बहुत ऊँचा उठा हुआ महापुरुष सिद्ध हुआ।

जीवन के उषाकाल से ही जो दारुण दुःख बालक तीर्थराम ने देखा था उसकी भट्ठी में तप कर वह कुन्दन बन चुका था। दुःख को भी अपने लिए वरदान रूप बना लेने वाला वह विश्व इतिहास का अनोखा महापुरुष था। जब वह अपनी गरिमा के सर्वोच्च शिखर पर था तो स्वयं महानता उसके सम्मुख लज्जित हो जाती थी। भीषण दुःख के दावानल में भी मुसकराने वाला तथा यश-वैभव की घड़ियों में शांत और गंभीर रहने वाला वह महापुरुष श्रीमद्भगवद्गीता का वह आदर्श पुरुष बन चुका था जिसके यश में आज से 5000 वर्ष पूर्व भगवान् श्रीकृष्ण ने स्वयं गाया था—

इहैव तेर्जितः सर्गो येषां साम्ये स्थितं मनः।

अर्थात्—'जिनका मन सुख-दुःख आदि में सदा समान रहता है, उन्होंने तो जीते जी ही सारे संसार को जीत लिया है।' फिर संसार में रहते हुए भी संसार से लिप्त न होना तो ब्रह्मज्ञानी पुरुष का लक्षण है। श्रीमद्भगवद्गीता के आदर्श को यथार्थ में परिणत करने वाला उनका आत्मा प्रायः गुनगुनाया करता—

आदमी को चाहिए दुनिया में रहना किस तरह,
जिस तरह तालाब के पानी में रहता है कमल।

सर्व कृष्णमयं जगत्

ईसाइयों के कालेज में गणित पढ़ने वाले प्रो. तीर्थराम के अन्तस्तल में अनेक वर्षों से निरन्तर किसी गुप्त-स्रोत की नाईं एक दूसरा ही प्रवाह उमड़ता हुआ चला आ रहा था। कालान्तर में वही स्रोत जो उनके भीतर ही भीतर उबल रहा था अचानक कृष्ण भक्ति की प्रबल तरंग के रूप में, बड़े दुर्धर्ष वेग से बाहर फूट निकला। मीरा, सूर और चैतन्य की भांति, वे प्यारे मनमोहन के प्रेम में मतवाले रहने लगे। 'कृष्ण प्यारे' का नाम सुनते ही उनकी आँखों से आँसुओं की झड़ी लग जाती। वंशी की प्यारी ध्वनि कानों में पड़ते ही वे वंशी वाले के ध्यान में बेसुध हो जाते। कृष्ण-प्रेम का नशा उनका इतना बढ़ गया कि कालेज में बोर्ड पर रेखागणित के चित्र बनाते-बनाते वे भगवान् श्रीकृष्ण के चित्र बना जाते। अब अपने प्रियतम के विरह में उन्हें सारा संसार निस्सार प्रतीत होने लगा। रावी नदी के

तट पर वे अपने प्राणेश्वर कन्हैया को ऊँचे स्वर में पुकारा करते। उसके विरहानल में तड़प-तड़प कर धरती पर लोट-पोट हो जाते तथा होश आते ही पुनः 'हा कृष्ण! हा कृष्ण!!' कह कर रोने-तड़पने लगते। आकाश के श्याम मेघ को देखकर उन्हें अपने घनश्याम की याद आ जाती और वे कृष्ण-कृष्ण रटते हुए बेहोश हो जाते। एक बार मूर्च्छा हटने पर अपने सम्मुख काले नाग को फन फैलाए देखकर वे उसकी ओर लपके। क्योंकि उसके फन पर उन्होंने अपने प्यारे कन्हैया को नृत्य करते देखा था। प्रतिवर्ष वे मथुरा-वृन्दावन जाते और प्राण-प्यारे की अद्‌भुत लीलाओं का रसामृत पान करते।

गोसाईंजी की वाणी में उनके अन्तस्तल की गहनतम अनुभूतियां ही साकार हो उठती थीं। हृदय की भावनाएं जब हृदय के भीतर ही न समा सकतीं तो वे कविता के रूप में मुखरित हो उठतीं और वे गीत के माध्यम से नाच उठते—

जग कहता है, वह रवि ही है उसका चित्र मनोहर।
जग कहता है, मानव भी तो है उसकी छाया भर।
जग कहता है, वह चमका करता है तारागण में।
जग कहता है, वही सदा मुसकाता सुरभि सुमन में।
सुनता हूं, बुलबुल का गायन ही है उसका मधु स्वर,
सुनता हूं, है पवन गगन में उसकी साँस निरन्तर।
सुनता हूं, धन से झरता उसके ही नयनों का पानी,
सुनता हूं, जाड़ों की रातें ही उसकी नींद सुहानी।
सुनता हूं, कल-कल निर्झर है उसका ही गतिमय धावन।
इन्द्र-धनुष के झूले पर वह झूल रहा मन-भावन।

इन्हीं दिनों शिमला, लखनऊ, अमृतसर, मथुरा, पुष्कर आदि स्थानों पर उनके हृदयस्पर्शी भावपूर्ण व्याख्यान हुए। उनके अमित प्रेम से पूरित भक्ति की स्रोतस्विनी निर्बाध गति से बह कर श्रोताओं को प्रेमाप्लावित कर देती। लाहौर में 'इश्के-इलाही' पर भाषण देते हुए इतने रोये कि उन्हें हिचकियां आने लगीं। पेशावर में 'तृप्ति' पर व्याख्यान देते हुए भाव-विह्वलता के कारण कुछ देर तक उनके मुख से एक शब्द तक भी न निकल सका। ऐसे भावपूर्ण व्याख्यानों को सुनकर नारायण स्वामी का मन-मधुकर भी गोसाईंजी के पाद-पद्मों में लुब्ध हो जाता।

गोसाईंजी के हृदय की भक्ति की इस उद्दाम तरंग ने शीघ्र ही अन्तस्तल के कपाटों को खोल कर उन्हें ज्ञान और वैराग्य के उन्मुक्त आंगन में लाकर खड़ा कर दिया। सन् 1896 में द्वारिका मठ के अधीश्वर जगद्‌गुरु शंकराचार्य (श्री माधव तीर्थ) लाहौर पधारे। उन जैसे रत्न-पारखी ने गोसाईंजी की भक्ति की तह में छिपे महानता

के बीजों का परिचय पा लिया। उन्होंने गोसाईंजी को बड़े प्रेम से उपनिषद् और वेदान्त शास्त्र पढ़ाना शुरू किया। परिणामत: गोसाईंजी का मनमोहन कन्हैया सारे विश्व में, विश्व के रोम-रोम में व्याप्त एक ही निखिल निरंजन परब्रह्म के रूप में, उनके अन्तस्तल में बस आत्माराम हो गया। गोसाईंजी का अब यह कार्यक्रम बन गया कि गर्मी की छुट्टियों में वे उत्तराखण्ड जाते और आत्मचिन्तन में तल्लीन रहते।

दीवाली का अद्भुत जुआ

अपने लघु-जीवन की 24वीं वर्षगाँठ पर, सन् 1897 की दीपमालिका के पुनीत पर्व पर गोसाईंजी ने एक पवित्र संकल्प किया। उनकी पावन आत्मा परमात्मा से मिलने के लिए छटपटाने लगी थी, उन्होंने अपने पिता को पत्र में लिखा—

'आपके पुत्र तीर्थराम का यह शरीर तो अब बिक गया। वह ईश्वर के हाथों बेच डाला गया। आज दीपावली है, मैंने जुआ खेला है। अपना शरीर जुए में हार बदले में परमपिता परमात्मा को जीत लिया है।'

इसके एक मास पश्चात् भारत-गौरव स्वामी विवेकानन्द लाहौर पधारे। विश्व में वेदान्त की विजय-वैजयन्ती को फहराने वाले इस अमित तेजस्वी लोक-शिक्षक की ओजस्विनी वाणी इस उठते हुए साधक तीर्थराम के हृदय पर जादू का असर कर गई। ब्रह्म-तेज के इस मूर्तिमान अवतार के दर्शन कर गोसाईंजी के मन में स्वामी विवेकानन्द की ही भांति विश्व में वेदान्त-प्रचार की हृदयस्थ लालसा और भी बलवती हो उठी।

अब उनके जीवन का रंग-ढंग ही कुछ बदल गया। आठों प्रहर आत्मानन्द में वे लीन रहते थे। दिसम्बर 1897 में गुरु धन्नारामजी को उन्होंने लिखा—

मैं तू हुआ, तू मैं हुआ, मैं देह हूं, तू प्राण है।
अब कोई यह ना कह सके, मैं और हूं, तू और है।

परम सत्य का साक्षात्कार

अब आत्म-ज्ञान का यह अमर साधक अमृत के झरने के बहुत निकट पहुंच चुका था। सन् 1898 की गर्मी की छुट्टियों में गोसाईंजी गिरिराज हिमालय की ओर चल पड़े। हरिद्वार से ऋषिकेश जाते समय जो पैसे उनके पास थे, वे साधु-महात्माओं को बाँट दिए और अपने साथ उपनिषद् आदि ग्रंथ लेकर आत्म-साक्षात्कार की सर्वोच्च साधना के लिए निकल पड़े। ब्रह्मपुरी होते हुए आप तपोवन पधारे। यहां पुण्यसलिला भागीरथी के तट पर उन्होंने संकल्प किया कि 'यदि अभी-अभी आत्म-दर्शन न हुआ तो इस जीवन का अन्त कर डालूंगा।' इस सत्य-संकल्पी साधक ने जब सिद्धि के प्राप्त होने में कुछ विलम्ब देखा तो तुरन्त अपनी कंचन-काया को भगवती गंगा की उत्ताल तरंगों को भेंट कर दिया।

किन्तु माता गंगा को अभी प्यारे पुत्र को अपने अंक में समा लेना स्वीकार न था। गंगा थोड़ी देर तक अपने इस प्यारे लाड़ले से क्रीड़ा करती रहीं फिर उसे दुलार से निकट ही एक शिलाखण्ड पर सुला दिया। कुछ घण्टे पश्चात् गोसाईंजी उठे और आत्मानन्द की अलौकिक मस्ती से नृत्य करने लगे। इसी पावन घड़ी में उन्होंने जीवन की चिर-अभिलषित अपनी साध को पूर्ण होते पाया। उनके ज्ञान-चक्षु खुल गए और सत्य का उन्होंने आमने-सामने खड़े होकर आलिंगन किया। स्वयं सत्य-स्वरूप बनकर वे ब्रह्मानन्द में झूमते हुए गाने लगे—

न है कुछ तमन्ना न कुछ जुस्तजू है,
कि वहदत में साकी, न सागर, न बू है।
मिली दिल की आँखें जभी मारफत की,
जिधर देखता हूं सनम रू-बरू है।
गुलिस्तां में जाकर हर इक गुल को देखा,
तो मेरी ही रंगत व मेरी ही बू है।
दुई मिट गई और हुए एक ही हम,
रही कुछ न हसरत, न कुछ आरजू है।

इस धन्य घड़ी का वे वर्णन करते हुए कहते हैं—

'जिधर भी मैं दृष्टि उठाता हूं, पत्ता-पत्ता मेरा स्वागत करता है। प्रत्येक फूल मेरे अभिनन्दन में झूम-झूम कर गाता है—'तत्त्वमसि! तत्त्वमसि! वह तू ही है। वह तू ही है।

इन्हीं दिनों अपने पूज्य पिता के एक पत्र के उत्तर में उन्होंने हिमालय की गोद से ही लिखा—

'भीतर निजानन्द के उफान की धूमधाम है और बाहर माता जाह्नवी के प्रवाह का संगीत! भीतर शान्ति का महासागर है और बाहर कल्याण का साम्राज्य!!... मेरे मस्तिष्क का मानसरोवर शान्ति से भरा हुआ है और आनन्द की धारा मेरे हृदय से बह निकली है। मेरा रोम-रोम आनन्द सागर में डूबा हुआ है। विष्णु के हृदय में शान्ति का ऐसा अनन्त सागर उमड़ा कि वे उसे अपने वक्षस्थल में न संभाल सके। इसलिए वह उनके चरणों से पवित्र सलिला गंगा की धारा रूप में बह निकला। विष्णु की ही तरह आज तीर्थराम नारायण स्वरूप हैं, शिव-रूप हैं।'

ग्रीष्मावकाश समाप्त होने पर गोसाईंजी लौट कर लाहौर तो आए पर अब उनका रंग-ढंग ही कुछ निराला था। उनके गौर-वर्ण मुख पर ब्रह्म-तेज की अलौकिक छटा थी। उनकी वाणी में कुछ जादू पैदा हो गया था। उनका व्यक्तित्व प्रकृति माता की पावन शुचिता तथा सात्त्विकता का साकार रूप था। जिसने अमृत

के झरने के पास बैठकर जन्म-जन्म की प्यास मिटा ली हो। उसे निगोड़ी छाछ कैसे लुभा सकती है? गोसाईंजी तो जीवन्मुक्त हो चुके थे। जब भक्त धन्नारामजी ने उन्हें उनके द्वितीय पुत्र के जन्म पर बधाई का पत्र लिखा तो इस स्थितप्रज्ञ महामानव ने उत्तर दिया—

'समुद्र में एक नदी और आन पड़े तो कोई अधिकता नहीं हो जाती और यदि कोई न पड़े तो कोई न्यूनता नहीं हो सकती। किसी प्रकार का हर्ष या शोक हम क्यों करें। हम ज्ञानी नहीं, स्वयं ज्ञान हैं।'

आत्मानन्द की मस्ती बढ़ जाने के कारण गोसाईंजी ने क्रिश्चियन कालेज की छह घंटे की नौकरी छोड़ कर ओरियण्टल कालेज में दो घंटा मात्र कार्य करना प्रारंभ किया। धीरे-धीरे उनके लिए इतना समय निकालना भी कठिन हो गया। अगले वर्ष सन् 1899 की गर्मी की छुट्टियों में गोसाईंजी पुनः हिमालय की यात्रा के लिए निकले। इस बार वह केवल एक अधोवस्त्र धारण किए हुए नंगे ही बदन, अमरनाथ तीर्थ की 18,000 फुट ऊंची चोटी पर जा पहुंचे। गिरिराज के दर्शन के पश्चात् उनके मन में समुद्र-दर्शन की भी एक तीव्र लालसा जाग उठी और वे तुरन्त उसी मस्ती के साथ कराची जा पहुंचे। गिरिराज के गगनचुम्बी हिम-शृंगों से आत्मीयता रखने वाले इस क्रान्तदर्शी महात्मा को सागर की अनन्त-अगाध जल-राशि में भी अपनी आत्मा का ही दर्शन हुआ। सच तो यह है कि हिमालय और वरुणालय से पावन स्नेह सम्बन्ध जोड़ने वाला यह महापुरुष हिमालय के समान ही ऊँचा तथा सागर के समान ही धीर-गंभीर था।

इस बार लाहौर लौटने पर उन्होंने संसार के बचे-खुचे ढीले बंधनों को भी सांप की केंचुल की नाईं त्याग देने का विचार कर लिया। कुछ समय तक श्री नारायण दास (जो पीछे नारायण स्वामी बने) और लाहौर के डिस्ट्रिक्ट नाजिर गोसाईंजी के पास रात्रि के समय उपनिषद् पढ़ने आया करते थे। स्वामीजी की प्रेरणा से 'अलिफ' नामक वेदान्त-विषयक पत्र शुरू किया गया। किन्तु गोसाईंजी के अन्तस्तल का ज्वार इन प्रणालियों में बंध कर चलने वाला नहीं था। अब उनके लिए गृहस्थ आश्रम के छोटे से घरौंदे में रहना ही असम्भव हो गया।

महाभिनिष्क्रमण

जुलाई सन् 1900 में जब उनका मन लाहौर की गलियों से ऊब गया तो एक ही झटके में वे कालेज की प्रोफेसरी त्याग लाहौर नगर को, रावी को और स्नेह-सिंचित संसार को ठुकरा कर विजन के वासी बन गए। वानप्रस्थी बनकर वे हिमालय की ओर चल पड़े। उनके इस महाभिनिष्क्रमण का दृश्य बड़ा करुणाजनक था। अपने प्यारे गोसाईंजी को वनवासी बनता देख कर सारा पंजाब रो पड़ा। लाहौर

के स्टेशन पर लाखों लोग अश्रु-विगलित नेत्रों से उस दिव्य पुरुष की झांकी को निहार रहे थे और उन्हीं का रचा हुआ विदाई गीत गुनगुना रहे थे—

अलविदा मेरी रियाजी! अलविदा!!
अलविदा, ऐ प्यारी रावी! अलविदा!
अलविदा ऐ दोस्तो-दुश्मन! अलविदा!
अलविदा ऐ शीत उष्ण! अलविदा!
अलविदा अय दिल! ख्याले अलविदा!
अलविदा राम! अलविदा-ए-अलविदा!

मोहवश उनकी धर्मपत्नी अपने दो बच्चों को गोदी में लेकर उनकी शिष्य मण्डली में एक शिष्य की नाईं उनके पीछे हो ली। स्वामीजी ने रोका नहीं। हरिद्वार पहुंचकर उस दिव्यात्मा राम ने सब पैसे गंगा में फिंकवा दिए और सब को ईश्वरोपासना का आदेश दिया। देव-प्रयाग होते हुए जब इस छोटी-सी यात्रा-मण्डली ने टिहरी में पहुंच कर पड़ाव किया तो रात्रि के समय सबको वहीं सोता छोड़कर गोसाईंजी चुपके से अकेले ही निकल गए और वहां से 50 मील दूर उत्तर-काशी की ओर नंगे सिर, नंगे पांव चल पड़े। छह माह पश्चात् सन् 1901 में पुण्यसलिला भागीरथी के तट पर उन्होंने विधिवत सिर मुंडवा कर काषाय वस्त्र धारण कर लिया। जीवन्मुक्त गोसाईं तीर्थराम अब परमहंस स्वामी रामतीर्थ बन गए। कल्याण मार्ग के ये महापथिक स्वामी रामतीर्थ संन्यासी के भगवे परिधान में एक दूसरे सूर्य के समान प्रतीत होते थे। सब भूतों में अपनी ही आत्मा के दर्शन करने वाले स्वामी राम बीहड़ों-जंगलों में शेरों और चीतों से प्रेमालिंगन करते रहते और बड़े भयंकर हिंस्र-जन्तु उनके चरणों में आकर खेलते रहते थे। हिमालय में कुछ काल आत्म-चिन्तन करने के उपरान्त जब वे पुनः मैदानों में उतरे तो भारतीय जनगण को ऐसा भान हुआ कि कोई अमित तेजस्वी देवता ही स्वर्ग से उतर आया है। लखनऊ के केसरबाग में जिन सज्जनों को उनके अमृत-तुल्य उपदेशों को श्रवण करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ, उनमें से कुछ जो अब तक जीवित हैं, आज भी उन स्वर्गीय दृश्यों का स्मरण कर पुलकित हो जाते हैं। अपने नेत्रों से स्वामी रामतीर्थ का प्रत्यक्ष दर्शन करने वाले उन वयोवृद्ध देशवासियों का कहना है कि लाखों आँखें उनका दर्शन कर धन्य होती थीं। उनकी व्याख्यान-सभाओं में जो अमृत बरसता था, वह इतना दिव्य था कि उसके लिए स्वर्ग के देवता भी लालायित रहते होंगे।

टिहरी के महाराजा कीर्तिशाह पाश्चात्य दर्शन के प्रभाव से कुछ नास्तिक हो चले थे। उन्होंने स्वामीजी से भगवान् का ठिकाना पूछा। इस दिव्य देवदूत ने उन्हें समझाया—

'हे प्रियात्मन्! जैसे यह हाथ तुम्हारे हैं पर तुम हाथ नहीं हो, यह शीश तुम्हारा है और तुम शीश नहीं हो। वैसे ही यह शरीर तुम्हारा है और तुम शरीर नहीं हो। तुम शरीर के, मन के और बुद्धि के स्वामी अजर-अमर आत्मा हो। उस अविनाशी आत्मा का ठिकाना ही परमात्मा का ठिकाना है।'

एक छोटे से वार्तालाप में ही राजा कीर्तिशाह का मुकुटधारी मस्तक स्वामीजी के श्रीचरणों में झुक गया।

अरुणोदय के देश में

सन् 1902 में राजा कीर्तिशाह ने समाचार पत्रों में पढ़ा कि जापान में एक धर्म सम्मेलन हो रहा है। उन्होंने स्वामीजी से वहां पधारने की प्रार्थना की। स्वामीजी की आँखों के सामने स्वामी विवेकानन्द का पावन आदर्श पहले से ही झूल रहा था। वे जलमार्ग से यात्रा करते हुए उदयाचल के देश जापान में पहुंचे। वहां पहुंच कर उन्हें ज्ञात हुआ कि धर्म-सम्मेलन की खबर अफवाह मात्र थी। वह जी खोलकर हँसे और बोले—

'प्रकृति की चालें भी कैसी मजेदार होती हैं। राम को हिमालय के उस एकान्तवास से निकाल संसार का पर्यटन कराने के हेतु उसने कैसी सुन्दर युक्ति निकाली है। राम तो अपने आप में धर्मों का विशाल सम्मेलन है। यदि टोकियो विश्व सम्मेलन नहीं करना चाहता, तो न करने दो उसे। राम तो स्वयं अपना सम्मेलन करेगा।'

जापान में स्वामीजी की प्राण-दायिनी वाणी से वहां का विद्वत् समाज चकित हो गया। श्री सरदार पूर्णसिंह नामक भारतीय युवक जो उन्हीं दिनों जापान में था, इस ज्ञान-मूर्ति महात्मा के चरणों पर कुर्बान ही हो गया। स्वामीजी से प्रेरणा पा उसने भी भगवा वस्त्र धारण कर लिया और स्वामीजी के संदेश को चतुर्दिक फैलाने का उसने व्रत ले लिया। जापान की इम्पीरियल यूनिवर्सिटी के संस्कृत के विद्वान् प्रोफेसर तकात्कुसु ने स्वामी राम को श्रद्धांजलि समर्पित करते हुए लिखा—

'स्वामी राम जैसा महान् व्यक्ति मैंने कभी नहीं देखा... वे स्वयं धर्म हैं। वे एक सच्चे कवि और सच्चे दार्शनिक हैं।'

टोकियो के कॉमर्स कालेज में स्वामीजी का 'सफलता का रहस्य' विषयक भाषण विश्व की श्रेष्ठतम वक्तृताओं में से एक माना जाता है। भाषण के पश्चात् एक जापानी कलाकार ने कहा—'यह महापुरुष प्रचण्ड अग्नि-शिखा के समान दिखाई देता था और उसके शब्द चिनगारियों की भांति इधर-उधर उड़ते थे।' केवल दो सप्ताह भर जापान में रहने के पश्चात् जब वे अमरीका महादेश के लिए

प्रस्थान कर रहे थे तो जापान के लाखों नर-नारियों की आँखों का अश्रु-प्रवाह रोके नहीं रुक रहा था। जापान के बौद्ध सन्त 'हिरे' ने कहा—

'मुझे उनकी स्मृति नहीं भूलती। उनकी मधुर मुसकान प्रतिक्षण वायुमण्डल में सुन्दर पुष्पों के समान तैरती हुई दीख पड़ती है।'

धन-कुबेरों की धरती पर

जब उनका जलयान अमरीका देश में सानफ्रांसिस्को नगर के तट पर पहुंचने ही वाला था तो एक जिज्ञासु अमरीकन सज्जन पर स्वामी राम जैसे मस्त फकीर को देख कर बड़ा प्रभाव पड़ा। विस्मित होकर उसने जहाज में निश्चिंत बैठे राम से पूछा—

'आपका सामान कहां है?'

'मैं कोई सामान नहीं रखता', स्वामीजी ने कहा।

'आप धन कहां रखते हैं?'

'मैं धन रखता ही नहीं।'

'तो आप जीते कैसे हैं?'

'मैं सबको प्रेम करने से ही जीता हूं।'

'किन्तु क्या अमरीका में आपका कोई मित्र हैं?'

'हां, मैं एक अमरीकन मित्र को जानता हूं', स्वामीजी ने उस भद्र पुरुष के कन्धे पर हाथ रखते हुए कहा, 'आप ही तो वे मेरे मित्र हैं।'

वह अमरीकन भद्र पुरुष डॉ. हिल्लर थे जिन्होंने अमरीका में स्वामीजी की अत्यधिक सेवा की थी। उन्होंने शास्ता नदी के सुन्दर पर्वतीय झरनों के ऊपर स्वामीजी के लिए एकान्त में एक सुन्दर झूला बनवा दिया था, जिसमें आनन्द से झूलते हुए स्वामीजी अमरीका के राष्ट्रपति से भी अधिक प्रसन्न रहते थे।

स्वामीजी दिल खोल कर हँसते थे। अमरीका के कई प्रमुख व्यक्ति और पत्रकार तो उनके इस निर्बाध हास्य को ही देखने आते थे और आश्चर्य करते थे कि यह व्यक्ति किस आत्म-विश्वास के साथ, मानो संसार को तुच्छ समझता हुआ, हँस सकता है। आनन्द उनके रोम-रोम में भरा हुआ था। उन्होंने अपने आनन्दमय जीवन से संसार के महाराजाओं और सम्राटों के गौरव और तड़क-भड़क को उपहास की वस्तु बना दिया था। इसीलिए वे राम बादशाह कहलाते थे।

वे स्वयं कहा करते थे—

'ऐ दुनिया के बादशाहो! और हे सातों आसमानों के तारो! मैं सब पर राज्य करता हूं। मेरा राज्य सबसे बड़ा है।'

अमरीका के समाचार पत्रों ने स्वामीजी का चित्र प्रकाशित करते हुए लिखा—

'A living Christ has come to America.'

अर्थात् 'एक जीवित ईसा मसीह ने अमरीका की धरती पर कदम रखा है।' तत्कालीन अमेरीका का राष्ट्रपति भी भारत के इस 'निर्धन फकीर' के दर्शन करने आया। स्वामीजी की चाल-ढाल को देखकर उसने कहा—

This man walks as if the whole earth belongs to him.

'यह आदमी ऐसे चलता है जैसे सारी धरती पर इसी का राज्य हो।'

इस पर स्वामीजी ने कहा—

Why the whole earth the whole universe belongs to me. सारी धरती ही क्यों, सारा ब्रह्माण्ड मेरा है।

बादशाह दुनिया के हैं मोहरे मेरी शतरंज के,
दिल्लगी की चाल है सब शर्त सुलही जंग की।

स्वयं डॉ. हिल्लर ने स्वामीजी के अभिनन्दन में लिखा है—

'स्वामीजी ज्ञान की ज्योति हैं, हिमालय से आए हैं; आग उन्हें जला नहीं सकती; लोहा काट नहीं सकता; आनन्द के आँसू उनकी आँखों से सदा ही गिरते रहते हैं। उनकी उपस्थिति से सदा नया जीवन प्राप्त होता है।'

अमरीका के नास्तिक समाज की एक विदुषी महिला स्वामीजी से वाद-विवाद करने के उद्देश्य से आई। स्वामीजी उस समय समाधिस्थ थे। समाधि खुलने पर स्वामीजी ने उस महिला से प्रयोजन पूछा तो वह आँखों में पश्चात्ताप के आँसू भर कर कहने लगी—'स्वामिन्! मैं नास्तिक नहीं हूं, आपके दर्शन-मात्र से मेरे सारे संदेह दूर हो गए हैं।'

आत्मबल की शरीरबल पर श्रेष्ठता सिद्ध करने के लिए वे एक बार अमरीका के प्रसिद्ध पर्वतारोहियों के मुकाबले में शास्ता पर्वत की 15,000 फुट ऊँची चोटी पर चढ़ने की प्रतियोगिता में शामिल हुए। इसमें उन्होंने प्रथम पारितोषिक जीता जो उन्होंने लेना स्वीकार नहीं किया। इसी प्रकार एक अन्य अवसर पर अमरीका में एक 30 मील लम्बी दौड़ में वे सर्वप्रथम रहे।

अमरीका के मायावादी जीवों को भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र की लीलाओं का मर्म समझ में नहीं आता था। गोपियों को भगवान् कृष्ण की बाँसुरी पागल बना सकती थी, यह उनकी बुद्धि में नहीं पैठता था। राम ने उन पर इस तथ्य की सत्यता का प्रभाव डालने के लिए एक तरीका अपनाया। एक दिन स्वामीजी संध्या के

समय भाषण करते हुए अचानक जंगल की ओर भाग खड़े हुए। मंत्र-मुग्ध जनता पर स्वामीजी की जादूभरी वाणी का ऐसा प्रभाव पड़ रहा था कि वे उस अमृत को लूटने के आनन्द को किसी भी प्रकार छोड़ने को तैयार न थे। अतः सैकड़ों नर-नारी जिनमें महिलाओं की संख्या अधिक थी, स्वामीजी के पीछे-पीछे एक सुनसान जंगल तक भागते चले गए। वहां पहुंच कर स्वामीजी यकायक खड़े हो गए और उनसे पूछा—'तुम सब ऊँचे कुल की स्त्रियां हो, भला बताओ तो इतनी दूर जंगल में मेरे पीछे क्यों भाग आई हो?'

उन्होंने उत्तर दिया—'हम आपके प्यारे वचन सुनने के लिए पागल हो रही हैं।'

स्वामीजी ने कहा—'जब आप मेरे जैसे विदेशी और अपरिचित व्यक्ति की वाणी सुनने के लिए पागल हो सकती हैं तो ब्रज-गोपिकाएँ अपने प्राण, प्राणेश्वर भगवान् कृष्ण की वंशी सुनने के लिए पागल क्यों नहीं हो सकती थीं?'

स्वामीजी के इस तर्क से अमरीकावासी स्त्री-पुरुष निरुत्तर हो गए।

एक बूढ़ी अमरीकी औरत स्वामीजी के पास आकर अपने घर के दुखड़े घण्टों सुनाती और रोती रही। स्वामीजी सिद्ध आसन लगाए आँखें बंद किए ॐ ॐ का जाप करते रहे।

उस महिला ने सोचा—'यह कैसा असभ्य आदमी है। मेरी प्रत्येक बात को अनसुनी कर देता है।'

जब वह देवी (श्रीमती वेलमैन) अपनी दुःख भरी कहानी सुना चुकी तो स्वामीजी ने आँखें खोलीं। उस महिला को आनन्द की खुमारी से भरी मस्त आँखों से देखा और केवल इतना ही कहा—'माँ!' फिर अपने प्यारे मंत्र ॐ ॐ का जाप करने लगे।

इस अनुभव का वर्णन करते हुए श्रीमती वैलमैन ने कहा—'स्वामीजी के मेरी ओर केवल एक बार देख भर लेने से मुझमें एक नया जीवन आया। मेरा हृदय इतना प्रसन्न हुआ कि भारत दर्शन की प्रबल लालसा मन में जाग्रत् हो उठी। मैंने विचारा कि जाऊँ और स्वामीजी की जन्म भूमि के दर्शन करूं। 'माँ' के शब्द से मेरे अन्दर कुछ अमृत के स्रोत फूट पड़े हैं।'

वही श्रीमती वैलमैन स्वामीजी की जन्म भूमि मुरारीवाला में आई और वहां की पावन धूलि प्रसाद के रूप में अमरीका देश में ले गई।

एक अन्य दुखियारी अमरीकन महिला पुत्र शोक से रोती, तड़पती हुई स्वामीजी के पास पहुँची। स्वामीजी ने कहा—

'शान्ति प्राप्त करने का एक ही मार्ग है। एक छोटे हब्शी बच्चे को अपनी गोदी में लेकर प्यार करो और पुत्र की नाईं पालो।'

जब वह अमरीकन महिला उस काले गन्दे बच्चे से घृणा करने लगी तो स्वामीजी ने कहा—'भगवान् के भण्डार में उसी पर आनन्द की वर्षा होती है जो गोरे और काले के भेद से ऊपर उठ जाता है।'

अमरीकन महिला स्वामीजी का सुझाव मान गई और उसे सच्चा आनन्द प्राप्त हुआ।

गहनों से लदी हुई एक अमरीकन ऐक्ट्रैस स्वामीजी के दर्शन के लिए आई। उस आनन्द मूर्ति महात्मा को देखकर उसे अपने आप से घृणा होने लगी। वह रोती हुई फर्श पर गिर पड़ी और चीत्कार कर कहने लगी—'स्वामी! मैं बहुत दुःखी हूं, मुझे सुखी कर दो। चेहरे पर खिली हुई मुसकान और मेरे इस रूप को देख गलत अंदाजा न लगाओ, इस हँसी के पीछे हाहाकार है और मैं इस नकली जीवन से उकता गई हूं।' इस महिला की स्वीकारोक्ति तथा क्षमा-याचना की पृष्ठभूमि में सम्भवतः समूची पश्चिमी सभ्यता की क्षमायाचना ही अन्तर्निहित थी।

सेंट लुई की धर्म कान्फ्रेंस में उनके व्याख्यान के सम्बन्ध में अमरीका के एक पत्र ने लिखा—

'इस सारे समारोह में प्रफुल्ल मुखमण्डल केवल स्वामी राम का था, जो एक भारतीय तत्त्ववेत्ता के नाते हमें ज्ञान का उपदेश देने आए थे।'

स्वदेश लौटने से एक दिन पहले स्वामीजी ने अमरीका के विशाल जनसमूह को कहा—'कल राम आधे मिनट का उपदेश देगा।'

दूसरे दिन लाखों उत्सुक मनुष्य अपने नेत्र और कान की प्यास लिए सभा के मैदान में उपस्थित थे। देदीप्यमान सूर्य की नाईं स्वामीजी प्रकट हुए और उन्होंने कहा—

'जिसको संसार के विषय नहीं हिला सकते, वह सारे संसार को हिला सकता है।'

स्वामीजी भारत लौटने के लिए तैयार थे। एक अत्यन्त धनाढ्य अमरीकन महिला स्वामीजी के पास पहुंची और अपने लाखों डालर की जायदाद उनके चरणों में भेंट करती हुई बोली—

'स्वामी जी! इस धन से आप वेदान्त का प्रचार करें या कोई यूनिवर्सिटी खोलें, यह सब कुछ आपका ही है। आप चाहें मुझे शिष्या, पुत्री या बहिन जो चाहें समझें, पर मुझे केवल 'मिसेज राम' लिखने की अनुमति दे दें, मैं आपके चरणों में गिरती हूं।

स्वामीजी ने हँसकर कहा—'देवी! मैं तो भारत का संन्यासी हूं। लाखों की

सम्पत्ति ही क्या, यदि सम्पूर्ण अमरीका का साम्राज्य भी मुझे भेंट कर दिया जाए तो उसे ठोकर मार दूंगा, क्योंकि मैं स्वयं सम्राटों का सम्राट, शहंशाह राम हूं।'

युवती ने स्वामी राम के चरणों में गिरकर कहा-'भगवन्! आपके आधे मिनट के संदेश का मर्म मुझे अब समझ आया।' वह महिला अपना सब धन निर्धनों को लुटा कर संन्यासिनी बन गई और भारत दर्शन के लिए आई।

मातृभूमि की ओर

धन-कुबेरों के देश अमरीका से अपने निर्धन स्वदेश को लौटते हुए स्वामीजी के नेत्रों में प्रेम के अश्रु छलक आए। उन्होंने स्वयं लिखा है—

किन्तु सूर्य ज्यों ही अस्ताचल जाते हुए दिखाते हैं।
मेरे दोनों नेत्र आँसुओं से उस दम भर जाते हैं।
वही दृश्य बस तब फिर मेरी आँखों में छा जाता है।
और फूलों से लदा हमारा भारतवर्ष दिखाता है।

कितना अदम्य देशप्रेम हिलोरें ले रहा था उनके मन-मानस में? सूर्य को सम्बोधन करते हुए उन्होंने कहा—

'हे अस्त होने वाले सूर्य! तू भारत में निकलने को जा रहा है। क्या तू कृपा करके राम का यह संदेशा उस ज्योतिर्मय पुण्यभूमि को ले जाएगा? क्या ही अच्छा हो कि यह मेरे प्रेम के अश्रु बिन्दु प्यारे भारत के खेतों में पहुंच, ओस की बूँदें बन जाएँ। जैसे शैव शिव की पूजा करता है, वैष्णव विष्णु की, ईसाई ईसा की और मुसलमान मुहम्मद की, वैसे ही मैं भारत के दृश्य को मानस में लाकर उसकी पूजा करता हूं। भारत माता के प्रत्येक लाल को मैं मूर्तिमान भगवान् ही समझ कर पूजता हूं। हे भारत माता! मैं तेरे हर एक रूप में तेरी उपासना करता हूं। तू मेरी गंगा है, तू मेरी काली है, तू मेरा इष्टदेव है, तू ही मेरा शालग्राम है।'

मार्ग में मिस्र देश की एक मस्जिद में स्वामीजी ने फारसी भाषा में एक जादूभरा व्याख्यान दिया। सिकन्दरिया बन्दरगाह पर जब एक जहाज में वे बैठे तो उन्हें ज्ञात हुआ कि उसी जहाज में वायसराय लॉर्ड कर्जन भी भारत जा रहे थे। स्वामीजी ने हँस कर कहा—'दो बादशाह एक ही जहाज में यात्रा नहीं कर सकते।' इसी मौज में उन्होंने अपना टिकट वापस कर दिया और दूसरे जहाज में गए।

ता. 8 सितम्बर सन् 1904 के दिन ढाई वर्ष की विदेश यात्रा के पश्चात् वे पुन: स्वदेश लौटे। कोटि-कोटि कण्ठों ने उनका जय-जयकार किया। कोटि-कोटि शीशों ने उनकी वन्दना की तथा कोटि-कोटि नेत्र उनका पावन दर्शन कर धन्य हो गए। मथुरा में शिवगणाचार्य ने उन्हें यह परामर्श दिया कि वे वेदान्त प्रचार के लिए एक नई संस्था की स्थापना करें।

'भारत की सब सभा-समितियां राम की हैं, राम उनमें काम करेगा। सब भारतवासी मेरे भाई हैं।... जाओ, उन्हें कह दो, राम उनका है, राम सबको छाती से लगाता है। मैं सब पर प्रेम की वर्षा करूंगा। संसार को आनन्द की धारा से नहला दूँगा। यदि कोई विरोध प्रकट करेगा तो उसका स्वागत करूंगा। प्रत्येक शक्ति मेरी है, प्रत्येक संस्था मेरी है।' स्वामीजी ने उत्तर दिया।

'देश के सर्वांगीण पुनरुत्थान का सशक्त जनसंदेश' हमें उनकी वाणी में मिला। जागृति का जादूभरा मंत्र देते हुए वे कहते हैं-'जब मैं चलता हूं तो अनुभव करता हूं कि सारा भारत ही चल रहा है। जब मैं बोलता हूं तो अनुभव करता हूं कि भारत की ही वाणी गूँज रही है। जब मैं साँस लेता हूं तो मालूम होता है कि स्वयं भारतमाता ही साँस ले रही है। मैं ही भारत हूं, मैं ही शंकर हूं, मैं ही शिव हूं।'

स्वामीजी आत्मगौरव के मूर्तिमान अवतार थे। वे कहा करते—ऐ दुनिया के बादशाहों और सातों आसमानों के तारों! मैं तुम सब पर राज्य करता हूं। मेरा राज्य सबसे बड़ा है।

हिमालय की गोद में

अब शहंशाह राम ने अपना सिंहासन विश्व के सर्वोच्च पर्वत गिरिराज हिमालय पर बनाया। पहले उन्होंने व्यास-आश्रम में ठहरकर वेदाध्ययन किया, फिर वसिष्ठ आश्रम में, हिमालय की चोटियों पर पहुंच कर उन्होंने मौन समाधि ले ली। 12 अक्टूबर 1906 के दिन एकान्तवास के लिए जाते समय उन्होंने प्रिय शिष्य नारायण स्वामी को अपना अन्तिम उपदेश दिया। नारायण स्वामी की आँखें भर आई। स्वामीजी ने कहा—

'घबराओ नहीं, आत्म-चिन्तन करो। वेदान्त के स्वरूप बनो। किसी का सहारा मत लो, अपने पैरों पर खड़ा होना सीखो।'

ज्योति में ज्योति विलय

पाँच दिन पश्चात् 17 अक्टूबर 1906 के दिन दीपमालिका का पावन पर्व था। उनका पार्थिव शरीर जीवन की 33वीं दीपावली मना रहा था। प्रात:काल से ही उनकी मस्ती का रंग कुछ निराला ही था। ॐ ॐ की ध्वनि गूँज रही थी। मध्याह्न के समय गंगा में डुबकी लगाने उतरे। भागीरथी की प्रखर धारा में उनका पार्थिव शरीर बह चला। राम ॐ ॐ की ध्वनि में चूर थे। तट पर खड़ा उनका रसोइया भोलादत्त सकलानी व्याकुल हो उठा। स्वामीजी ने कहा—

'घबराओ नहीं, राम गंगा की लहरों में निमग्न हो रहा है। अब से वह गंगा की लहरों में, सूर्य की ज्योति में, तारों की दमक में और चाँद की चमक में रहेगा।'

दीपमालिका के दिन ही वह अमर-ज्योति इस संसार में अवतरित हुई थी और दीपमालिका के ही पावन पर्व पर वह ज्योति परम ज्योति में विलीन हो गई।

अपनी जल-समाधि से कुछ ही क्षण पूर्व उस ज्योतिष्मान् विभूति ने अपनी पावन लेखनी से जो अन्तिम शब्द लिखे वह उनके अमर वैभव के परिचायक हैं—

'ओ मृत्यु! भले ही उड़ा दे इस शरीर को, मेरे और शरीर ही मुझे कम नहीं। मैं सूर्य की सुनहली किरणों और चन्द्र के रजत धागों को धारण कर प्रसन्नता से जीवित रहूंगा। मैं पर्वतीय गुफाओं और सोतों में स्वच्छन्द गाता हुआ फिरूंगा। मैं आनन्द के महासागर में लहराता फिरूंगा। मैं समीर की तरह निर्बाध वायु हूं। यह मेरे शरीर परिवर्तन के घूमने-फिरने वाले रूप हैं। इस रूप में पहाड़ों से उतरा, मुरझाते हुए पौधों को ताजा किया। फूलों को हँसाया, बुलबुल को रुलाया, द्वारों को खटखटाया, सोतों को जगाया, किसी का आँसू पोंछा, किसी का घूंघट उठाया। इसको छोड़, उसको छोड़, तुम को छोड़, वह गया! वह गया!! वह गया!!! न कुछ साथ रखा, न किसी के हाथ आया।

स्वामी रामतीर्थ परमहंस तो मुक्त गगन के वासी थे। वे तुच्छ स्वार्थों से लदी हुई दुनिया के प्राणी न थे। वे विश्व गंगा के अमर तैराक थे, जिन्होंने अपनी आत्मा को विश्वात्मा में मिलाकर अपना पृथक् अस्तित्व खो दिया था। वे आत्मा के अमर कवि थे—विश्व के अन्तराल में घूर्णित अनहद नाद-तत्त्व के एक अनूठे कलावन्त, गीतकार। ब्रह्मानन्द स्वरूप उन महात्मा के अन्तस्तल में तरंगित आध्यात्मिकता की अमर-रागिनी शाश्वतकाल तक गूँजती रहेगी।

'तमाम दुनिया है खेल मेरा,
मैं खेल सबको खिला रहा हूं।
किसी को बेखुद बना रहा हूं,
किसी को गम में रुला रहा हूं।
कभी मैं दिन को निकालूँ सूरज,
कभी मैं शब को दिखाऊँ तारे।
यह जोर मेरा है दोनों पाओं—
को मिस्ले फिरकी फिरा रहा हूं।

आज उन दिव्य देवदूत की पावन स्मृति में हमारा रोम-रोम आनन्द से पुलकित होकर कृतज्ञता की कोमल वाणी में कह रहा है—

ब्रह्मलीन श्री स्वामी रामतीर्थ परमहंस की जय।

ॐ शान्ति, शान्ति, शान्तिः।

स्वतंत्रता का मन्त्र

उनकी अमृतवाणी में मानवता के जागरण का ओजस्वी मन्त्र था। 'राम सबसे ऊँचे पर्वत की चोटी पर खड़ा होकर गर्जन के साथ कहता है कि दरिद्रता और दौर्बल्य की शिकायत करने वाले, लोगो! सचमुच तुम शक्तिमान प्रभु हो, स्वयं राम हो। अपनी ही कल्पनाओं में स्वयं मत जकड़े जाओ। उठो और जाग्रत् होवो, अपनी निद्रा और संसार रूपी स्थान को झाड़ कर परे फेंक दो। निज स्वरूप को पहचानो। इस सब दु:ख-दारिद्र्य का अपने आप लोप हो जाएगा। सारे सुखों की खान और सम्पूर्ण आनन्द की अन्तरात्मा तुम्हीं हो।'

सच्ची स्वतंत्रता के मंत्रद्रष्टा उस अमृत जीवी मुक्ति दूत का मृत्युंजय मंत्र है—'स्वतंत्रता दूसरे को जीतने से नहीं मिलती है। मिलती है अपनी विजय से-अपने मन को जीतने से।'

जन्मदात्री भारतमाता के असीम प्रेम से भरकर वह मातृवत्सल ऋषि प्रेमाश्रु-पुलकित वाणी में गद्यगीत गाने लगते—

'हे अस्त होने वाले सूर्य! तू भारत में निकलने जा रहा है। क्या तू कृपा कर राम का यह संदेशा उस ज्योतिर्मय को ले जाएगा? क्या ही अच्छा हो कि यह मेरे प्रेम के अश्रु बिन्दु भारत के खेतों में पहुंच कर ओस की बूँदें बन जाएं। जैसे शैव शिव की पूजा करता है, वैष्णव विष्णु की, ईसाइ ईसा की वैसे ही मैं भारत के दृश्य को हृदय में लाकर उसकी पूजा करता हूं। भारतमाता के प्रत्येक काल को मैं मूर्तिमान भारत ही समझ कर पूजता हूं। हे भारतमाता! मैं तेरे हर एक रूप में तेरी उपासना करता हूं। तू मेरी गंगा है, तू मेरी काली है, तू मेरा इष्टदेव है, तू ही मेरा शालग्राम है।'

आधुनिक क्रान्तिकारी सुधारकों के प्रति उन ऋषि-तुल्य लोकनायक का संदेश है : 'हे नवयुवक! भावी सुधारक! तू भारतवर्ष की प्राचीन रीतियों और परमार्थ-निष्ठा की निन्दा मत कर। निरन्तर विरोध के नए-नए बीज बोते रहने से भारत में एकता लाना कठिन हो जाएगा। भारत की अवनति के कारण यहां के धर्म और अध्यात्म नहीं हैं। भारत की विकसित और फूली-फली फुलवारी इसलिए लुट गई कि उनके पास कांटों की बाड़ नहीं थी। कांटों और झाड़ियों की बाड़ चारों ओर लगा दो, किन्तु उन्नति और सुधार के बहाने गुलाब के पौधों और फलदार वृक्षों को न काट डालो।'

व्यावहारिक वेदान्त

प्रजातंत्र की भावना को अपने व्यावहारिक वेदान्त का अंग बताते हुए वह आदेश देते हैं—

'प्रत्येक मनुष्य को अपना स्थान स्वयं निर्धारित करने के लिए एकसमान स्वतंत्रता दो। हमारा सिर चाहे जितना ऊँचा रहे, परन्तु पांव सदा सबके साथ पृथ्वी पर ही जमे रहें। वह कभी किसी अन्य मनुष्य के कंधे अथवा गर्दन पर न पड़ें, चाहे वह निर्बल हो अथवा इसके लिए स्वयं राजी ही क्यों न हो।'

आध्यात्मिक साम्यवाद के समर्थक उन वेदान्त केसरी का सिंहनाद आज भी गूँज रहा है—'स्त्रियों, बालकों और श्रमजीवी-जातियों की शिक्षा पर ध्यान न देना उन्हीं शाखों को काट गिराना है, जिनके आश्रय पर हम खड़े हुए हैं। नहीं, यह तो राष्ट्रीयता के वृक्ष की जड़ पर ही घातक कुठाराघात करना है।'

देश के लकीर के फकीर प्राणियों के प्रति उन क्रांतदर्शी महात्मा का मधुसिक्त व्यंग्य है—यदि आप नई रोशनी को आत्मसात् करने को सहर्ष तैयार नहीं हैं, उस नए प्रकाश को जो आपके ही देश की प्राचीन रोशनी है, तो आओ, इस धरती को छोड़कर अपने पितरों के साथ जाकर निवास करो। यहां क्यों ठहरे हो? प्रणाम!

विश्व को वेदान्त का पावन मंत्र देते हुए मानवीय गौरव से भर कर वह पुकार उठते—

'हे मनुष्य! तू ईश्वर है, केवल शरीर के केन्द्र में रहना भर छोड़ दे। जब शरीर-चेतना, चर्म-दृष्टि छूट जाती है तब ईश्वर चेतना, दिव्य दृष्टि अपने आप प्राप्त हो जाती है। संसार और उसका अंधकार ही शरीर-चेतना की छाया है। वैसे तो ईश्वर-चेतना सदा मानवी आत्मा में अपने प्रकाश से स्वयं चमकती रहती है।'

भारतवासी मरना सीखें

वैसे मरने तो सभी मरते हैं। कालवश सबको मरना पड़ता है। परन्तु हम भारतवासी और प्रकार से मरना भूल गए हैं। मरना जानते हैं जापान वाले, इंग्लैंड वाले तथा अमरीका वाले। हमें यदि उन लोगों से कुछ सीखना ही है, तो मरना सीखें।

जब से हमारा यह देश स्वार्थपरता के कुचक्र में, भंवर में जा उलझा है, इसका पलड़ा उलट गया है। यदि इस देश के निवासी फिर से संभलना चाहते हैं तो स्वार्थपरता की भावना से इस देश को सर्वथा मुक्त करने का प्रत्येक व्यक्ति बीड़ा उठा ले।

ईश्वर तुम्हारे भीतर काम करने लगे, बस फिर कोई कर्तव्य न रह जाएगा। ईश्वर को अपने भीतर से प्रकाशित होने दो। ईश्वर तुम्हारे स्वरूप में प्रकट हो। ईश्वर में रहो-सहो, खाते-पीते ईश्वर को प्रस्तुत देखो। प्रत्येक साँस में ईश्वर का अस्तित्व हो और सत्य का प्रत्यक्ष अनुभव करो। अन्य वस्तुएं सब अपने आप ठीक हो जाएंगी।

स्वर्गीय राज्य में रहो, वह तुम्हारे भीतर है, तुम्हारा ही स्वरूप है।

राम का अन्तिम संदेश

प्यारे भारतवासियो!

आपको सँभल जाना चाहिए। आपके सौभाग्य का सवेरा अब हुआ ही चाहता है। पहले-पहल विश्वास-रूपी सूर्य का प्रकाश यहीं हुआ था। बाद में यहां से फारस, अरब, मिस्र, रोम, यूनान होता हुआ यूरोप में पहुँचा। यूरोप में इंग्लैंड और वहां से अमरीका पहुंचा। अब वह अमरीका से जापान पहुँच चुका है और जापान से उसकी किरणें भारत के आकाश पर चमकने लगी हैं।

यह हमारे सौभाग्य का प्रभात है, अब हम सचेत हो जाएं। कहीं ऐसा न हो कि यह सूर्य पश्चिम को ढल जाय और आप सोते के सोते रह जाएँ।

प्यारे देशवासियो! उठो और दूसरों को उठाने का प्रयत्न करो। सब अपने-अपने कर्तव्य पर लग जाओ और अपने देशवासियों को उनके कर्तव्य सुझाओ। सूर्य उदय हो, उससे पूर्व ही अपने देशोन्नति रूपी कर्तव्यों को स्थिर कर लो। एक क्षण, एक पल भी व्यर्थ न खोओ। यदि सोच-विचार में ही पड़े रहोगे तो सूर्य पश्चिम को चला जाएगा, फिर आपसे कुछ करते-धरते न बनेगा। ॐ! ॐ! ॐ!!!

उत्तिष्ठत, जाग्रत
प्राप्य वरान्निबोधत

स्वामी रामतीर्थ के रूप में विश्वमंच पर भारत का साकार सत्य ही बोलता था। उनकी वाणी में भारतीय संस्कृति की वह अमर अभिव्यक्ति मिली जिसके कारण समूचा विश्व पुनः इस देश को पूज्य भाव से देखने लगा।

श्रद्धांजलि

'स्वामी राम एक महान् संत थे। भारत के नभो-मंडल में स्वामीजी एक अत्यन्त दीप्तिमान मार्गदर्शक तारे की भांति चमके। देश के नवनिर्माण की इस घड़ी में हम उनके अभाव का अनुभव कर रहे हैं। अगर वह इस समय जीवित होते तो बहुत कुछ सम्भव था कि देश के संघर्षशील तत्त्वों के बीच एकता स्थापित करने में उनका बड़ा हाथ होता और वे सब दलों में वास्तविक सामंजस्य और पारस्परिक प्रेम उत्पन्न कर देते। फिर भी वे आज हमारे हृदयों में प्राणप्रद आत्मिक शक्ति की तरह सदा ज्वलंत, अनन्त एवं अनश्वर रूप में विद्यमान हैं, और रहेंगे।'

—स्वामी शिवानन्द सरस्वती

इस शताब्दी के प्रारम्भिक वर्षों में स्वामी रामतीर्थ भारत के एक उच्चतम व्यक्ति थे। अपने भाषणों और लेखों से ही नहीं, प्रत्युत अपने आकर्षक व्यक्तित्व से भी उन्होंने अपने समकालीन व्यक्तियों पर गहरी छाप डाल दी है।

भारत स्वतंत्र है, किन्तु दु:ख और विपत्तियों से मुक्त नहीं है। भौतिक और आध्यात्मिक समस्याएं हमारे सामने मुंह बाए खड़ी हैं। ऐसे समय में ही स्वामी रामतीर्थ के उपदेशों से हमें आशा, विश्वास और आनन्द प्राप्त होता है। आइये, हम सब भारत की सेवा में अपने आपको समर्पित कर दें और भारतीय संस्कृति के आदर्श को पूरा कर दिखावें। स्वामी रामतीर्थ का निम्नलिखित संदेश हमारा पथ-प्रदर्शन करता रहेगा—

'अपने वर्तमान को अतीत के अनुरूप बना लो और साहसपूर्वक अपने पुनीत और सबल वर्तमान को भविष्य की ओर बढ़ने दो। अपने पूर्व पुरुषों से प्राप्त परम्पराओं आदि के बिना हम आगे नहीं बढ़ सकते। वह समाज जो इनका बिल्कुल परित्याग करता है, वह बाहर से नष्ट हो जाता है और जो समाज इनके वशवर्ती हो जाता है, वह अन्दर से खोखला होकर नष्ट हो जाता है।'

—डॉ. अमरनाथ झा

मेरे और स्वामी राम के बीच एक सम्बन्ध है, और वह यह कि हम दोनों लाहौर के फोरमैन क्रिश्चियन कालेज के विद्यार्थी रहे हैं। थोड़े दिनों वहां गणित के प्राध्यापक रह कर वे संसार से विरक्त हो गए, किन्तु वहां के प्राध्यापक और पुराने विद्यार्थी नवीन विद्यार्थियों को उनके लाभ के लिए स्वामी राम की अद्‌भुत बातें सुनाया करते थे।

उनका प्रेम, मानवता और विश्व-बन्धुत्व का संदेश, आज के दिन अमूल्य निधि है। विशेषत: उस समय जबकि देश बड़ी उथल-पुथल, दु:ख और पीड़ा से बाहर निकलने का यत्न कर रहा है। पीड़ितों और संतप्तों को मैं यही सलाह दूंगा कि वे स्वामी राम के उपदेशों पर अमल करें। इससे ही उन्हें शान्ति मिल सकती है।

—डॉ. कैलाशनाथ काटजू

अनुपमेय राम

एक और व्यक्ति हैं जिन्होंने कई प्रकार से स्वामी विवेकानन्द से भी अधिक सफलता के साथ नवीन वेदान्त का प्रचार उत्तर भारत में किया। वे व्यक्ति स्वामी रामतीर्थ थे। स्वामी राम के दार्शनिक सिद्धान्त का विवेचन स्वामीजी के ही शब्दों में पढ़िये—

'प्रभु की प्रार्थना में हम कहते हैं—हमको आज की रोटी बख्श और दूसरे स्थान पर हम कहते हैं—मनुष्य केवल रोटी से ही जीवित नहीं रह सकेगा। इन दोनों वाक्यों पर पुनर्विचार करो और उन्हें पूरी तरह समझने की कोशिश करो। प्रभु से प्रार्थना करने का अर्थ यह है कि एक राजा जिसे अपनी रोटी की चिन्ता नहीं है, वह भी प्रार्थना करे। यदि ऐसा है तो 'आज की रोटी हमें बख्श' का स्पष्टत: यह

अर्थ नहीं है कि हम अपने को भिखारी जैसी स्थिति में डाल दें और भौतिक समृद्धि की मांग करें। इस प्रार्थना का अर्थ है कि प्रत्येक व्यक्ति, चाहे वह राजकुमार हो, राजा हो या फकीर हो, इन सब पदार्थों को जो उसके आसपास चारों ओर है, अपनी न समझे, बल्कि उन्हें ईश्वरीय समझे। वह कहे **'इदम् न मम, इदम् न मम,** (यह मेरी नहीं है, यह मेरी नहीं है)' इसको भिक्षा मांगना नहीं, बल्कि त्याग कहते हैं। अर्थात् प्रत्येक वस्तु ईश्वर को अर्पित कर देना। राजा जिस समय यह प्रार्थना करता है, अपने को उसी स्थिति में डाल देता है और अपने समस्त धन-कोष को, प्रासाद को त्याग देता है, उन पर अपना अधिकार छोड़ देता है, उस समय वह सर्वसम्पन्नन्न होते हुए भी फकीरों से भी बड़ा फकीर बन जाता है।'

....ऐसे परिव्राजक धार्मिक प्रचारकों का कार्य कभी पूरा नहीं आंका जा सकता। ये वास्तव में प्राचीन और अर्वाचीन श्रृंखलाओं के बीच एक कड़ी का काम करते रहते हैं। स्वामी राम की मिसाल यूरोप के इतिहास में नहीं मिल सकती।

—स्व. सी.एफ. एन्ड्रयूज

स्वामी रामतीर्थजी का नाम ही ऐसा है कि उससे मेरे हृदय में अलौकिक आनन्द उत्पन्न हो जाता है। मुझे अभी तक उनसे अधिक बड़े किसी ऐसे महात्मा से मिलने का अवसर नहीं मिला जिसने इस प्रकार आत्म-अनुभव किया हो।

उनकी आत्म-शुद्धि और आत्म-अनुभव का सन्देश देश की आने वाली भावी पीढ़ियों के लिए एक महान् वरदान है।

—महामना पं. मदनमोहन मालवीय

महामानव की पुण्य-स्मृति में

स्वामी राम के उपदेशों का प्रचार होना ही चाहिए। वह न केवल भारत, अपितु समूचे विश्व की महानतम विभूतियों में से एक थे। मैं उनके आदर्शों का आदर करता हूं।

—मोहनदास कर्मचन्द गांधी

जब मैं युवा था तब मैंने एक बार, स्वामी रामतीर्थ का भाषण सुना था। मुझे इसमें तनिक भी संदेह नहीं है कि आज से 50 वर्ष पूर्व भारत के आध्यात्मिक विकास में उनका प्रभावशाली योगदान था। उनका प्रभाव अभी तक विद्यमान है।

—स्वर्गीय सर तेजबहादुर सप्रू

स्वामी रामतीर्थ का जीवन और उनकी कृतियां दीर्घकाल तक संसार को प्रेरणा देते रहेंगे।

—डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन्

स्वामी रामतीर्थ का जीवन देशवासियों के लिए सदा प्रेरणा का स्रोत रहेगा। आप ब्रह्मलीन थे और आपको उस प्रभु के दर्शन सर्वत्र और प्राणी मात्र में होते थे। वे जहां कहीं जाते थे, अपनी पुनीत मुसकराहट और आकृति से प्रेम की वर्षा कर देते थे। हम सबसे उत्तम श्रद्धांजलि उन्हें यह भेंट कर सकते हैं कि हम यह दृढ़ निश्चय कर लें कि भविष्य में हम पवित्रता, स्वार्थत्याग, प्रेम और सहनशीलता का जीवन व्यतीत करेंगे।

—आचार्य जे. बी. कृपलानी

स्वामी रामतीर्थ उन व्यक्तियों में से थे, जिनसे मुझे अपनी युवावस्था में अपनी मातृभूमि की सेवा करने की प्रेरणा मिली थी। इस देश में हजारों नवयुवक ऐसे हैं जिनकी जीवनधारा पर आपके इस महान् विचार के सिद्धान्तों का प्रभाव पड़ा है।

—एस. के. पाटिल
अध्यक्ष, बम्बई प्रान्तीय कांग्रेस कमेटी

स्वामी रामतीर्थ के अद्‌भुत एवं प्रकाशपूर्ण जीवन से अनेकों शिक्षाएँ मिलती हैं। हिन्दुओं के धर्म में त्याग का सर्वोच्च स्थान है, यह जैसा कि श्रीकृष्ण भगवान् ने कहा है, सात्त्विक होना चाहिए। सच्चे जिज्ञासु को स्वामी रामतीर्थ के अनुभवों से, जो अपने ढंग के अनोखे हैं, बहुत अधिक लाभ प्राप्त हो सकता है।

—श्री बी.जी. खेर, बम्बई

स्वामी रामतीर्थ एक ऐसे विशिष्ट संत थे, जिन्होंने हमारी मातृभूमि को पूज्य स्थान दिलाया है। वे इस भौतिक संसार को बहुत साल पूर्व ही त्याग चुके हैं, किन्तु उनका आत्मिक प्रभाव सदा विद्यमान रहेगा। ऐसे पवित्र अवसर पर ही उनके भक्तों को उनके सशक्त प्रभाव की विशेष अनुभूति होती है। उन सरीखे महापुरुषों ने ही भारत को यथार्थ में महान् बनाया है।

—**स्वर्गीय श्री तुषारकान्ति घोष** (अमृत बाजार पत्रिका)

स्वामी राम के शाश्वत सुख और आनन्द की वर्षा करने वाले महान् उपदेशों ने दुःखी हृदयों के अन्धकार में प्रकाश पहुंचाया है। वे इस संसार में जीवन-पथ पर बढ़ने वाले लाखों मानवों की उन्नति और प्रेरणा का अनवरत स्रोत रहे हैं।

—**श्री आनन्द टी. हिंगोरानी,** सम्पादक 'गान्धी सिरीज'

महामानव स्वामी रामतीर्थ अनेकों के लिए प्रेरणा के स्रोत रहे हैं। मैं ईश्वर से प्रार्थना करता हूं कि यह उत्तम प्रभाव दीर्घकाल तक बना रहे और मानव पर सुख और आनन्द की वर्षा करता रहे और साथ ही उनमें एकता और सच्चे भ्रातृत्व का प्रसार करे।

—श्रीप्रकाश, राज्यपाल, मद्रास

स्वामी रामतीर्थ भारत के एक पुत्ररत्न थे। मेरी कामना है कि उनका संदेश अमर रहे और पीड़ित मानवता को विशेष सहायता देता रहे।

—स्वर्गीय श्री एस. ए. ब्रेलवी, (बाम्बे क्रोनिकल)

स्वामी रामतीर्थ के उत्तम उपदेशों को जीवित रखना, उनका प्रचार और प्रसार करना महान् कार्य है। वह सच्चिदानन्द के मूर्त-रूप थे।

—स्वर्गीय डॉ. श्यामाप्रसाद मुखर्जी

स्वामी राम के उपदेशों का पूरे उत्साह से प्रचार करना चाहिए।

—प्रोफेसर तान युनसान (शान्ति निकेतन)

अमरीका आने वाले हिन्दुओं में स्वामी राम सर्वश्रेष्ठ व्यक्ति थे। वे बहुत बड़े संत और ऋषि थे, जिनके जीवन में हिन्दू अध्यात्मवाद के उच्चतम सिद्धान्त प्रतिबिम्बित होते थे। जिनकी आत्मा में विश्व आत्मा के प्रति, जिससे वह साक्षात्कार करना चाहते थे, असीम प्रेम का स्रोत उमड़ता रहता था।

न्यूयार्क, जुलाई 1921 **—लाला हरदयाल,** एम.ए.

इस सत्य से कोई इनकार नहीं कर सकता कि प्राचीन भारतीय परमेश्वर के वास्तविक स्वरूप का साक्षात्कार कर चुके थे। उनका तत्त्वज्ञान तथा उनके विचार इतने उत्कृष्ट, इतने भव्य, इतने यथार्थ, इतने वास्तविक तथा सत्य होते थे कि उनकी तुलना में पाश्चात्य विचार ठीक उतने ही नगण्य प्रतीत होते हैं, जैसे मध्याह्न-कालीन सूर्य के प्रखर प्रकाश के मुकाबले में स्वर्ग से चुराई हुई प्रमीथियन अग्नि (Promethean Fire) का झुटपुटा प्रकाश।

—विक्टर कजिन (फ्रेंच दर्शनवेत्ता तथा इतिहासज्ञ)

स्थिर बिन्दु

आर्किमिडीज ने कहा था कि मुझे कोई स्थिर आधार (खड़े होने का स्थल) मिल जाये, तो मैं दुनिया को हिला सकता हूं। किन्तु बेचारा ऐसा स्थिर बिन्दु न पा सका। स्थिर बिन्दु तुम्हारे अन्दर है, वह है तुम्हारी आत्मा! उसे पकड़ो और सारा संसार तुम चलाने लगोगे।

वास्तव में कर्ता भी तुम्हीं हो और कर्म भी तुम्हीं। तुम ही आत्मा हो और तुम ही नाममात्र अनात्मा हो, तुम ही सुन्दर गुलाब हो, और अभी बुलबुल भी तुम ही हो। तुम फूल हो और भौंरा भी तुम हो। हर एक चीज भी तुम हो। भूत और प्रेत, देवता और देवदूत, पापी और महात्मा, सब तुम ही हो। यह है संन्यास, त्याग का मार्ग। अपना केन्द्र अपने से बाहर मत बनाओ, ऐसा करने से तुम गिर पड़ोगे। अपना पूर्ण विश्वास अपने में रखो, अपने केन्द्र में बने रहो। फिर तुम्हें कोई चीज न हिला सकेगी।

—स्वामी रामतीर्थ

राजा कीर्तिशाह एवं स्वामी रामतीर्थ में ईश्वर-विषयक सम्वाद

राजा कीर्तिशाह : स्वामीजी! क्या आप ईश्वर में विश्वास रखते हैं?

स्वामी रामतीर्थ : नहीं, विश्वास तो उस वस्तु में किया जाता है, जिसे देखा न हो। 'To see God is to be God.' 'ब्रह्मविद् ब्रह्मैव भवति।' ब्रह्म को जानने वाला तो स्वयं ब्रह्म बन जाता है, हम तो नित्य ब्रह्म के साथ ही विहार करते हैं।

कीर्तिशाह : तब स्वामीजी! क्या आप मेरी ईश्वर से भेंट करवा देने की कृपा करेंगे?

स्वामीजी : क्यों नहीं! अवश्य, आप साक्षात्कार के लिए आवेदन-पत्र बनाइये।

राजा कीर्तिशाह ने आवेदन पत्र में लिखा : 'हे सर्वशक्तिमान परमेश्वर! सादर निवेदन है कि मुझे आप से साक्षात्कार की अनुमति प्रदान की जाय।'

आपका विश्वासी, कीर्तिशाह।

स्वामीजी : राजा! आप अपने पत्र में पक्का नाम, पता लिख दो।

कीर्तिशाह : स्वामीजी! मैंने अपना नाम कीर्तिशाह लिख दिया है और अपना पक्का पता महाराजा, टिहरी गढ़वाल राज्य भी लिख दिया है।

स्वामीजी : राजा! क्या तुम्हारा कीर्तिशाह वास्तविक नाम है?

राजा : हाँ! स्वामीजी।

स्वामीजी : जब आप माता के गर्भ से प्रकट हुए तो क्या यह नाम आपके माथे पर लिखा था?

राजा : नहीं, स्वामीजी! यह नाम तो कुछ वर्षों बाद घरवालों ने ज्योतिषी के परामर्श से रख दिया।

स्वामीजी : नाम तो कल्पित होते हैं। केवल लोक-व्यवहार के लिए कल्पना से रख लिये जाते हैं, और आवश्यकतानुसार बदले भी जा सकते हैं। इसलिये आप के नाम नहीं है। नाम आपके शरीर पर अस्थायी रूप से चिपकाया हुआ लेबल मात्र है जो संसार ने दिया और संसार ही छीन लेगा। आपका व्यक्तित्व नाम से पृथक्, नाम के बंधन से मुक्त 'अनामी' है।

राजा : हाँ, स्वामीजी! नाम तो कल्पित संकेत-मात्र है। आवेदन में मैं नाम छोड़कर अपना शेष परिचय लिख देता हूँ।

साढ़े पांच फीट कद, 36 इंच छाती, ऐसा रंग-रूप आदि।

स्वामीजी : राजा! यह तो शरीर का वर्तमान परिचय है, आपका परिचय नहीं। शरीर भी परिवर्तनशील और विकारी है। इस शरीर की कहानी माँ के गर्भ में एक शुक्र के कीड़े से प्रारम्भ हुई, जिसे खुली आंख से देखा भी नहीं जा सकता। क्या उस वीर्य के कीटाणु का साढ़े पांच फीट कद, 36 इंच छाती और दो मन भार माना जा सकता है? गर्भ के अन्दर शुक्र कीट अनेक रूप बदलता है। शरीर के जन्म के समय वह बहुत छोटा एवं कोमल होता है। भ्रूण से शिशु, बाल, किशोर, तरुण, युवा, प्रौढ़, वृद्ध, रोगी, मृतक इन सब रूपों में निरन्तर परिवर्तित होता हुआ यह शरीर श्मशान की धूलि के कण में समाप्त हो जाता है। शुक्र के कीड़े से लेकर श्मशान की राख के कण तक निरन्तर परिवर्तित होने वाले रूपों में आप अपना व्यक्तित्व कहाँ खोजोगे? राजा! तुम रूपों को धारण करने वाले, फिर भी रूपों से पृथक्, विकारी रूपों के बीच में अविकारी—रूपों की लीला के बीच अरूपी हो। न नाम तुम्हारा सही परिचय है और न रूप। आवेदन-पत्र पर पक्का नाम-पता लिखो तो परमेश्वर से तुरंत भेंट करवा दूँ।

राजा कीर्तिशाह : तब स्वामीजी! केवल इतना ही लिख देता हूँ—राजा, टिहरी, गढ़वाल राज।

स्वामीजी : राजा! क्या यह आपका पक्का पता है?

राजा कीर्तिशाह : हाँ, स्वामीजी! हम सदा से इस राज्य के शासक हैं।

स्वामी राम : एक समय था तुम्हारा यह शरीर ही नहीं था, एक समय है, यह शरीर है, एक समय पुनः होगा जब यह शरीर नहीं रहेगा। 30 वर्ष पूर्व तुम इस राज्य के राजा नहीं थे, 60 वर्ष पश्चात् तुम राज्य के राजा नहीं रहोगे। अतः यह पक्का पता कैसे हुआ?

राजा कीर्तिशाह : महाराज! राजा तो बदलता है, किन्तु राज्य तो स्थायी है। अतः केवल राज्य का नाम ही पक्का पता है।

स्वामीजी : राजा! तुम अपनी टिहरी गढ़वाल रियासत को रो रहे हो, एक समय था जब यह धरती ही नहीं थी, एक समय है जब यह धरती है, एक समय पुनः होगा जब यह धरती नहीं रहेगी। तब तुम्हारा पक्का पता कहाँ रहा?

राजा : तब स्वामीजी! इस प्रकार से तो जगत् में कुछ भी पक्का नहीं है।

मैं देख्यो निरधार, यह जग काचो कांच सों—बिहारी

स्वामीजी : राजा! अगर तू अपना पक्का पता जान ले तो मैं एक क्षण में तुम्हारी परमेश्वर से भेंट करवा देता हूँ।

राजा कीर्तिशाह : मुझे कुछ समझ में नहीं आता, क्या कहूँ?

स्वामीजी : अच्छा राजा! क्या यह ताज तुम्हारा है?

राजा कीर्तिशाह : हाँ, स्वामीजी!

स्वामीजी : राजा! क्या तुम ताज हो?

राजा कीर्तिशाह : नहीं स्वामीजी!

स्वामीजी : क्या यह सिर तुम्हारा है? राजा = हाँ

स्वामीजी : क्या तुम सिर हो? राजा = नहीं

स्वामीजी : क्या यह मुख तुम्हारा है? राजा = हाँ

स्वामीजी : क्या तुम मुख हो? राजा = नहीं

स्वामीजी : क्या यह भुजाएं तुम्हारी हैं? राजा = हाँ

स्वामीजी : क्या तुम भुजाएं हो? राजा = नहीं

स्वामीजी : क्या यह छाती तुम्हारी है? राजा = हाँ

स्वामीजी : क्या तुम छाती हो? राजा = नहीं

स्वामीजी : क्या यह पेट तुम्हारा है? राजा = हाँ

स्वामीजी : क्या तुम पेट हो? राजा = नहीं

स्वामीजी : क्या ये जंघाएं तुम्हारी हैं? राजा = हाँ

स्वामीजी : क्या तुम जंघाएं हो? राजा = नहीं

स्वामीजी : क्या ये पांव तुम्हारे हैं? राजा = हाँ

स्वामीजी : क्या तुम पांव हो? राजा = नहीं

स्वामीजी : क्या यह जूते तुम्हारे हैं? राजा = हाँ

स्वामीजी : क्या तुम जूते हो? राजा = नहीं

स्वामीजी : राजा! क्या यह शरीर तुम्हारा है? राजा = हाँ

स्वामीजी : क्या तुम शरीर हो?

राजा : (सोचकर) नहीं स्वामीजी! शरीर के प्रत्येक अंग को छूकर मैंने निश्चय कर लिया है कि शरीर मेरा तो है, पर मैं स्वयं शरीर नहीं हूँ।

स्वामीजी : राजा! फिर तुम क्या हो?

राजा : स्वामीजी! संभवतः मैं मन हूँ। क्योंकि मन द्वारा ही मुझे भान होता है कि मैं शरीर का स्वामी हूँ।

स्वामी : राजा! तुम्हारा मन क्या कभी गलती करता है, कभी भूल करता है? तब मन की भूल या चंचलता ज्ञात होने पर क्या तुम मन की ताड़ना करते हो?

राजा : हाँ, स्वामीजी! मैं मन को, भूल अपराध करने पर बहुत फटकारता हूँ।

स्वामी : तब राजा! मन तुम्हारा नौकर जैसा है, जिसकी भूलों के लिए तुम उसे डांट-फटकार एवं दण्ड देते हो, तो तुम मन कैसे हो? तुम तो मन रूपी नौकर पर शासन करने वाले हो। बताओ, तुम कौन हो?

राजा : स्वामीजी! शायद में बुद्धि हूँ, क्योंकि बुद्धि के द्वारा ही मन की भूलों का ज्ञान होता है।

स्वामी : राजा! तुम कभी कहते हो, कि 'यह कठिन विषय मेरी बुद्धि से परे है।' कभी कहते हो, 'अरे! उस समय मेरी अकल ही मारी गई थी।' इसका अर्थ है कि बुद्धि की असमर्थता एवं बुद्धि की भूल को भी आप जानते हैं।

राजा : हाँ, स्वामीजी! बुद्धि की अयोग्यता, बुद्धि की सीमा, बुद्धि की असमर्थता तथा बुद्धि के भ्रम को बाद में मैं ही जान लेता हूँ।

स्वामीजी : राजा! तुम कौन हो?

राजा : स्वामीजी! मैं शरीर से परे, इन्द्रियों से परे, मन से परे, बुद्धि के परे कुछ हूँ, किन्तु कह नहीं सकता, मैं कौन हूँ।'

स्वामीजी : राजा! यह जो तुम कहते हो कि 'मैं' कुछ हूँ, इस 'मैं' का ही संस्कृत में नाम है 'आत्मा'।

यही तुम्हारा पक्का ठिकाना है। जो इस पक्के परिचय को जान लेता है, उसकी तुरंत परमात्मा से भेंट हो जाती है।

राजा : स्वामीजी! अब मेरी आंखें खुल गईं। सच्चा आत्मज्ञान ही परमात्म ज्ञान है।

स्वामी रामतीर्थ और भारत एक है

स्वामी रामतीर्थ कहते हैं—मैं हँसता हूँ तो भारत हँसता है, मैं रोता हूँ तो शताब्दियों का दुःख, पीड़ा, अपमान घनीभूत होकर मेरे द्वारा अभिव्यक्त होता है। स्वामी रामतीर्थ भारत के साथ एकात्म थे।

× × ×

यदि इस पृथ्वी तल पर ऐसा कोई देश है, जो मंगलमयी पुण्यभूमि कहलाने का अधिकारी है, ऐसा देश, जहाँ संसार के समस्त जीवों को अपना कर्मफल भोगने के लिये आना ही है—ऐसा देश जहाँ ईश्वरोन्मुख प्रत्येक आत्मा का अपना अन्तिम लक्ष्य प्राप्त करने के लिये पहुँचना अनिवार्य है, ऐसा देश जहाँ मानवता ने ऋजुता, उदारता, शुचिता एवं शांति का चरम स्पर्श किया हो—तथा इन सबसे आगे बढ़कर भी जो देश अन्तर्दृष्टि एवं आध्यात्मिकता का घर हो—तो वह देश भारत ही है।

—स्वामी विवेकानन्द

Wanted

Reformers
Not of others
But of themselves
Who have won
Not University Distinctions,
But victory over the local self,
Age : The youth of divine joy,
Salary : Godhead,
Apply sharp
With no begging solicitations
But commanding decision
To the director of the universe
You own self.
OM ! OM ! OM !

–Swami Rama

आवश्यकता है

सुधारकों की,
दूसरों को नहीं
स्वयं अपने आपको सुधारने वालों की,
जिन्होंने जीता है
विश्वविद्यालयों की उपाधियों को नहीं,
वरन् अपने आपको,
आयु : दिव्य आनन्द का यौवन,
वेतन : ईश्वरत्व
तुरंत आवेदन दीजिए
कृपा की भिक्षा याचना के साथ नहीं
वरन् स्वामित्वपूर्ण संकल्प के साथ
आवेदन करने का पता : सृष्टि का निर्देशक,
आपका अपना आत्मा।
ॐ, ॐ, ॐ

—स्वामी रामतीर्थ

अरविन्द विचारदर्शन

'भारत उस सत्य का रक्षक है जो विश्व का रक्षक है।' इन शब्दों में वेदवाणी वन्दित, शताब्दी-शतशः पूजित योगीराज अरविन्द ने भारत की महत्ता का आख्यान किया है। वास्तव में भारत के उस दिव्य सत्य के अद्वितीय द्रष्टा महर्षि अरविन्द ही थे। इसीलिए विश्वकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने उन्हें अपनी नमनांजलि समर्पित करते हुए कहा था—

अरविन्द रवीन्द्रेर लहो नमस्कार
हे बंधु, हे देश बंधु,
स्वदेश आत्मार वाणि-मूर्ति तुमि।

अर्थात् **हे अरविन्द! रवीन्द्रनाथ का नमन समर्पित**
हे बंधु, स्वदेश के बंधु
निज स्वदेश भारत की पावन
आत्मा की वाणी-मूर्ति तुम।

भारत—भगवान् का अपना विशिष्ट देश

भारत की महिमा में योगीराज अरविन्द कहते हैं—'ईश्वर अपने लिए एक विशेष देश चुन लेता है, जिसमें महान् ज्ञान, सब प्रकार की परिस्थितियों तथा संकटों के भीतर से कुछ लोगों द्वारा अथवा बहुत लोगों द्वारा, निरन्तर सुरक्षित रहता है। वर्तमान काल में तथा कम से कम इस शताब्दी में, वह देश भारत है।'

भारतमाता—भगवती दुर्गा

योगीराज अरविन्द के लिए भारतमाता साक्षात् भगवती दुर्गा का जीवित-जागृत दिव्य देव विग्रह थी। इसीलिए भारत भक्ति के दिव्य गीत वन्दे मातरम् को श्री अरविन्द ने भारत भक्ति एवं भगवद् भक्ति का महानतम मंत्र माना तथा वन्दे मातरम् के अमर गायक श्री बंकिमचन्द्र चट्टोपाध्याय को राष्ट्र भक्ति का मंत्रद्रष्टा ऋषि कहकर सम्बोधित किया।

बंकिम-तिलक-दयानन्द

योगीराज ने देशभक्ति के मंत्रद्रष्टा श्री बंकिमचन्द्र चट्टोपाध्याय, स्वराज्य मंत्र के द्रष्टा लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक तथा वैदिक ज्योति के वीर सेनानी स्वामी दयानन्द सरस्वती को अपनी अलौकिक श्रद्धांजलियाँ समर्पित की हैं।

स्वाधीनता महायज्ञ

'राष्ट्रीय मुक्ति एक महान् पवित्र यज्ञ है, बायकाट, स्वदेशी आन्दोलन, राष्ट्रीय शिक्षा तथा हर छोटी-बड़ी गतिविधि उस यज्ञ का ही अंग है।' इन शब्दों में श्री अरविन्द ने राष्ट्रीय मुक्ति संग्राम को एक महायज्ञ घोषित किया। वे अपने अग्नि-पूर्ण शब्दों में कहते हैं—'स्वाधीनता वह सुफल है जो यज्ञ से प्राप्त होता है तथा मातृभूमि वह देवी है जिसके चरणों में वह फल समर्पित करना है। यज्ञकुण्ड की अग्निशिखा की सात लपलपाती जिह्वाओं में हमें अपना व्यक्तित्व एवं सम्पदा सभी कुछ समर्पित करना है। अग्नि को अपना रक्तदान तथा अपने स्वजनों के जीवन एवं अपने सुख की भी आहुति चढ़ानी है, क्योंकि मातृभूमि एक ऐसी देवी है जो लूला-लंगड़ा तथा अधूरा बलिदान स्वीकार नहीं करती तथा देवों ने स्वाधीनता किसी भी कृपण होता को कभी नहीं प्रदान की।'

स्वदेश तथा स्वधर्म

अरविन्दजी के विचार में स्वदेश तथा स्वधर्म में कोई अन्तर नहीं। उनके लिए वन्दे मातरम् जीवन का महामंत्र था। उनके विचार में राजनीति धर्म का अंग है, परन्तु उसका आचरण आर्यभाव के साथ आर्य धर्मानुमोदित उपाय से करना चाहिए। 'हम भावी आशा स्वरूप युवक दल से कहते हैं कि यदि तुम्हारे प्राणों में विद्वेष हो तो उसे शीघ्र ही जड़ से निकाल फेंको। विद्वेष की तीव्र उत्तेजना से क्षणिक रजःपूर्ण बल आसानी से जागृत होता है और शीघ्र ही क्षीण होकर दुर्बलता में परिणत हो जाता है।'

श्री अरविन्द के विचार में स्वदेश माता भगवती, दैवी शक्ति के अनन्त रूपों में से एक विशिष्ट रूप है। इसी सत्यानुभूति के कारण ही 'वन्दे मातरम्' उनके जीवन का महामंत्र था।

श्री अरविन्द ने राजनीति एवं स्वातंत्र्य संग्राम को आध्यात्मिक भित्ति पर प्रतिष्ठित किया। भारत का स्वातंत्र्य विश्व की महामुक्ति का मार्ग उन्मुक्त करेगा। श्री अरविन्द का कथन है, 'भारत उस सत्य की रक्षा करता है जिससे मानवता की रक्षा होती है।'

अखण्ड भारत के मंत्रद्रष्टा

15 अगस्त 1947 को देश के स्वाधीनता पर्व पर देश के विभाजन का अपराध होते देखकर योगीराज की आत्मा पुकार उठी—

'चाहे किसी भी उपाय से हो, चाहे किसी भी प्रकार से हो, विभाजन अवश्य टलना चाहिए। एकता अवश्य स्थापित होनी चाहिए और होगी, क्योंकि भारत के भविष्य की महत्ता के लिए यह अनिवार्य है।'

आज बांग्लादेश का स्वातंत्र्य संग्राम तथा मुक्ति संकल्प क्या योगीराज की भविष्यवाणी की परिपूर्ति की ओर इतिहास की रोमांचकारी गति नहीं है।

उज्ज्वल भावी भारत के दिव्य द्रष्टा

भावी भारत का स्वर्णिम दृश्य प्रस्तुत करते हुए महायोगी की वाणी मुखर हो उठी, 'भारत के भाग्य का सूर्य उदय होगा तथा सारे भारत को ज्योति से आपूरित करेगा तथा उसकी ज्योति का प्रसार भारत की सीमाओं को पार करेगा, एशिया की सीमाओं को भी पार करेगा तथा सारे विश्व को भी अपनी ज्योति से आप्लावित कर देगा।'

। न त्वेवार्यस्य दासभावः।

आर्य कभी दास-गुलाम नहीं हो सकता।

—चाणक्य

× × ×

अध्यात्मिक-दृष्टि से भारत जगत् में सबसे आगे है। उसकी भूमिका है आध्यात्मिकता का उदाहरण स्थापित करना। यह बात इतनी स्पष्ट है कि यहाँ का एक भोला-भाला और अनपढ़ किसान भी अपने हृदय में यूरोप के बुद्धिजीवियों की अपेक्षा भगवान् के अधिक निकट है। मेरा एक मित्र भारत की सैर करके लौटा। किसी ने उससे अपनी यात्रा की घटनाएँ सुनाने के लिए कहा। एक वयस्क, भोली महिला वहाँ मौजूद थी। उन्होंने उससे पूछा....क्या भारत में आत्माएँ गिनी जाती हैं? उसने उत्तर दिया, हाँ। 'कितनी आत्माएं हैं? महिला से पूछा गया। उसने उत्तर दिया—'बस एक'।

—श्री माँ

योगीराज अरविन्द का दर्शन

धरती के चिरकाल प्रतीक्षित अतिथि अनश्वर,
गहन दुखों की तामस छाया के हे तमचुर,
अपने प्रबल घोष सन्देशों में देते हो
शाश्वत जीवी मुक्ति धाम की उज्ज्वल आशा।

स्वनाम धन्य नाटककार द्विजेन्द्रलाल राय के गौरवशाली पुत्र श्रीयुत दिलीपकुमार राय की यह हृदयहारी श्रद्धांजलि जिन तपोपूत ब्रह्मवेत्ता महापुरुष के चरणों पर चढ़ाई गई है वे वेदवाणी वन्दित योगीराज अरविन्द घोष आधुनिक काल में भारत के स्वर्णिम अतीत के मूर्तिमान गौरव थे तथा भावी मानवता की उज्ज्वलतम आशा।

प्रख्यात फ्रेंच साहित्यकार रोम्यां रोलां उन पाण्डिचेरि के परमहंस श्री अरविन्द को अपनी भावांजलि चढ़ाते हुए लिखते हैं—'श्री अरविन्द, एशिया की प्रतिभा तथा यूरोप की प्रतिभा का ऐसा पूर्णतम समन्वय है जो विश्व के इतिहास में अभी तक उपलब्ध किया जा सका है।'

विश्वकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर जब पाण्डिचेरि में योगीराज के दर्शन करने गए तो महायोगी को देखते ही नृत्य करते हुए गाने लगे—

शृण्वन्तु विश्वे अमृतस्य पुत्रा, आर्य धामानि दिव्यानि तस्थुः।
वेदाहमेतं पुरुषं महांत, आदित्य वर्णे तमसः पुरस्तात्।।

हे विश्व के अमृत पुत्रो, सुनो! आर्य दिव्य धामों के निवासी देवताओं सुनो, मैं उस महानतम महापुरुष को जानता हूँ जो आदित्यवर्ण का है और अन्धकार से नितांत परे है।

वेद की वाणी में ही बोलते ऋषि रवीन्द्रनाथ ने ब्रह्मर्षि अरविन्द में साक्षात् ब्रह्म के ही दर्शन प्राप्त किए।

जीवन दर्शन

योगीराज अरविन्द का जीवन बिल्कुल एक कमल (अरविन्द) के समान ही

प्रफुल्ल तथा निर्लिप्त था—

अरविन्द पत्र इव निर्लिप्तम्
अरविन्द योगेश्वरम्।
ब्रह्म, ब्रह्मविद् वन्दे,
दिव्य ज्योतीरीश्वरम् कविम्।
पांडि आश्रम परमहंस,
आत्म संगीत गायकम्।
दिव्य जीवनेश्वरं वन्दे,
अरविन्दं जग वन्दितम्।

अरविन्द भारत एवं विश्व के लिए एक ईश्वरीय देन ही थे। अन्यथा बड़ा विस्मय होता है कि जो बालक भारत के समुद्री तटों से तनिक दूर जहाज में पैदा हुआ 5 वर्ष की छोटी अवस्था में जो दार्जिलिंग के ईसाई स्कूल में पढ़ने के लिए भेज दिया गया, तत्पश्चात् जो इंग्लैण्ड में पूर्णतया विदेशी शिक्षा पाता रहा, वहीं लैटिन, ग्रीक, फ्रेंच इत्यादि विदेशी भाषाओं में जिसने पूर्णतम प्रवीणता प्राप्त की, पूर्ण यौवन तक जिसे एक भी स्वदेशी भाषा नहीं आती थी, जो स्वयं अपनी मातृभाषा बांग्ला तक भी बोल नहीं सकता था, जिस ने विदेशी नौकरशाही का अफसर बनने के हेतु बड़े सम्मान के साथ इण्डियन सिविल सर्विस की परीक्षा में उच्च स्थान प्राप्त किया। वह एकाएक आई.सी.एस. को ठोकर मार कर भारत का महान् ऋषि और विश्व का महानतम दिव्य देवदूत बन जाएगा, यह कौन जानता था? जब अरविन्द पुनः मातृभूमि की ओर लौट रहे थे तब अरविन्द के पिता को किसी ने गलत सूचना दे दी कि मार्ग के तूफान के कारण जहाज डूब गया तथा उनका तेजस्वी पुत्र काल-कवलित हो गया है। इस सूचना से ही पिता का प्राणान्त हो गया। इस भयंकर परिस्थिति के उपरान्त भी अरविन्द ने भारत पहुँच कर अपने आपको स्वदेश कार्य के लिए समर्पित कर दिया।

वे हमारे क्रांतिकारी अध्यात्मिक राष्ट्रवाद के प्राण प्रेरक एवं दिव्य देवदूत बन गये। वे कहा करते थे—देशभक्ति एक अवतार है जिसका कोई हनन नहीं कर सकता। देशभक्ति को उन्होंने अध्यात्मिक भित्ति पर प्रतिष्ठित किया तथा देशसेवा के महान् कार्य में विश्वाधार ईश्वर की ही महान् प्रेरणा का साक्षात्कार किया। वन्देमातरम्, कर्मयोगिन तथा धर्म नाम के पत्र प्रारम्भ करके उन्होंने देश में देशभक्ति की ज्वाला को सुलगा दिया था। ऋषि अरविन्द ने भारत माता का साक्षात् महाशक्ति दुर्गा के रूप में साक्षात्कार किया था।

महानता की झलक

जब अरविन्द को दूसरी बार गिरफ्तार करके अलीपुर जेल में बन्दी बनाया

गया तो उनके मुकदमे में बोलते हुए श्री चितरंजनदास ने कहा, 'न्यायालय के सामने जो व्यक्ति खड़ा है, वह साधारण व्यक्ति नहीं है। उसकी मृत्यु के बहुत समय बाद उसे देशभक्ति का कवि, राष्ट्रवाद का अवतार और मानवता का पुजारी समझा जायेगा....उसके शब्द न केवल भारत में बल्कि दूरवर्ती समुद्रों और देशों के पार ध्वनित और प्रतिध्वनित होंगे....यह व्यक्ति इस न्यायालय के सामने ही नहीं खड़ा है, बल्कि इतिहास के न्यायालय के सामने खड़ा है।' उसी अलीपुर जेल में श्री अरविन्द को सब कहीं श्रीकृष्ण के दर्शन हुए।

ऋषि अरविन्द कहते हैं 'तब भगवान् श्रीकृष्ण ने मेरे हाथों में श्रीमद्भगवद्गीता रख दी, उनकी शक्ति मुझमें प्रविष्ट हो गई और मैं गीता के आधार पर जीवन साधना करने योग्य बन गया।'

मैंने अपने को मनुष्यों से अलग करने वाले उस जेल (अलीपुर जेल) की ओर दृष्टि डाली और देखा कि अब मैं उसकी ऊँची दीवारों के अन्दर बन्द नहीं हूँ, मुझे तो अब चारों ओर से घेरे हुए थे भगवान् वासुदेव। मैं टहलते हुए अपनी काल कोठरी के सामने वाले पेड़ की शाखाओं तले गया, किन्तु अब वहाँ पेड़ नहीं था, मुझे प्रतीत हुआ कि वे साक्षात् वासुदेव ही हैं, मैंने देखा वहाँ स्वयं योगेश्वर श्रीकृष्ण खड़े हैं और मुझ पर अपनी छाया किये हुए हैं। मैंने अपनी काल कोठरी के सीखचों की ओर देखा, उस झरोखे की ओर देखा जो द्वार के लिये प्रयोग होता था, और फिर वहाँ भी मैंने भगवान् वासुदेव को देखा। स्वयं नारायण ही संतरी बनकर खड़े मेरे ऊपर पहरा दे रहे थे। अब मैं उन मोटे कम्बलों पर लेट गया जो मुझे पलंग की जगह मिले थे और मैंने अनुभव किया कि मेरे सखा और प्रेमी श्रीकृष्ण ही मुझे अपनी बाहुओं में लिये हुए हैं।....मैंने दृष्टि डाली तो मैंने मजिस्ट्रेट को नहीं देखा....मैंने अभियोग पक्ष के वकील को नहीं देखा, वहाँ तो भगवान् श्रीकृष्ण ही विराजमान थे और मुस्कराते हुए बोले, 'अब क्या तुम भय मानते हो?' उन्होंने कहा, मैं यहाँ मनुष्य मात्र में हूँ और मैं उनके कर्मों और उनके वचनों पर शासन करता हूँ....मैं मार्गदर्शन कर रहा हूँ, इसलिये डरो मत। अपने उस कार्य की ओर लग जाओ जिसके लिये मैं तुम्हें जेल में लाया हूँ और जब तुम जेल से निकलो, याद रखो, कभी मत डरो, कभी संकोच मत करो। याद रखो कि यह मैं ही सब कुछ कर रहा हूँ, न तुम, न अन्य कोई....मैं ही राष्ट्र हूँ, मैं ही राष्ट्रोत्थान और मैं वासुदेव हूँ, मैं नारायण हूँ और जो कुछ मैं चाहूँगा वही होगा न कि जो कुछ अन्य व्यक्ति चाहेंगे। जो कुछ मैं करना चाहता हूँ, कोई मानवी शक्ति उसे रोक नहीं सकती।'

अतिमानस दर्शन

श्री अरविन्द ने अपने योगबल द्वारा इस महान् उपलब्धि को प्राप्त किया जिसके द्वारा वे मानवता को स्वर्ग का भूमीकरण करने की उज्ज्वल आशा प्रदान

करने में समर्थ हुए, 'मनुष्य विकासशील प्राणी है। मनुष्य के भीतर और उस के परे प्रकाश की सीढ़ियाँ हैं, जो दिव्य अतिमानवता के शिखर को जाती हैं। वही हमारा चरम लक्ष्य है और हमारी आकांक्षाकुल किन्तु अशान्त और मर्यादित भौतिक सत्ता को मुक्ति दिलाने वाली कुंजी है। श्री अरविन्द का कथन है कि मानव का दिव्य जीवन की ओर आरोहण करना जहां सब कार्यों का कार्य तथा सब यज्ञों का यज्ञ है, वहां दिव्य जीवन का भूमि पर अवतरण भी अनिवार्य सिद्धि है। उनके मत में अभी तक मानव के शरीर, मन और बुद्धि का विकास हुआ है। अतिमानस के विकास से मनुष्य मन-बुद्धि के परे स्थित सत्य का साक्षात्कार कर लेगा। तब वह सत्य की ओर भागेगा नहीं, सत्य स्वयं उस पर अवतरित हो जाएगा, तब वह स्वर्ग को पुकारेगा नहीं वरन् भूमि का ही स्वर्गीकरण हो जाएगा। तब मर्त्य-अमर्त्य पद के लिए प्रार्थनाएं नहीं करेगा वरन् स्वयं अमर पद की महिमा से विभूषित हो जाएगा। उन महायोगी के चरणों में हम श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर की अनूठी श्रद्धांजलि चढ़ाते हैं—

हे अरविन्द रवीन्द्र का
नमस्कार ग्रहण करो
हे अरविन्द, रवीन्द्र नाथ,
तुम्हारे आगे नतमस्तक है

हे मित्र! हे मम् बांधव, तुम भारत की आत्मा की दिव्य स्वतंत्र वाचा हो।

सारे संसार में भारत ही एक ऐसा देश है जो अब भी इस बात के लिये सचेत है कि सृष्टि में भौतिक पदार्थ के अतिरिक्त कोई और चीज भी है। बाकी देश भूल चुके हैं। फिर वे चाहे यूरोपीय, सं. राज्य अमेरिका या दूसरा कोई भी देश क्यों न हो...। इसी कारण भारत के पास अभी तक एक ऐसा संदेश है जिसकी उसे रक्षा करनी है, जिसे जगत् को देना है। लेकिन इस समय भारत अव्यवस्था में छितरा हुआ छटपटा रहा है। विश्व की भलाई के लिए भारत की रक्षा करनी होगी, क्योंकि एकमात्र भारत ही विश्व को शान्ति और नवीन व्यवस्था प्राप्त करा सकता है।

—श्री माँ

तत्त्वद्रष्टा : योगीराज अरविन्द घोष

पन्द्रह अगस्त का ऐतिहासिक दिन हर वर्ष आता है और चला जाता है। भारतीय जनगण इस स्वातंत्र्य दिवस पर नाचते-गाते तथा आनन्दोत्सव मनाते हैं। किन्तु प्राय: हर वर्ष ही हम स्वातंत्र्य देवता का पूजन करना भूल जाते हैं। जिसका 15 अगस्त के दिन के साथ, भारत देश के साथ तथा हमारी आजादी के साथ सबसे गहरा सम्बन्ध रहा है। भोगवाद की रंग-रलियों में डूबे हुए हम प्राय: उस महायोगी का स्मरण भूल जाते हैं जिसने अपने तन, मन, प्राण, त्याग, तपस्या, योग एवं अध्यात्म शक्ति द्वारा केवल भारतीय जनगण का ही नहीं, वरन् समूची मानवता का मुक्ति मार्ग प्रशस्त किया था। खण्डित देश की खण्डित स्वाधीनता का पर्व मनाते हुए हम अमर एवं अखण्ड भारत के तत्त्वद्रष्टा योगीराज अरविन्द घोष तथा उनकी भारत के पुन: अखण्ड होने के विषय में की हुई महान् भविष्यवाणी का विस्मरण कर बैठते हैं।

योगीराज अरविन्द का जन्म 15 अगस्त, 1872 ई. को कोलकाता में हुआ। दो वर्ष तक दार्जिलिंग के ईसाई स्कूल में पढ़ने के पश्चात् अपने माता-पिता के साथ इंग्लैंड चले गए। इंग्लैंड में ग्रीक तथा लैटिन भाषा पढ़ी। 1890 में उन्होंने आई.सी.एस. की परीक्षा पास की। तत्पश्चात् स्वामी विवेकानन्द के विश्व विजय के उदाहरण से उनके हृदय की प्रसुप्त भारतीयता जाग उठी और उन्होंने अपना सारा जीवन देशसेवा के निमित्त समर्पित कर दिया।

गीतांजलि के अमर गायक श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर अरविन्दजी को अपनी श्रद्धांजलि भेंट करते हुए कहते हैं—

'आपके पास दिव्य शब्द हैं और हम इसे आपसे सुनने की प्रतीक्षा कर रहे हैं। भारत आपकी वाणी द्वारा संसार से कहेगा। मेरी बात सुनो।'

एक और स्थान पर रवीन्द्रजी श्री अरविन्दजी के चरणों में अपनी पुष्पांजलि चढ़ाते हुए कहते हैं—

'अरविन्द घोष को देखा। आत्मा की उपलब्धि इनका सत्य है। इस सत्य से इनकी सुदीर्घ तपस्या सार्थक व इनकी समग्र चेतना उद्भासित है।' श्री अरविन्द

अपने अन्दर के प्रकाश से ही जगत् को प्रकाशित करने में समर्थ होंगे। इनकी मुखकान्ति सौन्दर्यमयी शांति की उज्ज्वल आभा से ज्योतिष्मती है। जीवन को रिक्त-शुष्क समझने में जीवन की चरितार्थता नहीं है। इस सत्य को श्री अरविन्द ने अपनी सम्पूर्ण सत्ता से अनुभव किया था तभी उनका आदर्श था—

युक्तात्मानः सर्वमेवाविशन्ति।

चीनी मनीषी श्री तान-युन-शान ने इन मनोमुग्धकारी शब्दों में श्री अरविन्द के चरणों में वाक्य-पुष्पांजलि भेंट की है—

'श्री अरविन्द ने जीवन का एक ऐसा क्रियात्मक दर्शन विकसित किया है जो मनुष्य की आध्यात्मिक उपलब्धि के इतिहास में अद्वितीय है और जो अपने उद्देश्य को अर्थात् मनुष्य के आंतरिक नव जन्म को अवश्य साधित करेगा। जैसे भूतकाल में चीन को एक महान् भारतीय (भगवान् बुद्ध) ने आध्यात्मिक तौर पर जीता था वैसे ही भविष्य में उसे एक अन्य महान् भारतीय श्री अरविन्द (भारत के महान् योगी) जीतेंगे।'

इसी प्रकार से एक अन्य चीनी विद्वान् चू शियांगकांग श्री अरविन्दजी की महान्कृति 'दि लाइफ डिवाइन' के विषय में अपनी अर्चनांजलि भेंट करते हैं—

'श्री अरविन्द आज केवल एक अग्रणी एवं अत्यन्त सिद्ध विचारक ही नहीं हैं, अपितु ऐसे विचारक हैं जिन्होंने अपनी प्रधान कृति 'दि लाइफ डिवाइन' के रूप में हमें इस युग का सबसे महान् ग्रंथ प्रदान किया है।

अमरीका के भूतपूर्व राष्ट्रपति डॉ. विल्सन की पुत्री जब पाँडिचेरि में योगीराज के दर्शन के लिए आई तो उन तपोनिष्ठ महात्मा के चरणों में केवल फूलों या शब्दों की पुष्पांजलि चढ़ाने की अपेक्षा उसने सारा शेष जीवन आश्रम की सेवा में समर्पित किया। माताजी उस महान् अमरीकन महिला को स्नेह से 'निष्ठा' पुकारती थी।

दिव्य जीवन के अमर गायक, ब्रह्मदर्शी, ब्रह्मनिष्ठ, योगी श्री अरविन्द के चरणों में मेरी स्वरचित पुष्पांजलि इस प्रकार हैं—

अरविन्द-पत्र इव निर्लिप्तम् अरविन्दं योगेश्वरम्।
ब्रह्म, ब्रह्मविदं वन्दे, दिव्य-योगीश्वरं कविम्।।

पाण्डि आश्रम परमहंसं,आत्म-सङ्गीत गायकम्।
दिव्य जीवनेश्वरं वन्दे, अरविन्दं जग-वन्दितम्।।

इन महायोगी के चरणों में श्रीमती बेरन एरिक पामस्टीरना की पूजा-पुष्पांजलि भी कितनी हृदयहारी है—

यहां पश्चिम में हम यह अनुभव करने लगे हैं कि अरविन्द उन सुविख्यात व्यक्तियों में से हैं जो भारत ने संसार को प्रदान किए हैं। हमें उनमें दार्शनिक, कवि और अन्त:प्रेरित ऋषि के दर्शन होते थे जो पूर्व और पश्चिम की सीमाओं के ऊपर और आर पार सेतु निर्माण करने के लिए सर्वाधिक योग्य थे। वे पश्चिमी विचार के शिखर पर स्थित थे और साथ ही अद्वितीय कोटि के रहस्यदर्शी थे जिन्होंने दोनों जगतों को आध्यात्मिक मूल्य प्रदान किया। इस जड़वादी युग में वे ज्ञान के ज्योतिस्तम्भ की तरह देदीप्यमान थे। उन्होंने हमें जो मार्ग दिखाया उसका हमें अनुसरण करना है।'

कोटिश: वन्दित जनगण पूजित उस अलौकिक महापुरुष के चरणों में कोटिश: प्रणाम करती हुई श्री दिलीप कुमार राय के निम्नलिखित शब्दों से मैं अपनी श्रद्धांजलि भेंट करती हूं—

धरती के चिरकाल-प्रतीक्षित, अतिथि अनश्वर,
गहन दु:खों का तामस छाया के हे तमचुर।
अपने प्रबल घोष संदेश में देते हो,
शाश्वतजीवी मुक्तिधाम की उज्ज्वल आशा।।

एहिं जग जामिनि जागहिं जोगी। परमारथी प्रपंच वियोगी।।
जानिअ तबहिं जीव जग जागा। जब सब विषय बिलास बिरागा।।

मानस, 2/92/3-4

इस जगत् रूपी रात्रि में योगी लोग जागते हैं, जो परमार्थी हैं और प्रपञ्च (मायिक जगत्) से छूटे हुए हैं। जगत् में जीव को जागा हुआ तभी जानना चाहिये जब सम्पूर्ण भोग-विलासों से वैराग्य हो जाय।

योगीराज अरविन्द का आध्यात्मिक राष्ट्रवाद

अरविन्द घोष का धरती पर अवतरण सचमुच धरती माता के लिए तथा भारतमाता के लिए एक विशेष महत्त्व की घटना बन गया।

15 अगस्त, 1872 के दिन कोलकाता के भारतीय समुद्र के तटों से दूर एक जहाज में जन्म पाने वाला, पूर्णतः इंग्लैण्ड में शिक्षित होने वाला, विदेशी भाषाओं में सर्वोत्तम दक्षता प्राप्त करने वाला तथा अपनी मातृभाषा में बातचीत तक भी न कर सकने वाला यह विलक्षण बालक कभी हमारे ज्वलन्त राष्ट्रवाद एवं हमारी मृत्युंजय संस्कृति का दिव्य देवदूत बनकर विश्व भुवन में पूजित होगा, यह कौन कल्पना कर सकता था?

14 वर्ष तक इंग्लैण्ड में उच्च शिक्षा प्राप्त करके श्री अरविन्द ने आई.सी.एस. परीक्षा सम्मानपूर्वक पास की। केवल अंतिम घुड़सवारी की परीक्षा रहती थी। उनके भीतर देशभक्ति की ज्योति सहसा इतनी तीव्रता से जल उठी कि उन्होंने घुड़सवारी की परीक्षा ही छोड़ दी तथा इस प्रकार आई.सी.एस. के पद को लात मारकर भारत के लिए रवाना हुए। कोलकाता बन्दरगाह पर अपने सुपुत्र की प्रतीक्षा में खड़े अरविन्द के पिता को किसी ने गलत सूचना दे दी कि जिस जहाज में अरविन्द आ रहे थे वह तो डूब गया है। यह सुनते ही पिता का प्राणान्त हो गया। श्री अरविन्द ने पिता की लाश को देखकर तथा सम्बन्धियों के बहुत समझाने पर भी अपना देशसेवा के व्रत का निश्चय नहीं बदला।

बंग-भंग आन्दोलन में जब श्री अरविन्द को दोबारा बंदी बनाया गया तो उनकी वकालत करते हुए श्री चितरंजनदासजी ने कहा—

'न्यायालय के सामने जो व्यक्ति खड़ा है वह साधारण व्यक्ति नहीं है। उसकी मृत्यु के बहुत समय बाद उसे देशभक्ति का कवि, राष्ट्रवाद का अवतार और मानवता का पुजारी समझा जाएगा.... उसके शब्द न केवल भारत में बल्कि दूरवर्ती समुद्रों और देशों के पार ध्वनित-प्रतिध्वनित होंगे....यह व्यक्ति इस न्यायालय के सामने ही नहीं खड़ा है बल्कि इतिहास के न्यायालय के सामने खड़ा है।' उसी अलीपुर जेल में श्री अरविन्द को सब कहीं श्रीकृष्ण के दर्शन हुए।

भारतीय आत्मा के पुनर्जागरण के पुनीत कार्य में प्रवृत्त होने पर श्री अरविन्द कर्मयोग के मूर्तिमान अवतार बन गए। बड़ौदा राज्य में प्राध्यापक का कार्य करते

हुए ही उनके मन में मातृभूमि की नीरव सेवा की दृष्टि प्रज्वलित थी। वे तन मन से पूर्णतया स्वदेशी बन गए। सात्त्विक स्वदेशी वेश में वे भारती की सेवा में जुट गए।

आध्यात्मिक राष्ट्रवाद—राजनीति तथा स्वतंत्रता संग्राम को आध्यात्मिकता की भित्ति पर प्रतिष्ठित करना ही योगीराज अरविन्द की महानतम देन है। उनके विचार में स्वदेश और स्वधर्म में कोई अन्तर नहीं। उन्होंने देश भक्ति को आत्म शक्ति के साथ संश्लिष्ट करने का इतिहास-दुर्लभ उपक्रम किया। वे कहते हैं राष्ट्र की स्वतंत्रता मात्र राजनीतिक कार्यक्रम नहीं है। यह एक धर्म है जो ईश्वर-प्रदत्त है। यह एक ऐसा धर्म है जो तुम्हें जीवन में साकार करना होगा।

अपने आत्मबल से देश के हृदय में प्राण संचार करते हुए वे कहते हैं—'तुम्हें स्मरण रखना चाहिए कि तुम भगवान् के हाथ में यंत्र हो.... राष्ट्रवाद कभी नहीं मरेगा। यह ईश्वरीय शक्ति से ही जीवित रहता है तथा किसी भी भीषण शस्त्र के प्रहार से कुचला नहीं जा सकता।'

वे पुनः तत्कालीन राजनीतिज्ञों को चुनौती देकर पूछते हैं—'क्या तुम में सच्चा ईश्वर विश्वास है या केवल राजनीतिक आकांक्षा मात्र है? या क्या तुम केवल स्वतंत्र होकर दूसरों को भी वैसे ही सताना चाहते हो जैसे कि तुम सताये जा रहे हो? क्या तुमने अपने राजनीतिक पथ को किसी बड़े सूत्र से धारण किया हुआ है? क्या तुममें ईश्वर का प्राकट्य हुआ है? क्या तुमने यह जान लिया है कि ईश्वर के केवल यंत्र मात्र हो तथा तुम्हारा शरीर तुम्हारा अपना नहीं है?

..... यदि तुमने यह जान लिया है तब तुम सच्चे राष्ट्रभक्त हो। तभी तुम इस महान् राष्ट्र का पुनरुत्थान कर सकते हो। तभी तुम्हारे कार्य के ऊपर एक ईश्वरीय आशीर्वाद बरसेगा तथा यह महान् राष्ट्र एक बार फिर वैसा ही उन्नत होगा जैसा अपने आध्यात्मिक गौरव के दिनों में था।'

भारत का उत्थान—ईश्वरीय कार्य—योगीराज ने सत्य के साक्षात्कार से पूर्त हुए नेत्रों से देख लिया था कि 'इस जाति को उठाने का कार्य भगवान् का अपना कार्य (मिशन) है... जो कुछ हम कर रहे हैं उसका उद्देश्य राजनीति नहीं है, बल्कि भगवान् का एक कार्य करना है जिसके लिए हमारा आह्वान हुआ है।'

बंग-भंग आन्दोलन में वे नरकेशरी गरज उठे—ईश्वर तुम्हें स्वतंत्र होने का आदेश देता है तथा तुम्हें अवश्य स्वतंत्र होना पड़ेगा..... दुर्बलता को मत आमंत्रित करो और बहादुरी से सीना तानकर खड़े हो जाओ।

स्वदेश माता महाशक्ति दुर्गा का रूप—स्वदेश माता भगवती दैवी शक्ति का ही एक रूप है। इस सत्यानुभूति की प्रेरणा से श्री अरविन्द के लिए वन्देमातरम् का गीत जीवन का महामंत्र था। श्री अरविन्द के ओजस्वी शब्द हैं—ऐ युवको!

तुम लोगों के पूर्व पुरुषों की शिक्षा का अनुकरण करने के लिए जिस शक्ति को प्राप्त किया जाता है वह शक्ति असंभवनीय घटना को भी करने में कुशल है। वह शक्ति तुम्हारे शरीर में अवतरण करने के लिए उद्यत हो रही है। वह शक्ति ही मां है.... मातृभूमि तुम्हारे हृदय में प्रतिष्ठित हो गई है.... अब अन्तर्निहित माता को आत्म समर्पण करो। कार्यसिद्धि का कोई दूसरा पंथ नहीं।' वे दुर्गा स्तोत्र नामक पुस्तिका में लिखते हैं—'माता दुर्गे! हमारे शरीर में योगबल द्वारा प्रवेश कर। हम होंगे तेरे यंत्र, तेरी अशुभ विनाशी तलवार-राशि, तेरे अज्ञान-विनाशी प्रदीप। हे माता! भारत के युवकों की इस आशा को पूर्ण कर। यंत्री बन कर यंत्र चला, अशुभ हंत्री होकर तलवार घुमा, ज्ञान दीप्त प्रकाशिनी होकर हाथ में प्रदीप ले प्रकाशमान हो। वे पुनः महाशक्ति को पुकारते हैं, वीर मार्ग प्रदर्शिनी आ! अब हम तेरा विसर्जन नहीं करेंगे। हमारा सारा जीवन ही अविच्छिन्न दुर्गा पूजा हो, हमारे समस्त कार्य अविरत-पवित्र, प्रेममय, शक्तिमय, मातृ सेवाव्रत से युक्त हों। यही प्रार्थना है। हे माता! तू भारत में आविर्भूत हो, प्रकाशमान हो।

श्री अरविन्द राष्ट्रसेवा के लिए तप और त्याग को अनिवार्य समझते थे। इसलिए उन्होंने स्वयं भी अपने आप को इसी महायज्ञ में झोंक दिया तथा असंख्यों को राष्ट्र के लिए सर्वस्व समर्पित करने की अमर प्रेरणा दी। श्री अरविन्द की अमर वाणी है—'हमारा उद्देश्य, हमारा दावा यह है कि हम एक राष्ट्र के रूप में विनष्ट नहीं होंगे, बल्कि जीवित रहेंगे और इसके लिए लोगों को हर प्रकार के कष्ट सहने के लिए तैयार रहना चाहिए। कारण, कष्ट सहन के बिना कोई प्रगति नहीं हो सकती।'

क्रान्ति का शंखनाद—श्री अरविन्द उन दिनों की कांग्रेस की ढुलमुल नीति तथा भिक्षा मांगने की वृत्ति के कट्टर विरोधी थे। वे स्वातंत्र्य प्राप्ति के लिए देश में एक महाविपल्व का सूत्रपात करना चाहते थे। उनकी नसों में गीता का ओजस्वी धर्मयुद्ध का संदेश गूंज रहा था। उन्होंने एक निर्भीक लेखमाला लिखकर कांग्रेस की नीति की अच्छी खबर ली। वे गर्मदल के नेता बन गए तथा विपिनचन्द्र पाल, बालगंगाधर तिलक, लाला लाजपतराय, चितरंजनदास, अश्विनी कुमार दत्त तथा रवीन्द्रनाथ ठाकुर प्रभृति राष्ट्र नेताओं के लिए भी प्राण-प्रेरक बन गए।

अखण्ड भारत के तत्त्वद्रष्टा—योगीराज अरविन्द घोष अखण्ड भारत के दिव्य तत्त्वद्रष्टा के रूप में सदा सर्वदा पूजित होते रहेंगे। 15 अगस्त, 1947 के दिन भारत विभाजन की दुर्भाग्यपूर्ण वेला में उन्होंने देशभर को आशा एवं उत्साह का मार्ग दिखाते हुए कहा था—देश निश्चय ही पुनः अखण्ड होकर रहेगा। विश्व की कोई शक्ति इसको सदा के लिए ऐसे कटा-बंटा हुआ नहीं रख सकती। इसमें ईश्वरीय आदेश एवं ईश्वरीय उद्देश्य निहित है।

योगीराज अरविन्द का शिक्षा-दर्शन

'मेरी भारत यात्रा में जो मुझे सबसे अधिक आनन्ददायक अनुभव प्राप्त हुआ वह था योगीराज अरविन्द के नेत्रों का दर्शन। वे तेजस्वी ज्योतिष्मान नेत्र 'एक्स-रे' उपचार के समान कार्य करते हैं तथा हमारे अन्तर के कलुष को भस्म कर हमारा हृदय परिवर्तन कर देते हैं। चाहे आपकी इच्छा हो अथवा न हो, चाहे आप उसे सहन कर सकते हों अथवा नहीं। यदि मेरे पास कुछ भी धन हो तो मैं उसे श्री अरविन्दजी के भावी जीवन के लिए उत्सर्ग कर दूं।'

इन शब्दों में कैलिफोर्निया यूनिवर्सिटी के प्राच्य विद्या विभाग के अध्यक्ष डॉक्टर स्पीगल बर्ग ने कुछ वर्ष पूर्व योगीराज अरविन्द के जीवन काल में, ऑल इंडिया रेडियो पर भाषण करते हुए उन महान् विभूति को श्रद्धांजलि समर्पित की जिनके पावन जन्म दिवस से सम्बन्धित होने के कारण 15 अगस्त का हमारा स्वाधीनता-पर्व भी गौरवान्वित हो उठा है। पाँडिचेरि में उन महामनीषी के दर्शन कर विश्वकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर गीत के माध्यम से नृत्य करने लगे—

अरविन्द, रवीन्द्रेर लहौ नमस्कार,
हे बन्धु, हे देशबन्धु, स्वदेश-आत्मार।
वाणी मूर्ति तुमि! लोम लागि नहेमान।।

अर्थात्—हे अरविंद! रवीन्द्रनाथ का नमस्कार स्वीकार करो। हे बन्धु, हे मेरे देशबन्धु, हे स्वदेश की वाणी की साकार स्वतंत्र आत्मा। तुम्हें मान-अभिमान का भाव छू तक नहीं गया...।'

कविगुरु पुनः कहते हैं, 'श्री अरविन्द को देखा, आत्मा की उपलब्धि इनका सत्य है। श्री अरविन्द अपने अन्तर प्रकाश से ही जगत् को प्रकाशित करने में समर्थ हैं।.... मैं आते समय उनको कह आया, 'आत्मा की चरम और परम वाणी आप हम सबको सुनाएंगे, इसी प्रतीक्षा में मैं रहूंगा। इस वाणी में ध्वनित होगी भारत की शाश्वत वाणी।'

फ्रांस के लब्धप्रतिष्ठ-साहित्यकार श्री रोम्या रोलां कहते हैं—'श्री अरविन्द एशिया की प्रतिभा तथा यूरोप की प्रतिभा का ऐसा पूर्णतम समन्वय है जो कि अब तक उपलब्ध हो सका है।'

योगीराज अरविन्द ने राष्ट्रीय रंगमंच पर देश की स्वाधीनता के लिए जो त्रिसूत्री कार्यक्रम रखा उसमें सरकार का बहिष्कार, स्वदेशी तथा राष्ट्रीय शिक्षा यह तीन विधायक पग थे। प्रारंभ में अरविन्द ने स्वयं बड़ौदा कालेज के अध्यापक के रूप में शिक्षा सेवा प्रारम्भ की तथा बाद में वे प्रिंसिपल के पद तक पहुंचे। किन्तु राजनीतिक संन्यास लेने के बाद भी जब वे पाँडिचेरि आश्रम में एकान्तसेवी-योगी के रूप में रहने लगे तब भी शिक्षा की महत्ता को विचारते हुए उन्होंने वहां आश्रम में भी एक आदर्श शिक्षा-पद्धति का विकास किया। वह पद्धति भारत की प्राचीन आदर्शवादी शिक्षा पद्धति (Idealist View of Education) का ही नया युगानुकूल स्वरूप है।

शिक्षा का उद्देश्य—श्री अरविन्द के शब्दों में, 'वही सच्ची और जीवंत शिक्षा पद्धति होगी जो व्यक्ति के भीतर जो कुछ गुम्फित है उसे पूर्णरूप से प्रकट करने में तथा उसे मानव जीवन के पूर्ण उद्देश्य के लिए प्रयोग कर सकने में सहायता दे। साथ ही वह उसे जीवन के साथ, उस जाति के मन तथा आत्मा के साथ जिसमें कि उसने जन्म लिया है, विश्वव्यापी जीवन के साथ तथा समूची मानवता के मन तथा आत्मा के साथ सच्चे सम्बन्ध में प्रविष्ट करा सके ताकि वह उसका एक स्वतंत्र किन्तु अभिन्न अंग बन सके।'

राष्ट्रीय शिक्षा—'एक सच्ची राष्ट्रीय शिक्षा का उद्देश्य यह तो निश्चय ही नहीं है कि आधुनिक सत्य एवं ज्ञान की उपेक्षा की जाय वरन् यह कि सारे ज्ञान-विज्ञान की नींव हम अपने अस्तित्व में, अपने मन तथा अपनी (राष्ट्रीय) आत्मा में प्रस्थापित करें।'

गुरु पथ-प्रदर्शक हो—अरविन्दजी के अनुसार, 'शिक्षा का प्रथम सिद्धान्त यह है कि....गुरु, शिक्षक या काम लेने वाला मास्टर नहीं है, वह केवल सहायक तथा पथ-प्रदर्शक है। उसका कार्य सुझाव देना है न कि आदेश देना। वह वास्तव में शिष्य के मन को शिक्षण (ट्रेनिंग) नहीं देता, वह केवल उसे समझाता है कि वह किस प्रकार अपने ज्ञान के साधनों का परिष्कार करे और उसे उस कार्य में सहायता तथा प्रोत्साहन देता है। वह उसे ज्ञान देता नहीं, वरन् उसे सिखाता है कि वह किस प्रकार अपने लिए ज्ञान का स्वयं सम्पादन कर सकेगा। शिक्षक शिष्य के भीतर के ज्ञान को आह्वान करके बाहर प्रकट नहीं करता। वरन् वह कहां छिपा पड़ा हुआ है और वह किस प्रकार प्राय: ऊपरी धरातल पर लाया जा सकता है उसे इसका बोध कराता है।'

ज्ञान में स्वावलम्बन—विचार और झांकियों में श्री अरविन्द कहते हैं—'मनुष्यों की सहायता करो, पर उन्हें उनकी शक्ति से वंचित मत कर दो। मनुष्यों का पथ-प्रदर्शन करो और उन्हें शिक्षित करो लेकिन ध्यान रखो कि उनकी उपक्रम

शक्ति और उनकी मौलिकता अक्षुण्ण बनी रहे....जो यह सब कर सकता है वही नेता और गुरु है।'

शिक्षा का मनोवैज्ञानिक आधार—'शिक्षा का दूसरा सिद्धान्त है कि मन के विकास में स्वयं मन से ही परामर्श किया जाए। माता-पिता या शिक्षक की इच्छा के अनुसार बालक को किसी विशेष रूप में ढालने का विचार बर्बर तथा अज्ञानपूर्ण अन्धविश्वास है। उसे स्वयं अपनी प्रकृति के अनुरूप ही विकास करने की प्रेरणा देनी चाहिए। किसी माता-पिता के लिए पहले से ही यह निश्चय करना कि उसका बालक विशेष प्रकार के गुणों, योग्यताओं, विचारों तथा सदाचारों को प्राप्त करेगा या उसे किसी पूर्व निश्चित व्यवसाय के लिए तैयार करना, सबसे बड़ी भूल है। प्रकृति को अपने स्वाभाविक धर्म को त्यागने के लिए बाध्य करना तो बालक को एक स्थायी हानि पहुंचाना है, उसके विकास को कुंठित करना तथा उसकी पूर्णता को विकृत करना है। यह एक मानवीय आत्मा के प्रति स्वार्थपूर्ण अत्याचार है तथा जाति के शरीर में एक जख्म है.... शिक्षा का मुख्य उद्देश्य होना चाहिए विकासशील आत्मा को अपने भीतर के श्रेष्ठतम तत्त्वों को प्रकट करने में सहायता देना तथा उसे किसी महत्कार्य के लिए पूर्ण बनाना।'

यथार्थ से आदर्श की ओर—योगीराज अरविन्द के अपने शब्दों में 'शिक्षा का तृतीय उद्देश्य है वर्तमान से भविष्य की ओर गति, यथार्थ से आदर्श की ओर प्रगति। वे पुनः कहते हैं कि मानव की प्रकृति बनाने में उसकी अपनी निजी आत्मा के पिछले संस्कार, उसकी वंश परम्परा, उसका वातावरण, उसकी राष्ट्रीयता, देश, धरती, वायुमण्डल, दृश्य, ध्वनियां, स्वभाव इत्यादि सबका हाथ होता है। वे मानव को बड़ी प्रबल रीति से ढालते हैं तथा हमें उसी से प्रारम्भ करना चाहिए।'

.... यदि कोई वस्तु बाहर से लाई जाए तो वह केवल भेंट की जाए, बालक के मन पर ठूँसी न जाए। एक स्वतंत्र तथा स्वाभाविक विकास ही सच्ची प्रगति की शर्त है।.... हमारा भूतकाल हमारा आधार है। वर्तमान हमारे प्रयोग की कच्ची धान है तथा भविष्य हमारा उद्दिष्ट शिखर है। राष्ट्रीय शिक्षा पद्धति में प्रत्येक को अपना उचित और स्वाभाविक स्थान प्राप्त होना चाहिए।'

पुस्तकों द्वारा धर्म की शिक्षा नहीं—श्री अरविन्द के मौलिक विचार हैं—नैतिक और धार्मिक पाठ्य पुस्तकों की शिक्षा के द्वारा बच्चों को नैतिक और धार्मिक बनाने का प्रयत्न करना निरर्थक और भ्रमपूर्ण है और इसका कारण यह है कि हृदय मन नहीं है और मन शिक्षित करने से हृदय का सुधरना आवश्यक नहीं।

नैतिक शिक्षा का मार्ग—'मनुष्य के लिए अपने आपको नैतिक रूप से शिक्षित करने का एकमात्र तरीका यह है कि वह यथार्थ भावों, श्रेष्ठ संस्कारों तथा

सर्वोत्तम मानवीय भावनाओं और शारीरिक आवश्यकता का अभ्यास डाले और साथ ही भूतकाल के आवेगों की यथार्थ क्रिया को अपने मूल स्वभाव का अंग बनाये।

व्यक्तिगत आदर्श से नैतिक प्रेरणा—'नैतिक शिक्षण का प्रथम नियम है सुझाव और प्रेरणा देना न कि आज्ञा देना या दबाव डालना। सुझाव देने का सर्वोत्तम साधन है व्यक्तिगत दृष्टान्त, दैनिक वार्तालाप और प्रतिदिन पुस्तकों का पढ़ा जाना। इन पुस्तकों में अल्पवय छात्रों के लिए अतीत के ऊंचे दृष्टान्त होने चाहिए जो नैतिक शिक्षाओं के रूप में नहीं वरन् मनुष्य के लिए अत्यन्त उपयोगी बातों के रूप में दिए जावें। इसी प्रकार कालेज विद्यार्थी के लिए इन पुस्तकों में महान् आत्माओं के महान् विचार तथा साहित्य के ऐसे प्रकरण होने चाहिएं जो उच्चतम भावों को उद्दीप्त करे और सर्वोच्च आदर्शों एवं अभीप्साओं को प्रोत्साहित करे। इतिहास और जीवन चरित के ऐसे कथानक होने चाहिए जो उन महान् विचारों, उत्कृष्ट भावों और अभीप्साशाली आदर्शों को चरितार्थ करने का दृष्टांत उपस्थित करे।

शिक्षा में शारीरिक क्रीड़ाओं का स्थान—पांडिचेरि आश्रम में शिक्षा में शारीरिक क्रीड़ाओं को भी महत्त्वपूर्ण स्थान दिया गया है। शारीरिक स्वस्थता भी पूर्णता के विकास के लिए आवश्यक है। अरविन्द आश्रम में प्रतिदिन प्रातः-सायं व्यायाम होता है, योगासन कराए जाते हैं। खेल होते हैं तथा मानसिक विकास के लिए प्रतिदिन आत्म चिन्तन का अभ्यास भी कराया जाता है। इस प्रकार शरीर, मन, बुद्धि के समुचित विकास से आत्मा की कोंपल खिल उठती है और उसकी सुगन्धि से मानवता की फुलवारी सुवासित हो जाती है। श्री अरविन्द संसार में रहते हुए भी संसार में न रहने वाले एक अभूतपूर्व संत थे जिनकी दिव्य प्रज्ञा से त्रिभुवन सुवासित हो उठा।

विनोबा भावे कहते हैं कि अंग्रेजी की पढ़ाई-लिखाई के कारण हमारे देश की जनता राहु और केतु के रूप में विभक्त हो गई है। आज जो हमारे शासक और विचार निर्माता हैं उनकी शिक्षा-दीक्षा अंग्रेजी के माध्यम से होती है, वे अंग्रेजी में ही सोचते हैं और विदेशी विचार ही उनके लिए आदर्श हैं। वे राहु की तरह केवल सिर ही सिर हैं, भारत के धड़ से भारत की सामान्य जनता से उनका सम्बन्ध कट गया है। भारतीय जनता की भावना, मान्यता और मूल्य चेतना उनके लिए न सम्मान्य है, न ही महत्त्वपूर्ण।

—विनोबा भावे

महायोगी अरविन्द और महाकवि रवीन्द्रनाथ

पाँडिचेरि के परमहंस, भारतीय मनीषा के मणिमुकुट, ब्रह्मानन्द मूर्ति योगीराज अरविन्द घोष के चरणों में कविवर रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने जो अनेकानेक श्रद्धांजलियां समर्पित की उनमें से भारत एवं भारतात्मा अरविन्द दोनों के अविनश्वर यश का अमर तराना कितना हृदयहारी है—

एकदा ए भारतेर को न वनता
के तुमी महान् प्राण, कि आनन्द बले,
उच्चारि उठिले उच्च सुनो विश्वजन;
सुन अमृतेर पुत्र जतो देवगरा
दिव्य धाम वासी, आमि जेने छि तांहारे,
महान् पुरुष जिनी आंधारेर पारे
ज्योतिर्मय; तारेजेने, तार पाने चाही
मृत्युरे लंघिते पार, अन्य पथ नाहीं।
आर वार ए भारते के दिवेगो आनी
से महा आनन्दमय, से उदात्त वाणी।
संजीवनी, स्वर्गे मर्त्ये सेई मृत्युंजय।
परम घोषणा सेई एकान्त निर्भय
अनन्त अमृत वानी! रे मृत भारत।
सुधु सेई एक आछे नाहीं अन्य पथ!'

अर्थात्—हे महामनीषी! कौन हो तुम जो एक बार भारत के किसी महारण्य की छाया में किस महानन्द के उच्च श्वास में बोले थे हे विश्वजनो, हे अमृत पुत्रो, दिव्यधाम के वासी देवो, तुम सब मिल कर के सुन लो उस महापुरुष को हमने निश्चय जान लिया, जो अन्धकार से पूर्ण मुक्त है, परम ज्योति उस ज्योति पुरुष को जान, उसी की प्राप्ति से मृत्यु से होंगे पार, अन्य है नहीं मार्ग।

वह महानन्द की जीवन मृत्यु विजय
वाणी वह स्वर्ग मर्त्य के बीच महामृत्युं-

जय वह संजीवन वह चिर अनन्त निर्भय स्वर वार्ता।
हे महाऋषि! अब कौन सुनावे तुझे छोड़
हे मृत भारत तेरे हित न अब अन्य पन्थ।।

सचमुच, योगीराज अरविन्द घोष आधुनिक काल में भारत की प्राचीन गौरव गरिमा के मूर्तिमन्त अवतार थे। वे उन ब्रह्मवर्चस ऋषि-मुनियों की महान् परम्परा के एक ज्योतिष्मान उत्तराधिकारी थे जिनका कार्य जीवन के परम लक्ष्य से भ्रष्ट हुई दुर्बल मानवता को पुन: सत्यं एवं ऋतं के आलोकपथ पर चलाना था। सचमुच उसी आलोकपथ के अनुसरण के सिवा भारत की मुक्ति का कोई अन्य पथ नहीं है। विश्वविजेता स्वामी विवेकानन्द ने भी इसी चिरन्तन सत्य का उद्घोष करते हुए कहा है, 'जब तक भारत उस परम पुरुष परमेश्वर की खोज में लगा रहेगा तब तक यह अमर रहेगा, इसका कोई नाश नहीं कर सकता।'

महान् वंशलता के तेजस्वी फूल—कवीन्द्र रवीन्द्र तथा योगीराज अरविन्द घोष, दोनों बंगभूमि की अमर सन्तान थे। रवीन्द्र कोलकाता के प्रसिद्ध ठाकुर परिवार के कुलदीपक थे। उनके पितामह श्री द्वारकानाथ ठाकुर लक्ष्मी की अपार कृपा के कारण राजा कहलाते थे। परिवार पर सरस्वती की कृपा भी कम न थी। राजा द्वारकानाथ ठाकुर का समूचा जीवन एक दिन सहसा ईशावास्योपनिषद् के प्रथम मंत्र के साक्षात्कार से ही पलट गया तथा अध्यात्म की पावन देहली पर अपना सर्वस्व चढ़ा दिया। और उसकी छाप पड़ी उनके पुत्र देवेन्द्रनाथ ठाकुर पर। वे जगती तल में महर्षि देवेन्द्रनाथ ठाकुर बन कर पूजित हुए। उसी महर्षि के गृह में 8 मई, 1861 के दिन उस विलक्षण बालक का जन्म हुआ जिसके कारण केवल कोलकाता के ठाकुर परिवार की ही नहीं, वरन् स्वयं भारत माता की यश:कीर्ति सारे विश्व में फैल गई। उसी कोलकाता महानगरी के समुद्रतट से कुछ मील दूर विलायत से भारत आने वाले एक जलपोत में 15 अगस्त, 1872 के दिन प्रात: 5 बजे डा. कृष्णधन घोष के परिवार में वह दिव्य बालक अवतीर्ण हुआ जिसे विश्व ने युग का महानतम योगी, दिव्य जीवन का अमर गायक, पाँडिचेरि के परमहंस योगीराज अरविन्द घोष के रूप में पहचाना। यह दोनों महान् विभूतियां अरविन्द और रवीन्द्र क्रमश: अठहत्तर तथा अस्सी वर्ष के लिए भारत के सांस्कृतिक उपवन में अपनी दिव्य प्रज्ञा का प्रकाश बिखेर कर अन्तर्धान हो गई। श्री अरविन्द रवीन्द्रनाथ से 11 वर्ष पश्चात् इस जगती तल में आए तथा 1941 में रवीन्द्रनाथ के महामौन से 9 वर्ष पश्चात् 1950 में वे भी परम ज्योति में विलीन हो गए। जीवन में 69 वर्षों के लिए यह दोनों महापुरुष एक-दूसरे के सम-सामयिक रहे तथा भारत के सांस्कृतिक जागरण के दो अमर दीपस्तम्भ बन कर आलोकदान करते रहे।

विदेशी शिक्षा के प्रति विद्रोह—कोमल मन वाले बालकों पर प्रारम्भ से ही विदेशी शिक्षा के संस्कार डालना एक भीषण अत्याचार है। रवीन्द्रनाथ को भी बाल्यावस्था में इस अत्याचार का शिकार होना पड़ा। बालक रवीन्द्र का बाल मन विद्रोही हो उठा तथा स्कूल जाने से जी चुराते। इन्हें ओरियंटल मिशनरी स्कूल में भेजा गया पर यहां तो बच्चों से अंग्रेजी में गाना गवाया जाता, थ्योरियां रटाई जातीं। रवीन्द्र को यह बिल्कुल न भाता। अतः वे स्कूल जाते समय किसी उपवन में बैठ समय बिताकर घर लौट आते। कई बार तो केवल इस कारण बीमार हो जाते कि बीमार होने के कारण उन्हें स्कूल से मुक्ति मिलेगी। वे कैनवस के जूते पानी में भिगोकर पड़े रहते। एक अन्य स्कूल में रवीन्द्रनाथ को लैटिन की शिक्षा के लिए भेजा गया पर वहां पर वर्ष के शुरू से अन्त तक उनकी पुस्तक एवं लैटिन की कापी इतनी सफेद रही जितना विधवा के सिर का दुपट्टा। आठवीं कक्षा में ही यह बालक उस शिक्षा पद्धति से विमुख हो उठा, तत्पश्चात् जीवनभर पाठशाला का मुंह न देखा।

श्री अरविन्द की भी समग्र शिक्षा पूर्णतया विदेशी वातावरण में हुई। उनके पिता डा. कृष्णधन पूर्णतया पाश्चात्य सभ्यता से प्रभावित थे। वे तो इतना भी चाहते थे कि भारत बदलकर ब्रिटेन का नमूना बन जाए। शैशव में ही बालक को स्वदेशी प्रभाव से बचाने हेतु उन्होंने उसे दार्जिलिंग के एक ईसाई स्कूल में भर्ती करवा दिया। वहां अरविंद तथा उसके भाई को छोड़कर अन्य सब बालक अंग्रेज परिवारों के थे। 7 वर्ष के कोमल बालक को इंग्लैंड ले जाया गया ताकि उसे भारतीय संस्कृति प्रभावित न कर सके। मानचेस्टर में उन्होंने लातीनी भाषा पढ़ी तथा लंदन में ग्रीक भाषा पढ़ी। सन् 1889 में वे छात्रवृत्ति पाकर कैम्ब्रिज में गए तथा वहां ग्रीक तथा लातीनी भाषाओं में कैम्ब्रिज के इतिहास में उच्चतम अंक प्राप्त करके ग्रीस तथा लातीनी (रोम) देश के विद्यार्थियों से भी श्रेष्ठ निकले तथा सदा पारितोषिक प्राप्त किया। वे पिता की इच्छा के अनुसार आई.सी.एस. में गौरवपूर्ण सफलता प्राप्त कर उत्तीर्ण हुए किन्तु सन् 1893 में स्वामी विवेकानन्द की आध्यात्मिक विश्व विजय से उनके अन्तर में देशभक्ति की अग्नि इतनी प्रज्वलित हो उठी कि आई.सी.एस. को लात मारकर वे मातृभूमि की देहली पर आ विराजे तथा देशसेवा में अपना सर्वस्व लगा दिया।

मातृभूमि का अनन्त प्रेम—कविगुरु रवीन्द्रनाथ के हृदय में मातृभूमि के लिए अगाध प्रेम, असीमित श्रद्धा एवं अनन्य भक्ति थी। वे भारत में पुनर्जन्म की आकांक्षा करते हुए कहते हैं—'मैं भारत में ही पुनः-पुनः जन्म लूंगा। समस्त दारिद्र्य, दुःख एवं दैन्य के बावजूद भी मैं भारत से ही सर्वाधिक प्यार करता हूं।' एक अन्य स्थान पर वे अपने हृदय की समस्त भावनाओं को मातृभूमि के चरणों में चढ़ाते हुए भावविभोर हो कह उठते हैं—'मेरे हृदय को सुगन्धि का श्रेष्ठ उपहार

भारतमाता के अपने ही फूलों से प्राप्त हुआ है तथा मैं नहीं जानता कि संसारभर में अन्यत्र कहां चन्द्रमा इतने माधुर्य के साथ चमकता है जो मेरे सम्पूर्ण व्यक्तित्व को इतने मीठे सौन्दर्य से आप्लावित कर सके। मेरे नेत्रों को प्रथम प्रकाश इसी देश के अन्तरिक्ष से प्राप्त हुआ तथा मेरी यही आकांक्षा है कि इन नेत्रों के चिर निद्रा में मुंद जाने से पूर्व भी इसी धरती का दिव्य प्रकाश इनका चुम्बन कर ले।

योगीराज अरविन्द घोष के हृदय में भी मातृभूमि के प्रति अथाह श्रद्धा भक्ति का सागर हिलोरें लेता था। उनके भीतर देशभक्ति की ज्योति इंग्लैंड में एक प्रखर ज्वाला के रूप में इतनी तीव्रता से प्रकाशित हुई कि विदेशी सरकार द्वारा प्राप्त आई.सी.एस. के पद को लात मारकर स्वदेश लौट आए। वे हमारे क्रांतिकारी आध्यात्मिक राष्ट्रवाद के प्राणप्रेरक एवं दिव्य देवदूत बन गए। वे कहा करते थे—देशभक्ति एक अवतार है जिसका कोई हनन नहीं कर सकता। देशभक्ति को उन्होंने आध्यात्मिकता की भित्ति पर प्रतिष्ठित किया तथा देशसेवा के महान् कार्य में विश्वाधार ईश्वर की ही महान् प्रेरणा का साक्षात्कार किया। वन्दे मातरम्, कर्मयोगिन, तथा धर्म नाम के पत्र प्रारम्भ करके उन्होंने देशभक्ति की ज्वाला को सारे देश में सुलगा दिया था। देव अरविन्द ने भारतमाता का साक्षात् महाशक्ति दुर्गा के रूप में साक्षात्कार किया था।

काव्यानन्द तथा ब्रह्मानन्द—दोनों काव्यानन्द एवं ब्रह्मानन्द की सुन्दर समन्वय मूर्ति थे। दोनों ही उच्च कोटि के कवि थे। कवीन्द्र रवीन्द्र के गान गीतांजलि के माध्यम से विश्वप्रसिद्ध हो गए हैं—

जगते आनन्द यज्ञे आमार निमंत्रण।
धन्य हल धन्य हल मानव जीवन।

अर्थात् जगती के आनन्द यज्ञ में अपना आज निमंत्रण पाकर धन्य-धन्य हो उठा है मेरा मानव का यह सुन्दर जीवन।

अपनी मृत्युंजय नामक कविता में रवीन्द्र मृत्यु को चुनौती देते हैं—

जत बड़ो हओ तुमि तो मृत्यु चेये बड़ो नओ।
'आमि मृत्यु चेये बड़ों' एइ शेष कथा बोले,
जाब आमि चले।

अर्थात् हे काल! तुम कितने बड़े हो, नहीं बड़े मृत्यु से कदापि, मैं तो मृत्यु से भी बड़ा हूं, यही कथना करके बस अन्तिम मैं मृत्युंजय गमन कर रहा।

ब्रह्मानन्द के रस के मतवाले हुए कवीन्द्र गाते हैं—

इस ज्योति समुद्र में जो शतदल कमल है,
उसका मकरंद पी कर मैं धन्य हो उठा।

योगीराज भी आंग्ल भाषा के एक महान् कवि थे। उनका महाकाव्य 'सावित्री' युग का महानतम काव्य माना जाता है। मृत्यु देवता को चुनौती देती हुई जागृत मानवात्मा की प्रतीक सावित्री गाती है—

किंतु नर की ओर से यम को कहा सावित्री ने—

प्रेम मेरा सत्य है तो, ज्ञान भी पा लूंगी मैं,
प्रेम मेरा जानता वह सत्य जो जग में छिपा,
जानती मैं, ज्ञान है इक विश्व आलिंगन क्रिया
जानती मैं जीव सारे मेरे ही सब रूप हैं
प्रति हृदय में छिपा बैठा एक देव अनूप है।
जानती मैं कि परात्पर पुरुष जग को पालता
गुप्त बैठा पुरी में वह शांत अक्षर देवता।
मैं उसी की मर्म वाणी क्रिया ज्वाला जानती
विश्व व्यापी सत्य की वाणी के स्वर पहचानती
तथ्य यह मैं जानती जन्म में मेरे उगे सब सूर्य,
यह मैं मानती। जो हमारे अंतरालों में छिपा प्रेमी बना
मरण का आवरण बस उस देवता पर है चढ़ा।
जानती मैं यह कि मानव जन्म है उस योग में,
जहां मन और हृदय शक्ति से वह तुझ को जीत ले।।

दया करो पर ममता तजकर
सेवा करो तजकर अहसान
प्रेम करो पर मोह त्याग कर
भक्ति करो तजकर अभिमान
धन भोगो स्वामित्व त्याग कर
जग भोगो जगपति का जान
तन मन धन सब दान प्रभु का
क्षुद्र अहं तज हो भगवान।।

—डॉ. ओबराय

जड़-चेतन की जीवन्त लीला के द्रष्टा : ऋषिकल्प आचार्य जगदीशचन्द्र बसु

'अन्यान्य मेरे से अधिक योग्य विद्वान् आपको विज्ञान की एक अलौकिक प्रतिभा मानेंगे, किंतु मैं आपका एक दृष्टवान ऋषि के रूप में अभिनन्दन करता हूँ जिस ने अपनी काव्यमयी अन्तर्दृष्टि से प्रकृति के अन्तराल में वल्कल तथा पाषाण के आवरणों के भीतर भी प्रवेश पा लिया है। जहाँ कि प्रकृति के जीवन की धड़कनें गुम्फित पड़ी हैं। जैसे जंगल में अजगरों का विजेता सीजफ्रीड (जर्मनी के महाकाव्य का एक नायक) पक्षियों की भाषा का भेद जान लेता है वैसे ही तुमने पौधों और पाषाणों के महामौन से उनके रहस्य की कुंचिका प्राप्त कर ली है और आपने हमें उन के अनवरत चल रहे आत्म संभाषण को कर्णगोचर करा दिया है, आत्मा के उस अजस्र एवं शाश्वत प्रवाह के दर्शन करा दिये हैं जो सब जीवों के भीतर अबाध गति से बह रहा है। तुच्छतम से लेकर महानतम तक, आपने विश्व जीवन का वह आनन्दप्रद एवं करुण संगीत सुना दिया है जिस की लय हर्ष एवं विषाद की ऊर्मियों में झूल रही है।' इन शब्दों में महापुरुषों के पारखी प्रसिद्ध फ्रांसीसी साहित्यमनीषी, नोबल पुरस्कार विजेता रोमां रोलां ने पुण्यश्लोक आचार्य जगदीशचन्द्र बसु को आज से लगभग 31 वर्ष पूर्व आचार्य बसु के 70वें जन्मदिवस पर उन्हें श्रद्धांजलि अर्पित की।

विश्वगुरु भारत ने इतिहास के उषाकाल में सारे विश्व को जो अनन्त ज्ञान का भण्डार दिया उसमें सभी विज्ञानों एवं कलाओं का अद्‌भुत समन्वय था। समय के कुचक्र में पड़ कर भारत अपने पूर्व पुरुषों के ज्ञान एवं विज्ञान को भूल बैठा।

आधुनिक काल में जिस विज्ञान का उदय पश्चिम से हुआ वह विज्ञान स्वयं अपने मूल स्रोत ज्ञान के लिए ही अभिशाप सिद्ध हुआ। विज्ञान ने सच्चे अर्थों में मानव के ज्ञानचक्षु खोलने की अपेक्षा मानव को अपने नास्तिकवाद तथा मायावाद की चकाचौंध से अन्धा कर दिया है। इसी कारण विज्ञान मानवता के लिए वरदान बनने के स्थान पर अभिशाप बन गया है। ऐसे समय में भारतमाता की गोदी से ऐसा पुत्ररत्न उत्पन्न हुआ जिसने भारत के ऋषियों के समान ही पुनः विज्ञान को ज्ञान

के दिव्य चक्षुओं से देखा। आधुनिक काल भारतमाता के सौभाग्य का पुनरोदय काल कहा जाता है। नवयुग के इस वसन्तागम के साथ ही साहित्य, संस्कृति, धर्म एवं राजनीति की क्यारियों में जहाँ अद्भुत प्रसून खिले वहाँ विज्ञान की डाली भी ऐसे सुभग सुमनों से सुशोभित हुई, जिसकी सुरभि से सारा विज्ञान जगत सुवासित हो उठा। भारत के वैज्ञानिकों की दीप्तिमान नक्षत्र मंडली में परम तेजस्वी सूर्य के समान चमकने वाले डॉ. जगदीशचन्द्र बसु हैं।

अद्भुत चमत्कार

बसु महोदय ने अपना प्रारम्भिक अनुसंधान कार्य फोटोग्राफी तथा ध्वनि रिकार्ड से प्रारम्भ किया। ध्वनि तरंगों के आविष्कार द्वारा उन्होंने ही सर्वप्रथम संसार को रेडियो की कल्पना प्रदान की थी। मारकोनी ने उनके पश्चात् ही इस विषय में खोजें की थीं। किन्तु क्योंकि बसु पराधीन भारत के नागरिक थे इसीलिए उन्हें रेडियो के आविष्कारक का सम्मान नहीं मिल सका।

जड़ वस्तुओं में चैतन्य तत्त्व

विज्ञानाचार्य जगदीशचन्द्र बसु ने अपने प्रयोगों में देखा कि धातुओं के परमाणुओं पर भी अधिक दबाव पड़ने पर उन में भी 'थकावट' आ जाती है और उन्हें फिर उत्तेजित करने पर वह थकावट दूर हो जाती है। बहुत छानबीन करने पर वे इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि सभी पदार्थों में एक ही जीवन प्रवाहित हो रहा है। उन्होंने प्रत्यक्ष दिखाया कि धातु और जड़ पदार्थ भी थकते हैं, चंचल होते हैं, विष से मुरझाते हैं, मर जाते हैं और नशे में मस्त हो जाते हैं। अन्त में भारतीय ऋषि के सनातन सिद्धान्त को पुनः प्रस्थापित करते हुए उन्होंने घोषित किया कि अचेतन में भी सुप्त जीवन है तथा भौतिक संसार और प्राणी संसार के बीच में खाई नहीं है। वही आत्मा पत्थर में सोई हुई है, पेड़-पौधों में स्वप्न ले रही है, पशुओं में ऊंघ रही है तथा मानव में जागृत हो उठी है।

विदेशों में चमत्कार प्रदर्शन

बसु महोदय 1897 में इंग्लैण्ड बुलाए गए। वहाँ आपने ध्वनि तरंगों तथा वनस्पतियों के जीवन पर भाषण दिए। जब वे पेरिस पहुँचे तो स्वामी विवेकानन्दजी ने लिखा—'यहाँ पेरिस में प्रत्येक देश के महापुरुष एकत्रित हुए हैं, हर व्यक्ति अपने देश के गौरव की घोषणा करने के लिए उत्सुक है। यहाँ विद्वानों की प्रतिष्ठा होगी तथा उस की प्रतिध्वनि से उनके देशों का गौरव बढ़ेगा। विश्व के प्रत्येक कोने से एकत्रित इन अद्वितीय महापुरुषों के बीच में हे मेरी जन्म भूमि! तुम्हारा प्रतिनिधि कहाँ है? इस महान् सभा में से एक नवयुवक तुम्हारे गौरव की रक्षा के लिए खड़ा हुआ। तुम्हारा एक वीर पुत्र, जिस के शब्दों ने यहाँ की जनता को

विद्युत्-स्पर्श के समान तरंगित कर दिया है तथा देशवासियों को भी आह्लादित करेंगे। धन्य हो यह वीर पुत्र तथा धन्य हो उस का वह अद्वितीय साथी जो सदा उस की सहायता कर रहा है।

पेड़-पौधों के हृदय की धड़कन

आचार्य बसु ने अपने यन्त्रों द्वारा पेड़-पौधों की हृदय की धड़कन, उन की बुद्धि का स्वतः लेखन तथा उन की संवेदना आदि प्रत्यक्ष देखना और दुःख एवं कष्ट होने पर उन का रोना भी सुना जा सकना प्रदर्शित किया। इन यन्त्रों द्वारा उन्होंने वनस्पतियों से उनकी मृत्यु वेदना का हाल भी प्राप्त किया। अमरीका में उन्होंने अपने यन्त्र द्वारा दिखाया कि एक फूल को प्यार से बुलाने से वह खिल उठता है तथा क्रोधपूर्वक गाली देने से वह मुरझा जाता है। यह जानकर कि वनस्पतियों की बाढ़ की गति बीरबहूटी की चाल के दो सहस्रवें अंश से भी कम है, बड़े-बड़े वैज्ञानिक अचम्भे में पड़ गए। आचार्य बसु ने सिद्ध किया कि सभी जीवधारियों में चाहे वे अण्डज हों अथवा पिण्डज, स्वेदज या उद्भिज हों, एक ही जीवनशक्ति प्रवाहित हो रही है।

संजीवनी बूटी

श्री बसु ने हिमालय पर्वत की एक बूटी के रस से मृतप्राय पौधों को पुनर्जीवन प्रदान करने में सफलता प्राप्त कर ली। छोटे-छोटे मेढकों को भी पुनः जीवन प्रदान किया गया। कई मृतप्राय व्यक्तियों को भी दोबारा जीवित करने में उन्हें सफलता मिली थी, पूर्ण मृत व्यक्ति पर ऐसा प्रयोग करने की आशा पूर्ण होने से पूर्व ही उनका अपना जीवन पूर्ण हो गया था।

कवीन्द्र रवीन्द्र की श्रद्धांजलि

विश्वकवि रवीन्द्रनाथ बसु महोदय को सच्चा कवि समझते थे, जिसने मूक वनस्पति संसार को भी वाणी प्रदान कर दी थी तथा विश्व भर को पेड़-पौधों का जीवन संगीत सुना दिया। महाकवि ने अपने 'खेया' नामक काव्यसंग्रह को विज्ञानाचार्य बसु को समर्पित करते हुए अपने जीवन के बिरवे को भी उन्हीं की भेंट किया था। अपनी एक कविता में वे गा उठे—

विज्ञान लक्ष्मीर प्रिय पश्चिम मन्दिरे
दूर सिन्धु तीरे,
हे बंधु गियेछ तुमि जय माल्यखानि
सेथा होते आनि,
दीना हीना जननीर लज्जानत शिरे
परायेछ धीरे।

अर्थात्, दूर सिंधु के पार वरद विज्ञान लक्ष्मी के प्रिय मंदिर में हे बंधु! तुम गए और लाए यश की जयमाला सुन्दर, और दीन-हीन जननी के लज्जानत शिर में पहनाई।।

पुन—

विदेशेर महोज्ज्वल मण्डित
पंडित सभाय,
बहु साधू वाद ध्वनि नाना—
कंठे रवे सुनेछ गौरवे,
से ध्वनि गम्भीर मंद्रे छाय
चारिधार होय सिंधु पारा।।

अर्थात्, अन्य देशों के महोज्ज्वल महिमा मंडित पंडितगण समूह में तुम ने सुनी नाना कण्ठों से चिर गौरव की साधुवाद ध्वनि जिसकी प्रतिध्वनि गूंज रही है सागर के इस पार चतुर्दिक।

'वीर प्रताप' में प्रकाशित

'...किसी नवीन सत्य के उद्भासित होने से पूर्व उसे व्यंग्य, तर्क एवं विरोध का सामना करना पड़ता है। जब कभी उनका सामना करना पड़े तो समझ लो कि विजय अवश्यंभावी....।'

—स्वामी विवेकानन्द

विश्व मनीषा के मणिमुकुट डा. राधाकृष्णन

धरती को भगवान् का महानतम वरदान एक क्रांतदर्शी महापुरुष के रूप में प्राप्त होता है जो अपने प्रज्ञान एवं कर्तृत्व द्वारा धरती की ही काया पलट करके उसे स्वर्णिम बना देता है।

5 सितम्बर, 1888 के दिन दक्षिण भारत की एक छोटी सी तीर्थस्थली, तिरुपति में एक धर्मभीरु ब्राह्मण परिवार में उस बालक का जन्म हुआ जिसके भाग्य में विश्वमनीषा का मणिमुकुट बनना लिखा था। लूथर मिशन हाई स्कूल, तिरुपति से मैट्रिक की परीक्षा देने के पश्चात् बालक को अपने सम्मुख प्रकाश की कोई स्पष्ट रेखा दिखाई न देती थी। पिता ने कह दिया था कि आगे की पढ़ाई असम्भव है क्योंकि न उसके पास बच्चे की किताबों के लिये पैसा है और न ही उसकी फीसों को भरने का सामर्थ्य। बालक बड़े असमंजस में पड़ा। उसने एक पड़ोसी विद्यार्थी से, जिसने एफ.ए. की परीक्षा दी थी, पूछा कि कालेज में विषय क्या लेने चाहिएं।

उस बालक ने बताया कि 'मैंने तो दर्शन का विषय लिया था, यदि आपको पसन्द हो तो आप मेरी दर्शन की पुस्तकें प्रयोग कर सकते हैं।' मैट्रिक परीक्षा के बाद की दो मास की छुट्टियों में बालक राधाकृष्णन ने वह सारी पुस्तकें पढ़ लीं, उसे बड़ी रुचिकर लगीं। इस प्रकार उस बालक ने केवल इसीलिए कालेज में दर्शन का विषय ले लिया कि उसके पास किसी अन्य विषय की पुस्तकें खरीदने के लिए पैसा ही नहीं था। और इस प्रकार आर्थिक संकट से बाध्य होकर दर्शन विषय लेने वाले बालक में से ही हमें प्राप्त हुआ युग का महानतम दार्शनिक-महामनीषी, डाक्टर राधाकृष्णन।

शंका का अंकुश

जिज्ञासा की गोदी में ही दर्शन का जन्म होता है और जिज्ञासा को तीव्रतम बनाने के लिए शंका का चुभन देने वाला तीक्ष्ण अंकुश आवश्यक है। राधाकृष्णन की प्रायः समूची शिक्षा ईसाई शिक्षा संस्थाओं में हुई। क्रिश्चियन कालेज मद्रास से उन्होंने उच्च शिक्षा प्राप्त की। उस समय के ईसाई धर्मप्रचारक हिन्दू धर्म एवं भारतीय दर्शन पर खुल्लमखुल्ला कीचड़ उछालते रहते थे। स्कूल-कालेज के ईसाई प्रचार ने

भी उनकी धार्मिक श्रद्धा को ठेस पहुँचाई। श्रद्धालु राधाकृष्णन हिन्दुत्व के विषय में शंकालु होने लगे। अपनी आत्मकथा में वे स्वयं लिखते हैं, 'ईसाई धर्म-प्रचारकों ने मुझे श्रद्धाहीन बनाकर जिज्ञासा की उस प्राथमिक अवस्था में डाल लिया जहाँ से सभी दर्शनों का जन्म होता है। वे रह-रह कर ईसाई विचार और जीवन पद्धति की भी दुहाई देते थे। किन्तु वास्तव में वे सत्य के प्रेमी या अन्वेषक नहीं थे। भारतीय विचारधारा की कड़ी आलोचनाएं करके उन्होंने मेरी श्रद्धा को विचलित कर दिया और परम्परा के सब स्तम्भों को हिला डाला, जिनका मैं सहारा लिए हुए था।'

हिन्दुत्व के गौरव सर्वस्व विवेकानन्द

ईसाईयों द्वारा हिन्दू धर्म की भर्त्सना युवक राधाकृष्णन के स्वाभिमान को चुनौती थी। उन्हीं की तरुणावस्था में भारतीयों के वक्षस्थल विश्वविजेता स्वामी विवेकानन्द के पावन स्मरण से फूल जाते थे। उन्हीं विवेकानन्द के सन्देश से राधाकृष्णन को जीवन की ठीक दिशा प्राप्त हुई। वे स्वयं लिखते हैं, 'मैं भी हिन्दुत्व का अभिमानी था और मेरा यह अभिमान स्वामी विवेकानन्द के कर्तृत्व और उद्गारों से और भी प्रदीप्त हो उठा था। मिशनरी स्कूलों और कालेजों में हिन्दुत्व के प्रति जो बर्ताव किया जाता था उससे मेरा यह अभिमान तिलमिला उठा। मैं यह बात मानने को तैयार नहीं था कि जिन हिन्दू ऋषियों और उपदेष्टाओं ने भारत की प्राचीन संस्कृति को हमारे लिए जुटा रखा है और जिनकी साधना का परिणाम हमारा समस्त ज्ञान है, स्वयं वे ही अधार्मिक व्यक्ति थे।'

वे पुनः लिखते हैं, 'ईसाई आलोचकों की चुनौती से ही विचलित हो कर मैं हिन्दुत्व का विधिवत अध्ययन करके यह पता लगाने को प्रस्तुत हुआ हूँ कि हमारे धर्म का कितना अंश मृत और कितना आज भी जीवित है।'

गीता ने जीवन पलट दिया

प्रोफेसर राधाकृष्णन ने पाश्चात्य दर्शन का अध्ययन करते हुए एक ऐसी घटना पढ़ी जिसने उनके जीवन की दिशा को एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण मोड़ दे दिया। इसी शताब्दी में ही अमरीका के एक महान् सन्त इमर्सन इंग्लैण्ड के सन्त कवि कार्लायल से मिलने के लिए यूरोप में गये। यूरोप में जब इन दोनों सन्तों का मिलन हुआ तो कार्लायल ने इमर्सन से कहा कि 'तुम समृद्धशाली डालर के देश से आए हो—बताओ, मेरे लिए क्या लाए हो?' इस पर इमर्सन ने रोकर कहा कि 'हम तो कंगाल हैं, हमारे पास है ही क्या, हां! मेरे पास विश्व की एक परम मूल्यवान वस्तु है। मेरे गुरु थोरो प्रतिदिन प्रातःकाल इसी भगवद्गीता का पाठ करते थे उन्हीं के सात्त्विक अश्रुओं से भीगी हुई यह गीता ही मैं आपको भेंट करता हूँ।' इस पर गद्गद होकर कार्लायल ने भी इमर्सन को गीता भेंट की। राधाकृष्ण ने जब यह घटना पढ़ी कि

पश्चिम के दो महान् मनीषी आपस में मिलने पर गीता ही भेंट करते हैं तो उन्होंने पाश्चात्य दर्शन की पुस्तकों को उठाकर ताक पर रख दिया और भगवद्गीता के प्रथम श्लोक से प्रारम्भ किया, **धर्मक्षेत्रे कुरुक्षेत्रे समवेताः युयुत्सवाः।**

धर्म की पुकार

इस धर्महीन भौतिकवाद एवं कोरे नास्तिकता के युग में डा. राधाकृष्णन धर्म की वाणी बनकर अवतरित हुए। इस युग में जब मार्क्स ने कहा था कि धर्म जनसाधारण को राजनैतिक बेहोशी दिलाने वाली अफीम है, इसी युग में राधाकृष्णन् ने विश्व भर में घूम-फिर कर धर्म को मानवता के त्राण का एकमात्र मन्त्र बताया। उन्होंने युग को आह्वान करते हुए कहा, 'भौतिक ज्ञान से धर्म की कमी पूरी नहीं हो सकती। इलेक्ट्रोन और प्रोटोन चरम सत्य के रहस्य का उद्घाटन नहीं कर सकते।' वे पुनः कहते हैं कि 'बिना धर्म के मनुष्य बेलगाम घोड़े जैसा है, मनुष्य को नरपशु से बदलकर दिव्य पुरुष बनना है।'

आत्मा का संगीत

राधाकृष्णन की आत्मा में वही दिव्य संगीत ध्वनित होता है जो तत्त्वद्रष्टा ऋषियों की आत्मा में सुनाई देता है और इस आधिभौतिक कोलाहल से भरे हुए युग में भी वे आत्मा का स्वर बन कर विश्व के समक्ष आए! मानव को सम्बोधन कर के वे कहते हैं, 'हे मनुष्य! तू केवल वस्तुओं में से एक वस्तु नहीं है, चीजों में से एक चीज नहीं है, तू अमर आत्मा है, संसार का स्वामी है, अपने आपको पहचान!' वे पुनः कहते हैं, 'यदि हम यह मान लें कि विश्व का मूल ईश्वर में नहीं है, तो यह संसार निरर्थकताओं का कारागार बन जाएगा।' आत्मा के धर्म का प्रतिपादन करते हुए वे कहते हैं, 'सच्चे धर्म का लक्ष्य यह है कि उसमें कर्ता कर्म करता हुआ भी कर्म से भिन्न होता है। उसका लक्ष्य आत्मा की शक्ति द्वारा जीवन को नियन्त्रित करना है।'

शान्ति के देवदूत

राधाकृष्णन सकल मानवता के लिए शान्ति के दिव्य देवदूत बनकर आए हैं। मानव को चेतावनी देते हुए वे कहते हैं—'एक अन्य युद्ध, लड़ने वालों तथा देखने वालों, दोनों के लिए आत्मघातक सिद्ध होगा।' वे पुनः कहते हैं, 'जैसे महायुद्ध अन्तरराष्ट्रीय गलतफहमियों की चरम सीमा है, शान्ति अन्तरराष्ट्रीय सद्भावना का सुफल है। हिंसा का मार्ग अपनाना धर्म से तथा झगड़ों को शान्ति से सुलझाने के पथ से, कायरतापूर्वक भाग जाना है।'

विश्वास का द्रष्टा

प्राचीन ऋषियों के समान राधाकृष्णन ने भी उद्घोष किया है—

वसुधैव कुटुम्बकम्—सारी वसुधा ही परिवार है।

वह पुनः कहते हैं, 'मम देशो भुवनत्रयम्—तीनों भुवन में मेरा ही देश है। श्री दिनकर के शब्दों में, विश्ववाद की जो भावना गांधीजी के कर्मयोग, अरविन्द की साधना और रवीन्द्र के काव्य में प्रतिफलित हुई, राधाकृष्णन ने उसका सम्पूर्ण दर्शन प्रस्तुत किया है। और इस दर्शन की रचना करने में उन्हें गांधी, रवीन्द्र और अरविन्द की अनुभूतियों से सहायता भी मिली है।' इस प्रकार आज के संसार के कोलाहल में उन्होंने सांस्कृतिक समन्वय की माधुरी का संचार किया है।

मानवता के नाम उनका सन्देश है, 'सभी मनुष्यों की मनोदशाएं और रीतियाँ अब एक ही मानव चेतना के अंग हैं। मनुष्य का दर्शक मनुष्य है। क्षितिज पर एक नये मानवतावाद का उदय हो चुका है। इस बार वह भेदभाव से ऊपर उठकर समग्र मानव-जाति का आलिंगन करेगा।' शान्ति के लिए भी विश्ववाद दर्शन के इस द्रष्टा ने मार्ग दिखाया है, 'घृणा तथा हिंसा से क्षत-विक्षत हुई इस धरती पर अब यह नारा गुंजाना है—'एक धरती पर एक मानव परिवार है।'

प्रकृति और पुरुष

प्रकृति के पदार्थमय रूप की पूजा करने वाले मनुष्य ने परम पुरुष को भुला दिया है। डा. राधाकृष्णन की चेतावनी है, 'जिन्दगी ऐसे सरकस का रूप ले रही है। जिसका न कोई ढांचा दिखाई देता है न कोई लय और न कोई ताल। मनुष्य के भीतर बसने वाले ईश्वरीय रूप की उपेक्षा करने से आदमी बीमार हो गया है, उसकी आत्मा रुग्ण हो गई है।'

प्रकृति इतनी पालतू तो बनाई नहीं जा सकती कि वह पग-पग पर मनुष्य की आज्ञा में चले। जब तक पूर्णता के दर्शन नहीं होते—जब तक सनातन की झांकी नहीं मिलती है तब तक मन की शान्ति बहुत दूर की आशा रहेगी, सुरक्षा की भावना सुखों की जननी है और यह भावना मनुष्य द्वारा प्रकृति पर विजय पाने से आने वाली नहीं है। इसके लिए हमें वस्तुओं पर नहीं स्वयं अपने आप पर स्वामित्व पाना होगा।'

मानवता का मन्दिर—भारत

भौतिकवाद की चकाचौंध से अंधे हुए पश्चिम को डा. राधाकृष्णन ने चेताते हुए कहा, 'यह सच है कि तुम लोगों ने आकाश पर पक्षियों के समान उड़ना तथा जल में मछलियों के समान तैरना सीख लिया है, किन्तु धरती पर एक सच्चे मानव के समान चलना तुमने अभी तक नहीं सीखा है। वह तुम्हें भारत से सीखना होगा।'

5 सितम्बर, 1959

दैनिक 'वीर प्रताप' जालन्धर में प्रकाशित

पुण्यश्लोक मनीषी डा. भगवानदास

भारत धर्म और दर्शन की जन्मभूमि है। इस धरती की सहज उपज है दार्शनिक और तत्त्वद्रष्टा, वे अलौकिक आत्मदर्शी एवं रहस्यदर्शी लोकनायक जो मानव जीवन के मौलिक तत्त्वों तथा सकल सृष्टि की गहनतम गहराइयों को खोजकर आलोक में लाते हैं। ऐसे ही महामानव जीवन को जीने योग्य तथा सभ्यता को सुमधुर बनाते हैं। भारतरत्न महामनीषी डा. भगवानदास जिनका 12 सितम्बर 1958 को 90 वर्ष की पूर्णायु में देहावसान हो गया, वे मनु, याज्ञवल्क्य, व्यास, वाल्मीकि, वसिष्ठ, विश्वामित्र, पराशर और अंगिरा की दिव्य ऋषि-परम्परा के एक सुन्दर पुष्प थे। आधुनिक काल में वेदवाणी वन्दित योगीराज अरविन्द के उपरांत भारतीय चिन्तन की दीपशिखा को निरन्तर जाज्वल्यमान रखने का श्रेय इन्हीं महान् तत्त्ववेत्ता को है। उनके दर्शन भी ऋषि दर्शन के तुल्य पुण्यकारी थे। खुले हुए लम्बे चमकीले उन्मुक्त केश, लहराती हुई नाभि को स्पर्श करने को आकुल लम्बी शुभ्र श्वेत दाढ़ी, सन्तों जैसा ढीला, खुला और जानुस्पर्शी चोगा, उन्नत विशाल, ओजस्वी चन्दन चर्चित ललाट, अन्तस्तल की गहराइयों को स्पर्श करने वाले तेजस्वी नेत्र, मनमोहक सात्त्विक मुस्कान, मुखमण्डल की अलौकिक शान्ति, सूक्ष्मातिसूक्ष्म तत्त्वदर्शिनी मेधा तथा वाणी का संगीत सुलभ माधुर्य—यह उनका पावन दर्शन था। अपने संग सत्ययुग की सन्ध्या वेला का प्रकाश लिये वे चलते-फिरते ज्योतिस्तम्भ थे।

अपने जन्म के विषय में वे स्वयं लिखते हैं—'धर्म दृष्टि से परम पवित्र, परन्तु चर्म दृष्टि से नितान्त मलिन, दुर्गन्धपूर्ण काशीनगरी में 12 जनवरी, 1869 को प्रातःकाल 6 बजकर 5 मिनट पर किसी सूक्ष्म लोक-परलोक से मैं इस स्थूल लोक—भूलोक में आया और नई आंखों से नई दुनिया को देखने लगा।' कलकत्ता विश्वविद्यालय से एम.ए. परीक्षा पास करके वे 9 वर्षों तक संयुक्त प्रान्त के भिन्न-भिन्न जिलों में मजिस्ट्रेट के पद पर कार्य करते रहे। भारत में डा. एनी बीसेंट जैसी सर्वशुक्ला सरस्वती का पदार्पण भी एक ऐतिहासिक घटना थी। स्वयं अभारतीय होते हुए भी वे भारत भक्त बनी तथा उन्होंने अपने जीवन का बहुमूल्य भाग भारत के स्वातंत्र्य कार्य के लिये दान दिया। उन्हीं की प्रेरणा से डा. भगवानदासजी ने

सरकारी नौकरी को त्याग सार्वजनिक जीवन में प्रवेश किया। फिर आप डा. बीसेंट के सेंट्रल हिन्दू कॉलेज में अध्यापन का कार्य करते रहे। तदुपरांत काशी विद्यापीठ के अवैतनिक उपकुलपति रहे। सन् 1912 में आप डा. बीसेंट की थियोसोफिकल सोसाइटी के प्रधान मंत्री भी रहे। देश के स्वातंत्र्य के लिए ब्रिटिश सरकार के कारागार में भी जाने का अवसर आपको प्राप्त हुआ। केन्द्रीय विधानसभा में भी आप निर्वाचित हो कर आए, तथा उस माध्यम से भी आपने देश की महान् सेवा की। हिन्दू विश्वविद्यालय काशी तथा प्रयाग विश्वविद्यालय दोनों ने आपकी महान् प्रतिभा का सम्मान करते हुए आपको 'डाक्टर आफ फिलासफि' की उपाधि से विभूषित किया।

डा. एनी बीसेंट ने डा. भगवानदास को सार्वजनिक जीवन की ओर आकर्षित किया। प्रतिदान में डा. भगवानदास ने डा. बीसेंट को भारतीय संस्कृति के अनंत ज्ञान-भण्डार की ओर खींचा। डा. बीसेंट की भारत भक्ति का मुख्य श्रेय डाक्टर भगवानदास को ही है। डा. बीसेंट के स्वर्गवास पर लोगों ने प्रथम बार इस महा मनीषी सन्त के नेत्रों को भी सजल देखा। काशी विश्वविद्यालय में महामना मालवीयजी के संग उन्होंने महान् कार्य किया। आज तक उस विश्वविद्यालय के वातावरण में भगवानदासजी का यश गूँजता है। एक महान् छात्रावास डा. साहब के नाम पर है तथा उन के नाम पर अनेकानेक छात्रवृत्तियाँ लेकर निर्धन विद्यार्थी भी विद्या के धन को प्राप्त कर रहे हैं। अपने कैलासवास से केवल कुछ दिन पहले ही उन्होंने अपना सारा निजी पुस्तकालय काशी विश्वविद्यालय को दान कर दिया था। आपने अवकाश प्राप्त करने के पश्चात् पिछले बीसियों वर्षों से वे काशी-अघनाशी में पुण्य सलिला भागीरथी की धारा के मध्य में एक छोटे से स्थल पर कुटिया बना कर रहते थे। इस भौतिक युग में, सर्व सम्पदा प्राप्त होने पर भी उनकी सादगी और सात्त्विकता दर्शक के हृदय पर अपनी छाप अंकित किए बिना नहीं रहती थी।

अपने एक रेडियो संभाषण में वे पुराने और नए युग की तुलना करते हुए कहते हैं—

'83-84 वर्ष पहले, जब मैंने और छोटे-बड़े भाइयों ने अक्षरारम्भ किया था, तब रात में पीतल की दीवट पर, सरसों के तेल से भरी पीतल की कटोरी में, रुई की तीन-चार बत्तियाँ जलाकर, उसके प्रकाश में पढ़ते-लिखते थे, नरकट व किल्क की लेखनी से नागरी लिखना सीखा, फिर जब अंग्रेजी को आरम्भ किया तो बतख़ के परों से। फिर लोहे, ताम्बे, पीतल के निबों की बारी आई। अब फाउण्टेन पेन और टाइपराइटर काम में आते हैं। पहले देसी कागज मोटा, चिकना, बहियों के काम में आता था। अब महाजनी कोठियों में भी साधारण कार्यों के लिए ब्रिटेन का कागज काम में आने लगा है। पहले संस्कृत पुस्तकें तालपत्र पर अथवा

उसी जैसे पुष्ट कागज पर लिखी जाती थीं। क्रमशः छापेखाने चले, पहले लीथो, फिर टाइप!

श्री लल्लन प्रसाद व्यास ने अपने एक लेख में एक महत्त्वपूर्ण तथ्य का उद्घाटन किया है। उनके अनुसार थियोसोफिकल सोसाइटी की भारत में ईसाई धर्म के व्यापक प्रचार के लिए एक योजना थी। वे भारत के देवी-देवताओं के नाम पर झूठ-मूठ कुछ सन्देश बनाकर भारतीयों को ईसाई धर्म की ओर खींचने का प्रयत्न करते रहते थे। वे कहते—लार्ड मैत्रेय हजारों वर्षों से जीवित हैं तथा तिब्बत में हैं। ईसाईयों ने डा. भगवानदासजी को भी प्रलोभन देकर अपने हित में देवी-देवताओं के नाम पर संस्कृत भाषा में संदेश लिखवाने चाहे। डा. भगवानदास जैसे पवित्रात्मा वाले महापुरुष यह कैसे स्वीकार कर सकते थे। उन्होंने इस षड्यन्त्र का प्रबल विरोध किया तथा देश को एक महान् संकट से बचा लिया।

महामनीषी डा. भगवानदास एक स्वतंत्र प्रतिभा वाले मौलिक विचारक थे। अपने समन्वय नामक ग्रन्थ में उन्होंने सभी धर्मों के विश्वव्यापी सिद्धान्तों की भौतिक एकता का बड़ा सुन्दर प्रतिपादन किया है। गणपति पूजा पर उनके विचार सचमुच मौलिकता से भी अधिक मौलिक हैं। 'पुरुषार्थ' नामक पुस्तक में मानव को पुरुषार्थ का महान् सन्देश है। 'दर्शन का प्रयोजन' में वे मानव के लिए दर्शन की आवश्यकता का प्रतिपादन करते हैं। 'मिस्टिक एक्सपीरियन्सेज', 'दी साइंस आफ पीस', 'साइंस ऑफ इनोशेन्ज' इत्यादि ग्रन्थ भी युगान्तरकारी हैं। डा. भगवानदास 90 वर्ष तक अपना ज्ञानालोक बिखेर कर अनन्त में समा गए हैं। किन्तु उन के शरीर के चले जाने के उपरान्त भी उनकी ज्ञान ज्योति सदा के लिए पथभ्रष्ट मानवता का मार्गदर्शन करती रहेगी। आज उन महानुभाव के जन्म दिवस पर उनके चरणों में हमारे टूटे-फूटे शब्दों की मूक-मुखर मुकुलांजलि सादर समर्पित हो।

13 जनवरी 1959
दैनिक 'वीर प्रताप' जालन्धर में प्रकाशित

महायोगी महर्षि रमण

शान्ति और प्रेम के अवतार महर्षि रमणजी का जन्म इस कथन की पुष्टि करता है कि भारत एक महान् देश है। यहाँ समय-समय पर महापुरुषों का जन्म होता है जो अपने महान् अद्वितीय गुणों से मानवता का कल्याण करते रहे और भारत को गौरवान्वित करते रहे हैं। जैसा कि स्वामी विवेकानन्दजी ने कहा है कि उस आदिम काल से ही, जब से मानव अस्तित्व का सपना देखने लगा था; भारतवर्ष में, जीवित मानवों के सारे सपनों ने अपना चिर काम्य धाम प्राप्त किया है। यूरोप में भारत के अनन्य अन्तर्द्रष्टा रोमां रोलां ने कहा था कि 'इस देश में पिछले चार हजार वर्षों से अविराम रूप से दिव्य दर्शन का वृक्ष नित नूतन होकर फलता रहा है, एकबारगी ही अनेक प्रकार के फल इसकी शाखाओं पर फलते हैं, उच्चतम कोटि से लगा कर निम्नतम कोटि तक के, अनाम्य से अनन्त एक परमात्मा तक। अनेक देवता समान्तर रूप से इस देश में विद्यमान रहे हैं। युग-युगान्तरों में भारतवर्ष अटूट रूप से मार्गशोधकों और विश्वात्मा ज्योति पुरुषों की एक पुष्पमाला सी खड़ा करता चला गया है, जिसकी जड़ें आकाश में होती हैं और जिसकी शाखाएं पृथ्वी पर फैलती हैं।

महर्षि रमणजी का जन्म किसी विशेष घटनाक्रम द्वारा परिचालित नहीं हुआ। आरम्भ से ही बालक रमण का ध्यान भगवान् में लगा रहता था, उनका जीवन भगवद्प्राप्ति के लिए आरम्भ से ही आकुल रहता था। संन्यास साक्षात्कार और इनसे प्राप्त होने वाली शक्ति, मानो आरम्भिक काल से ही महर्षि में जन्मजात अधिकार की भांति प्रकाशित थे। हिन्दू आदर्श सदा ही इस बात का समर्थक रहा है कि शब्दों के द्वारा नहीं, अपितु जीवन और कर्म के माध्यम से ही अध्यात्म की शिक्षा दी जाए। कहा जाता है कि महर्षि रमणजी सदा ही सहज समाधि में रहते थे। सदा ही सत्य साक्षात् की एक अविच्छिन्न शान्ति के भीतर वास करते थे। जब कभी कोई काम उनके सम्मुख प्रस्तुत होता था तो उसे वे अपने सहजानन्द से रंच मात्र भी विचलित हुए बिना बड़ी स्वाभाविकता से सम्पन्न कर दिया करते थे।

महर्षि रमण मौन मन्त्रदाता थे। जैसा कि दक्षिणामूर्ति के सम्बन्ध में कहा जाता है, ठीक वैसे ही महर्षि भी मौन उपदेश द्वारा ही मुमुक्षुओं को प्रतिबोध दे

दिया करते थे। महर्षि के व्यक्तित्व में संयोजन की अद्‌भुत शक्ति का परिचय मिलता है।

सर्वप्रथम महर्षि रमण मदुरै के मीनाक्षी मन्दिर में आए। यहाँ आकर उन्हें वस्त्र, निद्रा, भूख-प्यास, आदि की चिन्ताएं भूल गईं और वे सदैव विचारों में ही लीन रहने लगे। एक दिन अचानक उन्हें ऐसा लगा कि उनकी मृत्यु हो रही है। यह महान् कष्टदायक अनुभव था। पर इस कष्टदायक अनुभव के बाद ही उन्हें स्वयं ही यह अनुभव हुआ कि यदि मृत्यु आई भी तो भी उनकी देह का ही नाश होगा, उनके अन्तर का एक अंश आत्मा तो नहीं मरेगी। इस अनुभूति ने उनके समस्त जीवन को नई दिशा दे दी। अनेक कठिनाइयों का सामना करने के बाद आप तिरुवण्णामलै आए। तब से अन्तिम समय तक वहीं रहे। महर्षि ने अपनी माता के आग्रह पर भी आश्रम छोड़ना स्वीकार नहीं किया। महर्षि की इस तल्लीनता को देखकर उनकी माता स्वयं ही आश्रम में आकर रहने लगी।

तिरुवण्णामलै आने पर उनकी विचार तल्लीनता इस सीमा तक पहुँच चुकी थी कि वह सर्वदा ही सहज आत्मानुभूति की दशा में रहते थे। उनके इस आत्म-साक्षात्कार का पता जब आस-पास के साधुओं और धर्मपरायण व्यक्तियों को लगा तो वे उपदेश के लिए महर्षि के पास आने लगे। कुछ वर्षों बाद ही उनकी ख्याति सारे देश और बाद में संसार में फैल गई।

महर्षि रमण ने अपने अपूर्व आत्मज्ञान से केवल भारतीयों को ही पावन नहीं किया। वरन् प्रसिद्ध यूरोपियन, अमरीकन व अन्य देशों के विद्वान भी महर्षि का दर्शन प्राप्त कर अपने आपको धन्य मानते हैं। पश्चिम के भौतिकवाद से तंग आकर पश्चिमी लोग महर्षि रमण की शरण आकर अपूर्व शान्ति को प्राप्त कर अपने आपको भाग्यवान मानते हैं और सदा-सदा अपने आपको महर्षि का ऋणी मानते हैं। प्रसिद्ध कथालेखक समरसेट माम ने अपनी पुस्तक 'ए राइटर नोटबुक' और 'रेज़र ऐग' में महर्षि का विस्तृत वर्णन किया। माम भी अपने जीवन में शान्ति प्राप्त करने तथा आत्मानुभूति के लिए महर्षि के ऋणी हैं। महर्षि का आश्रम हिन्दू, मुस्लिम, पूर्वी, पश्चिमी, अमीर-गरीब सबके लिए खुला था और वे उनसे अपने जीवन के लिए एक नई प्रेरणा लेकर लौटते थे। महर्षि ने कभी कर्म के त्याग का उपदेश नहीं दिया। उनका कहना था कि एक बार अपने वास्तविक 'मैं' को पहचानने के बाद व्यक्ति किसी भी स्थान पर और किसी भी स्थिति में प्रसन्न रह सकता है।

महर्षि की आत्मिक शक्ति के कारण जो कोई भी महर्षि के पास से लौटते थे, उनकी शान्ति और नये आत्मिक बल को देखकर उन लोगों के परिचित तक आश्चर्य में पड़ जाते थे। समरसेट माम से, किसी ऐसे व्यक्ति ने जो कि महर्षि जी के पास से लौट कर आया था, कहा कि 'मुझे महर्षि से अधिक कोई नहीं समझ

सकता। मैं जिस क्षण उनके सामने जाता हूँ वे उसी क्षण न जाने कैसे मुझे पूरी तरह से समझ जाते हैं। मेरी सब कठिनाइयाँ, मेरे सब सुख, मेरी सब आकांक्षायें उन पर आप ही आप प्रकट हो जाते हैं। वे मुझे सम्पूर्ण सर्वांग रूप में से देख सकते हैं और उनके सामने मैं भी अपने को सम्पूर्ण अनुभव करता हूँ।''

पाल ब्रण्टन भी महर्षि से भेंट करने के पश्चात् अपने आपको किसी और स्थिति में अनुभव करने लगे। उनके शब्दों में, 'एक क्षण के लिये जब मेरी और देवर्षि की आंखें मिलीं, तो अपने भूतकाल को पृथ्वी की दलदल और उस में कभी उगे सफेद फूलों के दृश्य दोनों सब एक क्षण में मेरे मानस पटल पर घूम गये। मुझे लगा कि मेरे सामने एक ऐसी शक्ति बैठी है जो मेरे जीवन का अध्ययन बड़े सहज रूप में और मुझसे कहीं अधिक व्यापक रूप में कर रही है। मुझे यह भी लगा कि यदि मैं इस रहस्यमय व्यक्ति को अपने विचार जगत् में स्वच्छंद विचरने दूं तो मेरी सारी व्यथाएं मुझे व्यथित करना छोड़ देंगी और मेरा क्रोध सहनशीलता में परिवर्तित हो जायगा और मैं अपने जीवन का आलोचक बने रहने के स्थान पर उसे समझ सकूंगा।'

महर्षि रमणजी की यही विशिष्टता थी कि वे प्रत्येक के वास्तविक 'मैं' और बाह्य माध्यम से अन्तर को देख सकते थे, सन्त एक्सपेरी ने भी कहा है 'आंखें अन्धी हैं, आदमी दिल से ही देख सकता है।' महर्षि रमण हृदय से देखते थे, प्रेम से देखते थे और इसीलिये वे सबको उस रूप में देखते थे जिस रूप में होना चाहिए। महर्षि की उपस्थिति एक दर्पण का कार्य करती थी जिसके सामने बैठे व्यक्ति का सारा जीवन सुव्यवस्थित रूप से प्रतिबिम्बित हो कर आ जाता था। इस प्रकार वे एक कलाकार थे—जीवन के कलाकार। एक महान् कलाकार भी तो अव्यवस्थित जीवन को सुव्यवस्थित रूप में प्रदर्शित करता है।

आत्मद्रष्टा महर्षि सदा ही यह उपदेश देते थे, **आत्मान विद्धि** अर्थात् स्वयं को पहचानो। इस प्रकार अपनी दैवीशक्ति द्वारा मानवमात्र का कल्याण करने वाली इस महान् विभूति ने 14 अप्रैल, 1950 को इहलोक छोड़ निर्वाण को प्राप्त किया। उनका महानिर्वाण दिवस सारे देश में मनाया गया। इस महान् विभूति के विषय में कहा गया है कि इनका निधन नहीं हुआ वरन् जानने वाला और ज्ञेय का ऐसा मेल हुआ है जो कि स्वयं ज्ञान ही है।

दैनिक 'वीर प्रताप' जालन्धर में प्रकाशित

साधु स्थाणुदेव लीलाराम वास्वानी

विश्व भर के जितने भी राजाओं, राजकुमारों, मन्त्रियों, राजनीतिज्ञों एवं दार्शनिकों के मैंने अभी तक दर्शन किये हैं या उनका परिचय प्राप्त किया है, उनमें से छः ही ऐसे व्यक्ति हैं, जिन्हें मैं बिना किसी संकोच के 'महापुरुष' के विशेषण से विभूषित कर सकता हूँ। उनमें से दो की जीवनलीला पूर्ण हो चुकी है। शेष चार महान् जीवित विभूतियों में से एक साधु वास्वानीजी हैं। इन शब्दों में यूरोप के प्रसिद्ध देश आस्ट्रिया के प्रख्यात विद्वान डाक्टर बीजल ने भारत के एक महान् जीवित संत, पूज्य साधु स्थाणुदेव लीलाराम वास्वानीजी को हृदयहारी श्रद्धांजलि समर्पित की।

पूज्य वास्वानीजी का जन्म 25 नवम्बर, 1879 में सिन्धु प्रदेश के हैदराबाद नगर में हुआ। सिन्धु हमारे समूचे राष्ट्र को उसका प्रख्यात हिन्दू नाम प्रदान करने का गौरव रखता है। जिस सिन्धु प्रदेश में कभी वेदों की ऋचायें गूंजती थी। वहाँ बाद में भी अनेक संत-महात्मा, फकीर-दरवेश और सूफी फकीर पैदा हुए। श्री वास्वानी का शिक्षा का जीवन बड़ा तेजस्वी था। वास्वानीजी में बचपन से ही संतों के पावित्र्य एवं चारित्र्य के लक्षण दृष्टिगोचर होते थे। वे एकान्त प्रेमी थे तथा अपना अधिक समय चिन्तन में ही बिताया करते थे। भोजन करते समय कई बार वे किसी आते-जाते फकीर की आवाज सुन लेते तो तुरंत अपना भोजन उसके साथ बांटने के लिए दौड़ पड़ते। स्कूल में ही उन्होंने अपने सहपाठियों की छोटी-सी बाल मण्डली बना ली थी जो सभी प्रतिदिन कुछ पैसे बचाते रहते थे। उन पैसों से आटा खरीद कर उसकी रोटियाँ बनाकर वास्वानीजी अपनी मित्रमण्डली सहित मार्ग में बैठे हुए लूले, अन्धे, अपाहिज लोगों को बांटने जाते।

रात्रि के समय वह तेजस्वी बालक स्थाणुदेव लीलाराम वास्वानी, घर की छत पर बैठ जाता और घण्टों तक चन्द्र और तारकों को निर्निमेष नयनों से निहारता रहता। एक बार वास्वानीजी ने इसी प्रकार रात्रि को चन्द्रमा की चन्द्रिका में बैठे हुए एक श्वेत रंग वाली दिव्य विभूति को गगनमण्डल में देखा जिसकी लम्बी और चांदी जैसी श्वेत दाढ़ी वायु में लहरा रही थी। उस विभूति ने वास्वानीजी को पुकारा और वास्वानीजी ने प्रत्युत्तर दिया। इसके पश्चात् वास्वानीजी अनन्त मौन

में ऐसे खो गए कि उन्हें कुछ भी होश न रहा। यह अद्‌भुत दृष्टि वास्वानीजी ने तब प्राप्त की जब वे केवल 8 वर्ष के अबोध बालक थे। तब से अब तक, वे कहते हैं कि कोई अज्ञात शक्ति निरन्तर उनका पथप्रदर्शन और रक्षण कर रही है।

कालेज में वास्वानीजी के सहपाठी और अध्यापक दोनों उनकी प्रखर बुद्धि एवं पठित जीवन से बड़े प्रभावित थे। एक बार कुछ विद्यार्थी शरारत में, उन्हें सैर के बहाने, एक सुन्दर नर्तकी के घर ले गए तथा उन्हें वहाँ बिठा कर स्वयं चम्पत हो गए। वास्वानीजी के भोले सौन्दर्य को देखकर उस वेश्या की कामाग्नि और प्रदीप्त हो उठी। वह उस चरित्रवान युवक के अति निकट बैठ गई जिससे वह अपने इत्र लगे हुए वस्त्रों की महक से वास्वानीजी को आकर्षित कर सके, किन्तु वास्वानी एक मूर्ति के समान स्थिर बैठे रहे। वेश्या ने आसक्ति की वाणी में कहा : क्या आप मेरे अन्तर भवन में नहीं आएंगे? वास्वानीजी ने कहा—मैं पहले से ही अन्तर्भवन में हूँ। वेश्या ने अपने गात्रों को नग्न करके कहा—क्या मैं सुन्दर नहीं हूँ? वास्वानीजी ने अर्ध-निमीलित नेत्रों से कहा—'प्यारी बहन! जिस सौन्दर्य को तुम बार-बार दर्पण में देखकर दर्पित होती रहती हो वह हाड़ और मांस का सौन्दर्य पल भर में नष्ट हो जाने वाला है। मांस केवल मांस को ही अपनी ओर आकर्षित कर सकता है, मांस सदा मांस के लिए ही आहार बन जाता है और काम की अग्नि में भस्म हो जाता है। किन्तु एक ऐसा सौन्दर्य भी है जो कभी म्लान नहीं होता, यह तुम्हारे भीतर 'आत्मा का सौन्दर्य' है। उसको देखो तब तक जब तक कि तुम्हारी सारी वासनाएं जल न जाए और तुम्हारा शरीर आत्मा का दिव्य मन्दिर न बन जाए।' वह वेश्या इन दिव्य वचनों से अभिभूत हो गई। अपने बालसूर्य के समान चमकते हुए नेत्रों से वास्वानीजी ने कहा, 'आओ बहन, हम दोनों प्रभु का पावन नाम गाएं।' दोनों ने प्रभु का कीर्तन प्रारम्भ किया। इतने में शरारती मित्र पुनः कमरे में प्रविष्ट हुए किन्तु वास्वानीजी के गंगा जैसे पावन जीवन को देखकर वे बड़े लज्जित हुए तथा उस सन्त प्रकृति सहपाठी से की हुई उस शरारत पर बड़े पछताए।

प्रारम्भ से ही वास्वानीजी के भीतर एक फकीर या साधु बनने की हृदयस्थ लालसा पनप रही थी। जब श्री स्थाणुदेव लीलाराम वास्वानी ने एम.ए. की परीक्षा गौरव के साथ पास की तो वे माता से साधु बनने के लिए आज्ञा एवं आशीर्वाद मांगने आए। माँ की आंखों से अश्रुधारा प्रवाहित होने लगी। अनेक वर्षों तक उस महान् देवी ने परिश्रम करके, तप करके, स्वयं भूखा रहकर भी अपने बच्चे को ऊँची शिक्षा दिलवाई थी। उसका एकमात्र आशा का तारक स्थाणुदेव ही था, वह भी उसे बुढ़ापे में त्याग कर साधु बनना चाहता था! माता ने बच्चे की शिक्षा के लिए धन का बड़ा ऋण भी लिया हुआ था। अब वह कौन चुकाए? माँ ने अश्रु भरे नेत्रों से पुत्र को कहा—'मेरे बेटे! दुनिया में जाओ और महापुरुष बनो। जाओ

और धन कमा कर लाओ, मुझे ऋण चुकाना है।' उस तेजस्वी पुत्र के नेत्र भी गीले हो गए।

एक समय था जब तरुण वास्वानी अपने कमरे में बैठे रात्रि को देर तक पढ़ते थे तथा प्रातःकाल के पंछी अपने मनोहर गीत गा-गा कर उन्हें मुक्तगगन में विहार करने का सन्देश देते । वे पुण्यसलिला सिन्धु नदी के तट पर एकान्त में बैठ जाते तथा गगन के तारों, वन की कोयलों एवं सिन्धु की अजस्रधारा के सम्मुख प्रतिज्ञा करते कि जीवन को उस अनन्त के चरणों पर प्रेमोपहार के रूप में चढ़ा दूंगा, जिसके प्रकाश से तारे चमकते हैं, जिसके गीत कोकिल गाते हैं तथा जिसकी अनन्त महिमा के समान कलकल निनाद करती हुई अनन्त वाहिनी सिन्धु बही जा रही है।

किन्तु उस महान् एवं तपस्वी माता का दुःख भी वास्वानीजी से देखा न गया। वास्वानीजी मेट्रोपालिटन कालेज कलकत्ता में (जो बाद में विद्यासागर कालेज के नाम से प्रसिद्ध हुआ) इतिहास तथा अंग्रेजी के प्रोफेसर नियुक्त हुए।

वास्वानीजी जब केवल 30 वर्ष के थे तब वे जर्मनी की राजधानी बर्लिन में होने वाले विश्व धर्म सम्मेलन में भारत के एक प्रतिनिधि के रूप में गए। वहाँ तथा यूरोप के अन्य देशों में उनके भाषणों से भारत का शीर्ष उन्नत हुआ। इस अवसर पर न्यूयार्क के श्री वी. आई. कूपर ने कहा, 'आज भारत के नेता कौन हैं? पश्चिम में तीन नाम ही सर्वप्रसिद्ध हैं—महात्मा गांधी, रवीन्द्रनाथ ठाकुर तथा टी. एल. वास्वानी। भारत को वास्वानी के रूप में एक महान् वरदान मिला है जो 'विज्ञान के फेराडे' के समान अध्यात्म जीवन एवं शिक्षा के महान् देवदूत हैं। पश्चिमी राष्ट्र वास्वानीजी के लेखों में बहुत कुछ प्राप्त कर रहे हैं। क्या भारतीय भी उनमें अपने ध्येय के दर्शन करते हैं? यूरोप से लौटने पर वास्वानीजी दयालसिंह कालेज, लाहौर के प्रिंसिपल नियुक्त हुए। तत्पश्चात् वे सर ब्रजेन्द्रनाथ सील के स्थान पर विक्टोरिया कालेज, कूच बिहार के प्रिंसिपल नियुक्त हुए। फिर वे पटियाला के महाराज के निमन्त्रण पर महेन्द्र कालेज पटियाला में प्रिंसिपल नियुक्त हुए। वहीं पर उन्होंने अपनी माता की अन्तिम बीमारी का समाचार प्राप्त किया। वास्वानीजी तुरंत अपनी माता के पास पहुँचे तथा कई दिन तक उनकी सेवा की किन्तु माता स्वर्ग सिधारी। अन्तिम बार अपनी आंखों में संतोष के आंसू भर कर माता ने अपने प्यारे पुत्र से कहा—'मैं एक सन्तुष्ट नारी के समान खुशी से मर रही हूँ क्योंकि मैं जानती हूँ कि मेरे लाडले तू भगवान् का प्यारा है।' वास्वानीजी की अवस्था 40 के लगभग भी नहीं थी। उन्होंने उसी दिन नौकरी से त्यागपत्र भेज दिया। अब उन्हें संसार से बांधने वाला कोई नहीं था। मुक्तगगन के मुक्त पंछी के समान वे मुक्ति के गीत गाने लगे। अपना सर्वस्व उन्होंने प्रभु के चरणों में चढ़ा दिया।

अरे यात्री, तेरी मंजिल तुझे पुकारती है

एक बार वास्वानीजी संध्या के समय सिन्धु के तट पर जा रहे थे। एक बच्चे ने पुकारा। निकट आकर बच्चे ने प्रणाम किया और कहा, 'मुझे आशीर्वाद दें तथा मेरे घर आकर मेरी माताजी को भी आशीर्वाद देवें, वह बीमार है।' वास्वानीजी ने कहा—'बेटा, तुम्हारा घर कहाँ है? बच्चे ने कहा—'नाना पेठ में।' वास्वानीजी ने पूछा—'उस से पूर्व कहाँ था।' बच्चा—'शिवाजी नगर में था।' 'और उससे पूर्व?'

बच्चा बोला—हैदराबाद सिन्ध में मेरा जन्म हुआ। वास्वानीजी ने पूछा—'हैदराबाद सिन्ध में जन्म पाने से पूर्व तुम्हारा घर कहाँ था?' आश्चर्यचकित बच्चे ने कहा—'मुझे अपनी माता से पूछना पड़ेगा!' वास्वानीजी ने कहा—

अरे भटकने वाले!

तुझे तेरा घर खोज रहा है।

वास्वानीजी ने पूना में संस्थापित अपने सेंट मीरा स्कूल के लिए यही ध्येय वाक्य रखा है—

'O Wanderer!

The Homeland seeketh thee!'

6 दिसम्ब्र, 1959
हिन्दी 'मिलाप' में प्रकाशित

हे प्रभु! अगर तुम हमें दोबारा इस धरती पर जन्म दो मनुष्य का तो भारत में ही देना। क्योंकि वहाँ गरीबी होगी, गुलामी भी होगी लेकिन वह जिसे में जीवन में आत्मसात् करके कृत-कृत्य होना चाहूँगा, वह आत्मिक ज्ञान, वहाँ कि हिन्दू जाति में ही मुझे मिलेगा।

—हरवर्ट स्पेन्सर

श्री स्वामी शिवानन्दजी सरस्वती : एक

सूर्य का उदय पूर्व से ही होता है। इसलिए प्रारम्भ से ही प्राची दिशा शेष संसार को प्रकाश का दान देती रही है। भारत भूमि धर्म की जननी है और इसी धरती के बेटों ने समय-समय पर हाथ में ज्ञान की मशाल को लेकर पथभ्रष्ट मानवता को आलोक का पथ दिखाया है। ऋषियों की इस धरती ने आज पुनः एक दिव्यज्योति सम्पन्न महर्षि को पैदा किया है जिसके ज्ञानालोक एवं प्रेमपीयूष से जगती के कोटि-कोटि मानवों को अमृतमयी शान्ति का लाभ प्राप्त हो रहा है। वे ऋषि तुल्य लोकनायक हैं, अध्यात्म ज्ञान के सूर्य जगद्गुरु स्वामी शिवानन्दजी महाराज। भारत का आध्यात्मिक ज्ञान विश्व के सर्वोच्च पर्वत हिमालय का ही वरदान है। जिस पर्वत की कल-कल निनाद करती हुई अजस्र वाहिनी सदा-नीराएं सदा से भारत की इस धरती एवं धरती के बेटों की प्यास बुझाती रही हैं तथा उन्हीं अमृततोया नदियों के सिंचन से पैदा होने वाले अन्न से कोटि-कोटि भारतीयों की क्षुधा शान्त होती रही है, उसी पुण्य पावन हिमालय के तुषारमण्डित हिमशिखरों पर अनन्त तपश्चर्या करने वाले सन्तों, महात्माओं एवं ऋषियों के ज्ञान से फूटने वाली अमृत गंगा से भी युग-युग में मानवता का उद्धार होता रहा है। जगद्गुरु स्वामी शिवानन्द भारत के उन प्राचीन ऋषियों की ही पावन परम्परा में आने वाले अध्यात्म के महानतम लोकशिक्षक हैं जिनका कार्य दुर्बल मानवता के लड़खड़ाते हुए निर्बल पगों को सत्यं एवं ऋतं के मार्ग पर चलाना है। सहस्ररश्मि-सूर्य के समान ही वे भी आज प्राच्य द्वारा पाश्चात्य को प्राप्त होने वाले महानतम वरदान है।

लीलाधारी की अनन्त लीला के साझीदार परम पूज्य स्वामी शिवानन्द का पावन आश्रम हिमालय की गोदी में, ऋषिकेश की पावन तीर्थस्थली में पुण्य पावनी गंगा के पावन तट पर है। वहाँ आनन्द कुटीर पर ब्रह्मानन्द की साक्षात् मूर्ति स्वामी शिवानन्दजी के शरीरधारी स्वरूप के 73वें जन्मदिवस पर उनके दर्शन के लिए विश्वभर के भिन्न-भिन्न देशों से उनके हजारों शिष्य एवं भक्त एकत्रित हुए हैं।

एक बार शिवानन्दाश्रम में निजी डाकखाना चलता था। डाकखाने का अध्यक्ष आश्रम का एक स्वामी ही था। एक दिन वह 12 हजार रुपये लेकर भाग

गया। लोगों ने कहा—पुलिस में रिपोर्ट करवा दें। स्वामी शिवानन्दजी नहीं माने। वे यही कहते रहे—'संन्यासी कभी चोर नहीं हो सकता, उसे अवश्य ही कोई आवश्यकता होगी। मुझे दुःख है कि उसने मुझे नहीं बताया। मुझे कह देता तो धन की यहाँ क्या कमी है।' स्वामीजी ने दो दिन स्वयं उपवास किया तथा उसकी शान्ति के लिए आश्रम में सामूहिक प्रार्थना कराई।

एक बार एक पागल व्यक्ति ने सत्संग में बैठे हुए स्वामीजी महाराज पर कुल्हाड़े से प्रहार कर दिया। किन्तु दैववश वह प्रहार एक चित्र पर लगा जो फट गया। उसने दूसरा प्रहार किया जो एक दूसरे चित्र पर लगा। सत्संग में भगदड़ मच गई, लोगों ने उस पागल को पकड़ लिया तथा स्वामीजी से अनुरोध किया कि उसे पुलिस के हवाले कर दिया जाय। इस भीषण अशान्ति के बीच स्वामीजी शान्त एवं प्रफुल्ल बदन बैठे रहे। स्वामीजी ने कहा—'इस व्यक्ति को 100 रुपए दे कर इसके घर पहुँचा दिया जाए। उसे 100 रुपये दिये गये तथा उसके लिए प्रार्थना भी की गई। यह स्वामीजी की अलौकिक करुणा है।

एक बार पुलिस ने एक चोर को पकड़ा जिसके पास शिवानन्द आश्रम के बर्तन पकड़े गए। स्पष्ट प्रमाण था कि बर्तन आश्रम के हैं। उन पर आश्रम का नाम खुदा हुआ था। स्वामीजी से पूछा गया कि क्या बर्तन आश्रम के हैं? स्वामीजी ने कहा—'बर्तन तो सब ईश्वर के हैं, आश्रम का उन पर कोई ठेका नहीं है।' स्वामीजी ने अपनी अलौकिक करुणा एवं क्षमा के द्वारा उस चोर का भी जीवन बदल दिया।

'विचारो मैं कौन हूं? आत्मा
को जानो और मुक्त बनो।
स्तब्ध बनो, शान्त बनो,
करो आत्म-साक्षात्कार।
श्रोता को सुनो, द्रष्टा को देखो,
खोजो ज्ञाता को,
तुम हो नहीं तन, और नहीं मन,
तुम हो अमृतमयी आत्मा।'

मानव के प्रति उनका सन्देश है—

'प्यारे दैवी बालो, भगवान् सर्वव्यापक है, भगवान् तुम्हारे अन्तरतम में वास करते हैं। वे प्रत्येक में निवास करते हैं। तुम्हारा अस्तित्व भगवान् का ही सत्रूप है। उस प्रणय देव को मेरा बारंबार विनीत भाव से हार्दिक अभिनन्दन। उनके आशीर्वाद से आपको भक्तिपूर्ण हृदय, विशुद्ध बुद्धि, निश्चल एवं सुशान्त मन और संयमित

इन्द्रियाँ प्राप्त हों। मुक्तात्मा की तरह ब्रह्मतेज की शुभ्र प्रस्फुटित ज्योत्स्ना प्राप्त कर पग-पग पर तेज विकीर्ण करो।'

स्वामीजी की कृपा से ऋषिकेश में ही एक वृहद् योग वेदान्त विद्यालय चल रहा है तथा विश्व भर के भिन्न-भिन्न प्रसिद्ध नगरों में दिव्य जीवनमण्डल की शाखाएं चल रही हैं। स्वामीजी स्वयं कभी विदेश में नहीं गए पर यहीं बैठे ही उन्होंने अनेक पाश्चात्य विद्वानों को अपने अध्यात्म बल से अपनी ओर खींच लिया है। अनेकों के मन की आध्यात्मिक शंकाओं को स्वामीजी ने उन्हें स्वप्न में ही दर्शन दे कर शान्त किया है।

इंटरनेशनल कल्चर फोरम, संयुक्त राष्ट्र अमरीका की सेक्रेटरी मिस फ्लोरेन्स बार्कर ने लिखा है—

'मरुस्थल के मरुद्यान के समान यह 'योग-वेदान्त आख्य विश्वविद्यालय' विश्व व्यापक चेतना का शुद्धीकरण कर उसे सगुणाविष्ट करता है। पवित्रता की परम पुनीत ज्योति से समस्त विश्व को आलोकित करता है। आध्यात्मिक प्रवृत्ति का यह केन्द्र कार्य व्यस्त जीवन को अभिशाप मानने वाले, प्रभु को विस्मृत किए हुए तथा नास्तिक लोगों को सतत सुख एवं शान्ति की रश्मियों से आलोकित कर सौन्दर्य निधि कृपालु परमेश्वर में विश्वास पुष्ट कर, जीवन को उन्हीं प्रभु का वरदान मानने का पवित्र भाव जागृत करता है। मधुकोष के स्वामी और ज्ञान के तेजोपुंज श्री स्वामी शिवानन्दजी के आध्यात्मिक ज्ञान को पाने के लिए ही हम लालायित हैं।' श्री एम. सी. बिजावत, उपकुलपति काशी विश्वविद्यालय का कथन है—'स्वामीजी की आशिषों की अक्षयनिधि से हम सब धनी बन गए। उनकी लेखनी में जीवन परिवर्तन का जादू है तथा उनकी मनमोहक मुस्कान में मानव के समस्त पापपंक को भस्म करने की शक्ति निहित है।

22 सितम्बर 1959

दैनिक 'वीर प्रताप' जालन्धर में प्रकाशित

ईश्वर प्रत्येक व्यक्ति में है, किन्तु प्रत्येक (व्यक्ति) ईश्वर में नहीं है, और इसलिये वह दुःखी है।

—श्री रामकृष्ण परमहंसदेव

श्री स्वामी शिवानन्दजी सरस्वती : दो

'अपने हृदय को टटोल कर देखो। क्या तुम प्रेम नहीं चाहते? क्या तुम्हारे हृदय में, तुम्हारे अन्तरतम में यह चाह नहीं कि सब तुम्हें चाहें? मानव-जाति सुख, शान्ति और ऐक्य से रहे, और ये युद्ध, झगड़ा-फसाद, सब का नाश हो जाए? यही तो तुम्हारे अन्तरतम की आवाज है। यही तो सत्य का संदेश है।....जहां शुद्ध सतत सत्य और निःस्वार्थ प्रेम है, वहां—प्रभु की प्रीति, अध्यात्म नीति, ज्ञान-ज्योति, आत्मशक्ति, राजहंस पक्ष सम शुभ्र-धवल-कीर्ति, सरस्वती, तृप्ति, भक्ति, मुक्ति—सभी निवास करती हैं।' इस दिव्य जीवनमंत्र के द्रष्टा पूज्य स्वामी शिवानन्दजी सरस्वती आधुनिक युग के एक महानतम ऋषिकल्प महाविभूति हुए हैं। जिन्होंने अपनी अध्यात्म सुवास से मानवता की फुलवारी को सुवासित किया तथा लड़खड़ाती हुई दुर्बल मानवता को सत्यम् एवं ऋतम् का आलोकपथ दर्शाया।

भारत का अध्यात्म ज्ञान विश्व के सर्वोच्च पर्वत हिमालय का अमर वरदान है। हिमाद्रि की कलकल निनाद करती हुई अजस्रवाहिनी सदानीराएं अपने अमृतजलों से इस धरती के बेटों की तृषा शान्त करती रही है। उन्हीं अमृततोया नदियों के सिंचन से उत्पन्न अन्न से कोटि-कोटि भारतीयों की क्षुधा शान्त होती रही है। उसी पुण्यपावन हिमालय के तुषारमंडित हिमशिखरों पर अनन्त तपश्चर्या करने वाले संतों-महात्माओं के ज्ञान से फूटने वाली अमृत गंगा से भी युग-युग से मानवता का उद्धार होता रहा है। दिव्य जीवन संघ, शिवानन्द आश्रम, ऋषिकेश के प्राणप्रेरक ब्रह्मलीन स्वामी शिवानंदजी सरस्वती भी इसी ऋषि परम्परा की उज्ज्वल कड़ी के रूप में इस धरा पर आए थे।

स्वामी श्री शिवानंदजी का जन्म 8 सितम्बर, 1887 को मद्रास प्रान्त के पट्टमदई ग्राम में (तिन्नेवेल्ली जंक्शन से 10 मील दूर) श्री पी.एस. वेंगू अय्यर के पावन गृह में हुआ था। पिता वेंगू अय्यर शिवभक्त ज्ञानी थे तथा एत्तियापुरम राज्य सम्पत्ति के तहसीलदार थे। वहां एत्तियापुरम के राजा एवं प्रजा दोनों उनका सम्मान-सत्कार करते थे। स्वामीजी की वंश परम्परा 16वीं सदी के महान् विद्वान् एवं मनीषी श्री अप्पय दीक्षित से चली आती है। दक्षिण भारत में श्री अप्पय दीक्षित को साक्षात् शिव का अवतार माना जाता था। उनके लिखित 104 संस्कृत ग्रंथ मिलते हैं।

उनके 'चतुर्मतसार संग्रह' में वेद के चार मतों (द्वैत, विशिष्टाद्वैत, शिवाद्वैत तथा अद्वैतवाद) के साथ पूर्ण न्याय किया गया है। काव्य-छन्द, तर्क-दर्शन सभी में उनकी समान गति थी। वे काव्य में पंडितराज श्री जगन्नाथ के प्रतिस्पर्धी थे।

स्वामी शिवानन्द का बचपन का नाम कुप्पु स्वामी था। स्कूल की शिक्षा में उन्होंने अपनी विलक्षण बुद्धि के कारण बहुत से पुरस्कार प्राप्त किए। मेडिकल की शिक्षा तंजोर मेडिकल इंस्टीट्यूट में प्राप्त करते समय उन्होंने एक औषधि विज्ञान की पत्रिका Ambrosia चलाई। एक पुराने असिस्टेंट सर्जन को विभागीय परीक्षा में बैठना था। वह किशोर छात्र कुप्पु स्वामी को अपनी पाठ्य पुस्तकें पढ़कर सुनाने के लिए कहता। इससे श्री कुप्पु स्वामी को अन्य छात्रों की अपेक्षा अधिक जानकारी प्राप्त हो गई तथा वे वहां सब पत्रों में प्रथम स्थान प्राप्त करने लगे।

मलाया में रोगी सेवा—डॉक्टरी पास करने के पश्चात् डॉ. कुप्पुस्वामी मलाया के रबर क्षेत्रों में स्वास्थ्य सेवा देने हेतु मलाया चले गए। शाकाहारी होने के कारण मार्ग में, समुद्र यात्रा में उन्हें बड़ी कठिनाई हुई। सिंहापुर (सिंगापुर) में वे एक अनजान एवं मित्रविहीन व्यक्ति के रूप में पहुँचे। वहां के एक डॉक्टर आयंगर ने उन्हें पत्र देकर मलाया के सैरेम्बन (श्री रामबन) नगर में डॉक्टर हेरोल्ड पारसन्ज के पास भेजा। वहां रबर एस्टेट में काम करने के लिए श्री राबिन्ज ने डॉ. कुप्पुस्वामी को रख लिया। वहां सात वर्ष रोगियों की भरपूर सेवा के पश्चात् वे जोहोर मेडिकल ऑफिस में तीन वर्ष सेवा देते रहे। अपने कठोर परिश्रम, निष्काम सेवा, सहानुभूति पूरित हृदय के कारण डॉ. कुप्पुस्वामी चित्त शुद्धि प्राप्त कर देवतुल्य पूजित होने लगे। मलाया में धन एवं ऐश्वर्य के सब साधन उपलब्ध होने पर भी वे एक कमलपत्र के समान निर्लिप्त रहे। वे दैनिक पूजा-पाठ, प्रार्थना, स्वाध्याय, भजन, सत्संग, अनाहत लययोग एवं स्वरसाधना करते रहते। सन् 1980 में (लेखक) मैं मलाया (सैरेम्बन, जोहोर, कुआलालम्पुर, सिंहापुर में) के शिवानन्द आश्रमों में गीता व्याख्यानमाला हेतु गया था।

वैराग्य एवं संन्यास—पवित्र भाव से दुःखियों की सेवा करते-करते उन्हें नर से नारायण की अनुभूति होने लगी थी। डॉक्टरी की सेवा ने उन्हें संसार के दुःख, रोग, शोक को निकटता से देखने का अवसर प्रदान कर दिया था। उनका मन जिज्ञासा करने लगा—क्या कोई ऐसी स्थिति नहीं जहां संसार के तीन ताप एवं पंच क्लेश का आत्यंतिक नाश होकर शाश्वत शांति प्राप्त हो? जिस प्रकार संसार के दुःख, रोग, शोक व मृत्यु आदि को देखकर सिद्धार्थ के मन में वैराग्य का भाव उदय हुआ था, उसी प्रकार डॉ. कुप्पुस्वामी के मन में भी प्रबल वैराग्य का भाव उदित हुआ। श्रुति का वचन है—'यदाहरेव विरजेत तदाहरेव प्रव्रजेत।' जिस दिन वैराग्य जागे, उसी दिन संसार त्यागे।

सन् 1923 में अपना सारा सामान एक मित्र के पास ही छोड़ कर डॉ. कुप्पुस्वामी वैराग्य सम्पन्न साधु के रूप में सिंगापुर छोड़कर भारत के वाराणसी नगर में आ गए तथा भगवान् विश्वनाथ के दर्शन किए। फिर नासिक, पूना आदि तीर्थों में गए। पूना से 70 मील पैदल चलकर पंढरपुर तीर्थ गए। वे अनेक महात्माओं से मिले तथा अध्यात्म के कई महान् पाठ पढ़े। फिर ऋषिकेश में आकर 1 जून, 1924 को गंगा के तीर पर उन्होंने परमहंस स्वामी विश्वानंद सरस्वतीजी से संन्यास की दीक्षा ली। कैलास आश्रम के आचार्य स्वामी विष्णुदेवानन्दजी महाराज ने इस अवसर पर विरजा होम करवाया। इस प्रकार डॉ. कुप्पुस्वामी, स्वामी शिवानन्द सरस्वती बन गए।

गुरु मार्गदर्शक, शिष्य साधक—स्वामी शिवानन्दजी ने अपनी आत्मकथा में लिखा है—'शिष्य के लिए गुरुकृपा आवश्यक है।....किन्तु शिष्य के लिए गुरु ही सब साधना नहीं कर सकता। गुरु के कमंडलु के जलबिन्दु मात्र से आध्यात्मिक उपलब्धियों की आशा करना मूर्खता है। गुरु शिष्य का मार्गदर्शन कर सकता है। संशय दूर कर सकता है। मार्ग प्रशस्त कर सकता है। प्रलोभनों, गड्ढों तथा बाधाओं को दूर कर सकता है। मार्ग को प्रकाशित कर सकता है। किन्तु, शिष्य को स्वयं ही आध्यात्मिक यात्रा पथ का प्रत्येक पग चलना पड़ता है।'

स्वाध्याय सेवा साधना—स्वामी शिवानंदजी ने ऋषिकेश में आत्मसाक्षात्कार के लक्ष्य को पाने हेतु अपनी सारी शक्ति और समय को स्वाध्याय, सेवा व साधना में समर्पित किया। बदरीनाथ और केदारनाथ की यात्रा पर जाने वाले हजारों यात्रियों को औषधि सेवा की आवश्यकता होती थी। स्वामीजी ने लक्ष्मण झूला में यात्रियों की औषधि सेवा हेतु सत्य-सेवाश्रम स्थापित किया। वे औषधि के अतिरिक्त रुग्ण यात्रियों व उन महात्माओं को दूध-फल, विशिष्ट आहार, वस्त्रदान, वस्त्र प्रक्षालन, तेल मालिश आदि की सेवा भी प्रदान करते थे। वे दैनिक आसन-प्राणायाम, मुद्राबन्ध, एकान्तवास, मौन की साधना भी करते थे। मुनि की रैती में राम आश्रम लाइब्रेरी है जहां स्वामी रामतीर्थ ने वानप्रस्थ त्याग कर संन्यास लिया था। शिवानंदजी वहां से आध्यात्मिक ग्रंथ लेकर स्वाध्याय करते थे। वे व्यर्थ की बातचीत एवं शास्त्रार्थ में समय को बरबाद न करके आत्मचिन्तन एवं आत्मविश्लेषण करते रहते थे। फिर स्वर्ग आश्रम में एक 8 फुट × 10 फुट की कुटिया में रहने लगे। दोपहर की भिक्षा काली-कमलीवाला क्षेत्र से करते। वे प्रत्येक कुटिया में जाकर रोगी-महात्माओं की परिचर्या करते। उनके पांव दबाते तथा उनके मैले वस्त्र धो देते।

उस काल में उन्होंने स्वर्गाश्रम, साधु-संघ स्थापित किया। ऋषिकेश से वे पुनः अनेक तीर्थों की यात्रा पर गए। वे दक्षिण भारत में अरुणाचल पर्वत पर महर्षि

रमण के दर्शन के लिए गए। संयोगवशात उस दिन महर्षि रमण का जन्म दिवस भी था। उन्हें महान् प्रेरणा प्राप्त हुई। रामेश्वरम् में उन्होंने रामलिंगम की पूजा और पुरी में भगवान् जगन्नाथजी की पूजा की।

सन् 1936 में उन्होंने मुनि की रैती क्षेत्र में गंगा के तीर पर दिव्य जीवन संघ (Divine life Society) की स्थापना की। वे बदरी, केदार, गंगोतरी, यमुनोतरी, कैलास, मानसरोवर की यात्राओं पर पैदल गए। मार्ग में रोगी एवं आहत साधुओं को वे अपने कंधों पर उठा-उठाकर अगले पड़ावों तक पहुँचाते रहे। सन् 1939 में मलाया से एक स्कूल मास्टर शिवानन्द आश्रम ऋषिकेश में स्वामीजी से मिलने आया तथा उसने कहा कि सिंगापुर में आपका मित्र आपके छोड़े हुए सामान की देख-भाल अभी तक कर रहा है और आपकी वापसी की प्रतीक्षा कर रहा है। स्वामीजी ने मुसकराकर कहा—**'संसार की वस्तुएं संसारीजनों की प्रतीक्षा करती ही रहती है, मुमुक्षुजनों की प्रतीक्षा तो मोक्षधाम में हो रही है।'**

अयं निजः परो वेत्ति गणना लघुचेतसाम्।
अयं बन्धुश्चं नेति गणना लघुचेतसाम्।।
उदारचरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम्।।

महोपनिषद्, 6/71, हितोपदेश मित्रलाभ, 71

यह अपना है, यह पराया है, यह अल्पबुद्धिजनों की गिनती है। उदार चरित्रवालों के लिये पूरी पृथ्वी ही कुटुम्ब है।

त्यजेत्कुलार्थे पुरुषं ग्रामस्यार्थे कुलं त्यजेत्।
ग्रामं जनपदस्यार्थे आत्मार्थे पृथिवीं त्यजेत्।।

महाभारत उद्योग पर्व, 37/17, सभापर्व 62/11

समूचे कुल की भलाई के लिए एक पुरुष को त्याग दें। गांव के हित के लिये एक कुल को त्याग दें। देश की भलाई के लिये एक गांव को त्याग दें और आत्मा के उद्धार के लिये सारी पृथिवी को त्याग दें।

धर्मसम्राट स्वामी करपात्रीजी को श्रद्धांजलि

अनन्त श्रीविभूषित, धर्मसम्राट पूज्य स्वामी करपात्रीजी के निधन से अध्यात्मिक जगत् का एक महान् ज्योतिपुंज मानो सहसा विलुप्त हो गया है। अपने कर रूपी पात्रों में भोजन करने के कारण वे करपात्री नाम से प्रसिद्ध हो गए थे। अन्यथा उनका नाम स्वामी हरिहरानंद सरस्वती था। वे बद्रिकाश्रम धाम के ज्योतिर्पीठाधीश्वर श्री जगद्गुरु शंकराचार्य स्वामी ब्रह्मानन्द सरस्वती के योग्यतम पट्टशिष्य थे। उनके गुरु भाइयों (स्वामी ब्रह्मानंदजी के अन्य शिष्यों) में उल्लेख योग्य थे—स्वामी अखण्डानन्द जी सरस्वती (जो बाद में वृन्दावन के श्री उड़िया बाबा के उत्तराधिकारी बन गए)। स्वामी सान्तानन्दजी सरस्वती (जो ब्रह्मानन्दजी के पश्चात् ज्योतिर्मठ के पीठाधीश्वर बने), स्वामी परमानन्दजी सरस्वती (जो धर्म संघ कार्यालय निगम बोध घाट दिल्ली में रहते थे, तथा विगत वर्ष स्वर्गवास हो गए), महर्षि महेश योगी (जिन्होंने भावातीत ध्यान केन्द्र ऋषिकेश स्थापित कर देश-विदेश में पर्याप्त मात्रा में धन एवं यश कमाया), स्वामी स्वरूपानन्द सरस्वती जिन्हें करपात्रीजी ने लगभग 8 वर्ष पूर्व ज्योतिर्पीठाधीश्वर जगद्गुरु शंकराचार्य घोषित कर दिया था।

स्वामी ब्रह्मानन्दजी सरस्वती अपने बाद शंकराचार्य की गद्दी अपने योग्यतम शिष्य स्वामी करपात्रीजी को ही देना चाहते थे, किन्तु उनकी शर्त यह थी कि करपात्रीजी राजनीति को तिलांजलि दे दें। करपात्रीजी ने अपनी रामराज्य परिषद् को त्यागना स्वीकार नहीं किया। इसलिए उन्हें शंकराचार्य के पद से वंचित होना पड़ा। इसके बदले करपात्रीजी अपनी योग्यता के बल पर शंकराचार्य निर्माता बन गए। यद्यपि शंकराचार्य का पीठ स्वामी ब्रह्मानन्दजी ने स्वामी सान्तानन्द जी सरस्वती को उत्तराधिकार रूप में सौंप दिया, किन्तु स्वामी करपात्रीजी ने अपनी ओर से, काशी की विद्वत् सभा के बल पर स्वामी कृष्णबोधाश्रमजी को ज्योतिर्पीठ का शंकराचार्य घोषित कर दिया। चाहे न्यायालय ने इसे मान्यता नहीं दी। स्वामी करपात्रीजी का आरोप था कि स्वामी सान्तानन्द सुपठित एवं विद्वान नहीं हैं। स्वामी कृष्णबोधाश्रमजी के स्वर्गवास के पश्चात् स्वामी करपात्रीजी ने पुनः अपनी ओर से काशी की विद्वत परिषद् की सहमति से स्वामी स्वरूपानन्द जी सरस्वती को

ज्योतिर्पीठ का शंकराचार्य घोषित कर दिया। सर्वोच्च न्यायालय ने पुनः पीठ की सम्पत्ति का उत्तराधिकारी स्वामी सान्तानन्दजी को ही माना, क्योंकि उत्तराधिकार पत्र उन्हीं के पक्ष में था। जो भी हो, जनता के हृदयसिंहासन पर करपात्रीजी द्वारा घोषित शंकराचार्यों का ही पूज्य स्थान बना रहा। पुरी के शंकराचार्य भी करपात्रीजी के शिष्य हैं। द्वारिकापीठ के शंकराचार्य भी करपात्रीजी के भक्त एवं उनके अखिल भारतीय धर्मसंघ के अध्यक्ष रह चुके हैं। इस प्रकार तीन-तीन शंकराचार्यों के निर्माता एवं निर्देशक होने के कारण करपात्रीजी बिना शंकराचार्य बने भी सुपर शंकराचार्य बने हुए थे। इस दृष्टि से वे सचमुच धर्मसम्राट ही थे।

करपात्रीजी की विद्वत्ता अगाध थी। हिन्दू धर्मशास्त्रों का उन्होंने गम्भीर चिन्तन किया था। वे बोकारो स्टील सिटी में अठारह दिन तक श्रीमद्‌भागवत के एक श्लोक के एक चरण 'योगमाया समादृत'' की गम्भीर सुविस्तृत व्याख्या में अमृत उड़ेलते रहे।

साम्यवाद का सबसे करारा उत्तर उन्होंने अपने ग्रन्थ मार्क्सवाद और रामराज्य में दिया है। उन्होंने रामराज्य परिषद् के माध्यम से राम के देश में भारतीयों के सम्मुख पुनः रामराज्य का आदर्श प्रस्तुत किया। उनका कथन था कि 'श्रीराम जय राम जय जय राम' हमारे देश का राष्ट्र मंत्र है। समर्थगुरु रामदासजी ने छत्रपति शिवाजी को यही विजय मंत्र दिया था, जिसके प्रताप से छत्रपति शिवाजी सदा विजयी बने।

गोरक्षा के लिए स्वामी करपात्रीजी तन-मन-प्राण से समर्पित थे। उन्होंने गोरक्षा आन्दोलन में दिल्ली में लाखों नर-नारी एवं साधुओं के विराट् प्रदर्शन का नेतृत्व किया। उसमें पुलिस के लाठीचार्ज से उन्हें भी आहत होना पड़ा तथा अनेक साधुओं को जीवन बलिदान करना पड़ा। सन् 1976 में जब विनोबाजी ने सम्पूर्ण देश में गोवध बन्दी हेतु अनशन किया तो उन्हें अनशन से रोकने के लिए प्रधानमंत्री ने झूठ-मूठ घोषणा कर दी कि देशभर में गोवध बन्दी का आदेश लागू कर दिया गया है। इससे भ्रमित होकर जब कई शंकराचार्यों ने श्रीमती इन्दिरा गांधी का प्रशस्ति गान तथा आपातकाल का समर्थन करना शुरू किया तब स्वामी करपात्रीजी ने शंकराचार्यों को भी आड़े हाथों लिया।

पूज्य करपात्रीजी के साथ मेरा सम्पर्क बहुत पुराना एवं बहुत निकट का रहा है। मेरे बचपन के यज्ञोपवीत के दीक्षागुरु स्वामी नन्द नन्दनानंद सरस्वती स्वयं संन्यास लेकर स्वामी करपात्रीजी के चरणों में शिष्य रूप में रहते आए हैं। अतः पूज्य करपात्रीजी उस दृष्टि से मेरे परम गुरु ही बन गए थे। यूनेस्को द्वारा सन् 1963 में जब मुझे यूरोप, अमरीका, कनाडा में व्याख्यानमाला हेतु आमन्त्रित

किया गया तो स्वामी करपात्रीजी ने इस आधार पर मुझे अनुमति नहीं दी कि समुद्र यात्रा से मनुष्य म्लेच्छ बन जाता है। बाद में स्वामीजी ने इसी आधार पर अनुमति दी कि मैं विदेश यात्रा में कहीं भी पका हुआ भोजन तब तक न करूं जब तक वह पवित्र स्थान पर मेरे नेत्रों के सामने न बना हो तथा यात्रा के दौरान जब भोजन पकने-पकाने की सुविधा न हो, तब मैं केवल दूध और फल पर निर्वाह करूं। मैंने स्वामीजी के इस आदेश का नियमपूर्वक पालन किया, जिससे मेरी यात्रा बड़ी सफल एवं निर्विघ्न हो सकी।

स्वामीजी कई ऐसे विचार रखते थे जिससे हमारा मतभेद भी हो जाता था, किन्तु वे बात समझ आ जाने पर बाद में समर्थन भी करने लगते थे। जीवन भर वे शुद्धि संस्कार के विरोधी रहे। सोंस के रामरक्षा यज्ञ में हमने विलियम नाम के व्यक्ति को बलराम नाम देकर उसका वेदमंत्रों सहित शुद्धि संस्कार किया। इस पर स्वामीजी रुष्ट हो गए और उन्होंने तुरंत मुझे अपने पास बुलाया। उन्होंने कहा कि इस प्रकार दूसरों को शुद्ध करते-करते तुम स्वयं अशुद्ध बन जाओगे। लम्बी बातचीत के पश्चात् मैंने उन्हें समझाने में सफलता पा ली कि बिना शुद्धि के हिन्दू समाज संख्याबल में क्षीण हो जायेगा और धीरे-धीरे हिन्दुस्तान आर्यावर्त्त से म्लेच्छावर्त्त बन जायेगा। उन्होंने उस रात्रि की सभा में शुद्धि का समर्थन किया। 'हमारे समाज के जिन बन्धुओं की निर्धनता या अज्ञान का अनुचित लाभ उठाकर विदेशी प्रचारक उन्हें फुसलाकर धर्मच्युत करते हैं वे बन्धु अपने मन से धर्म नहीं बदलते, उन्हें केवल विवशतावश विदेशी पादरियों के सम्मुख झुकना पड़ता है। धर्म तो मन की आस्था पर आधारित है। अतः जो धर्म मन से न बदलकर लोभ, लालच या विवशतापूर्वक धर्मान्तरित किये जाते हैं, शास्त्र की दृष्टि से वे हिन्दू ही हैं क्योंकि मन के बदले बिना धर्म बदला ही नहीं जा सकता। अतएव ऐसे सभी तथाकथित धर्मच्युत बन्धुओं को हमें सरल शुद्धि संस्कार द्वारा पुनः स्वधर्म में दीक्षित कर प्रीतिपूर्वक अपना लेना चाहिए।' और तब से मुझे शुद्धियाचार्य कहना प्रारम्भ किया।

हरिजनों के प्रति भी उनका दृष्टिकोण पहले की अपेक्षा काफी बदल गया था। मीनाक्षीपुरम कांड के पश्चात् उनके हृदय को बड़ा आघात लगा और उन्होंने मृत्युशय्या से वक्तव्य दिया कि 'हरिजन हिन्दू समाज के अभिन्न अंग हैं तथा देव-मन्दिरों में वे उसी स्थान से दर्शन के अधिकारी हैं जहाँ से शंकराचार्य, अन्य धर्माचार्य या ब्राह्मण दर्शन कर सकते हैं।'

ब्रह्मलीन पूज्य स्वामी सरयुनन्दनजी महाराज

पश्चिम की वाणी राजनीति की वाणी है। किन्तु भारत की वाणी धर्म और अध्यात्म की वाणी है। पश्चिम में व्यक्ति की प्रतिष्ठा इस कसौटी पर आंकी जाती है कि उसने अपनी चालाकी से, बुद्धि-कौशल से, अपनी धूर्तता से, अपनी कूटनीति से या रणनीति से कितने अधिक लोगों को अथवा कितने अधिक देशों को लूटा या पराधीन बनाया। इसके विपरीत भारत में महानता का मापदण्ड है त्याग, लोक संग्रह, अध्यात्मिक विकास। हम भारत में महान् उसे नहीं मानते जिसने सबसे अधिक लूटा है। इसके विपरीत हम महान् उसे ही मानते हैं जिसने उत्सर्ग सबसे अधिक किया है। पश्चिम सिकन्दर, युनिलिस, नेपोलियन आदि को महान् गिनता रहा है किन्तु भारत में बुद्ध राजवैभव को लात मार कर महान् बनते हैं और अशोक भिक्षुपद स्वीकार करने के उपरान्त महान् गिने जाते हैं।

विगत एक पक्ष में रांची में एक वयोवृद्ध सिद्ध महात्मा का 118 वर्ष की अवस्था में निर्वाण हुआ जिसका समाचार बहुत कम लोगों को ज्ञात हुआ तथा सम्भवतया समाचार पत्रों में उनके विषय में कोई सूचना प्रकाशित नहीं हुई। आज भारत में भी हम पश्चिम की भौतिकवादी सभ्यता की चकाचौंध से इतने मोहित हो गये हैं कि राजनीतिक छल-छद्म, दुर्घटना, अपराध, अशोभन वार्त्ता को ही समाचार के रूप में महत्त्व दिया जाता है और पवित्र अध्यात्म सिद्धि, योग साधना एवं जीवन के परम पुरुषार्थ की उपलब्धि को हम समाचार के योग्य भी नहीं मानते।

आज से लगभग 120 वर्ष पूर्व वृन्दावन में एक दिव्य बालक का जन्म हुआ जो बाद में पूज्य ब्रह्मचारी सरयुनन्दनजी महाराज के रूप में एक सिद्ध योगी बनकर प्रतिष्ठित हुए। बचपन में ही माता की वात्सल्यमयी छाया छिन जाने के कारण बालक अनाथ जैसा हो गया। घर में बड़ी भाभी के मन में भावी सम्पत्ति के बंटवारे की आशंका को लेकर कुछ द्वेष भाव जागा और उसने पाठशाला जाते हुए बालक को प्रातः अल्पाहार में कुछ विष खिला दिया। यमुना नदी पार करते हुए बालक का शरीर अचेत हो गया और यमुना की धारा में बहते-बहते वह एक दूर स्थान तक जा पहुँचा किन्तु यमुना की शीतल धारा के प्रवाह से बालक का विष उतर गया। उसी दिन से बालक ने पुनः घर का मुख नहीं देखा।

काशी में एक मठ में वह सात्त्विक तेजस्वी बालक वहाँ के बड़े महात्मा का प्रिय पात्र बन गया। वहाँ भी आश्रम के अन्य ब्रह्मचारियों ने उसकी योग्यता एवं लोकप्रियता से मन ही मन ईर्ष्या से जलकर उसे स्नान के बहाने गंगा की अथाह जलधारा में धक्का दे दिया। ब्रह्मचारी सरयुनन्दनजी ने अनुभव किया कि स्वयं गंगामाता अपनी गोदी में लेकर गंगा की पावन धारा में नहलाती हुई काशी की परिक्रमा करा रही है। आगे जाकर उनके बड़े महन्तजी एक घाट पर ब्रह्मचारी सरयुनन्दन को पुकार रहे थे। दिव्य देहधारी इस गंगादेवी ने ब्रह्मचारी बालक को महन्तजी के हाथ में सौंपा और जलधारा में ही विलीन हो गई। इस अलौकिक चमत्कारी घटना से ब्रह्मचारीजी की प्रतिष्ठा और बढ़ गई। प्रतिष्ठा को अपनी साधना में बाधक मानकर वे चुपचाप नितान्त अपरिचित क्षेत्र असम प्रदेश के कामरूप कामाख्या धाम में जा पहुँचे। वहाँ पचासों वर्ष की तपस्या के उपरान्त उन्होंने शक्ति माता के एक स्वरूप (बगलादेवी) की सिद्धि प्राप्त की। चाहे कामरूप कामाख्या में अनेक असमी और बंगाली भक्त देवी के सम्मुख जीव बलि चढ़ाते हैं किन्तु ब्रह्मचारी जन्म संस्कार से वैष्णव होने के कारण निरन्तर भगवती की अहिंसक पूजा के ही पक्षपाती रहे। वे कहते कि भगवती महामातेश्वरी सारे जगत् की जननी है उसका हृदय अपनी संतानों के प्रति अनन्त अनन्त वात्सल्य से भरा हुआ है। अतः वह अपनी सन्तानों का रक्तपान कभी नहीं कर सकती। स्वामीजी लक्ष्मी की पूजा इतने मनोयोगपूर्वक और विधि-विधान से करते थे कि दर्शकों तक के हृदयों में पावन भाव उजागर होने लगते थे। वे तो भगवती को साक्षात् आह्वान करके पूजन करके, भगवती से अति मधुर विनीत वाणी में वार्तालाप करते थे। उनके मुंह से निकले हुए माँ शब्द को सुनने मात्र से बड़े से बड़े नास्तिकों की नास्तिक भावना, उनके नेत्रों से प्रेमाश्रुओं के साथ में पिघल कर बहने लगती थी। स्वामीजी के मुख से गोविन्द शब्द का उच्चारण सुन कर कलेजे को अपार ठण्डक मिलती थी। न जाने किस गहराई से यह माँ और गोविन्द शब्द निकलते थे जो अपने वाणी के स्पन्दन मात्र से ही अपार सुख विकीर्ण करने लगते थे।

पूज्य स्वामी सरयुनन्दन महाराज ने भूटान राज्य की सीमा के भीतर लगभग 20 मील अन्दर जाकर एक प्राचीन तीर्थ महाकाल में भी आश्रम बना रखा था। अनेक असमी, नेपाली, सिक्किमी और भूटानी स्वामीजी के भक्त और शिष्य बन गये थे। चाहे स्वामीजी का शरीर उत्तर प्रदेश का था किन्तु संयोगवशात देश भर के अधिक से अधिक गुजराती उन्हें गुरु रूप में मानकर उनकी चरण धूलि माथे पर चढ़ाते थे। शिष्यों के निमन्त्रण पर स्वामीजी अति वृद्ध अवस्था तक भी कोलकाता, धनबाद, रामगढ़, रांची, लोहरदगा, बड़बील, राजनांदगांव, परली

बैजनाथ, नासिक, मुम्बई, अहमदाबाद, राजकोट, दिल्ली आदि स्थानों पर सत्संग प्रवास करते रहते थे।

प्राणायाम की सिद्धियों से उनका शरीर लगभग 120 वर्ष की अवस्था तक प्रायः स्वस्थ एवं निरोग रहा। ब्रह्मचर्य के तेज से उनकी बुद्धि एवं स्मृति अलौकिक थी। शरीर लगभग सवा छः फुट ऊँचा, अन्त तक रीढ़ की हड्डी सीधी, 100 वर्ष के बाद भी दांत, भुजाएं लम्बी घुटनों तक छूती हुई, दृष्टि सूक्ष्म, श्रवण शक्ति बड़ी विलक्षण, ब्राह्म मुहूर्त का दैनिक जागरण, स्नान, संध्या, सत्संग, जाप, धर्मचर्चा, गोष्ठी, प्रवचन सभी कुछ नियमित एवं व्यवस्थित था।

स्वामीजी निश्छल प्रेम की मूर्ति थे। सामान्य वार्तालाप भी इतनी स्नेह मधुर वाणी में करते थे कि श्रोता का मन जीत लेते थे। बहुत बार प्रेम से संबोधन करते-करते उनके नेत्रों से प्रेमाश्रु झरने लगते। जब आपातकाल में उन्हें कामरूप कामाख्या में ज्ञात हुआ कि मेरा शरीर अकारण बंदी बना लिया गया तो वे वृद्ध महात्मा गोहाटी से गया जेल में मुझे मिलने के लिये पधारे। इतना अपार स्नेह एवं इतना उदार आशीर्वाद मनुष्य अपने सगे-सम्बन्धियों से भी प्राप्त नहीं करता होगा। राजनांदगांव, मध्यप्रदेश में एक मन्दिर में गायत्री, भगवान् कृष्ण एवं दुर्गाजी की प्रतिमाओं के स्थापना पर्व पर स्वामीजी ने मुझे भी आमन्त्रित किया। मैंने देखा कि बिलासपुर विश्वविद्यालय के उपकुलपति डा. बलदेव प्रसाद मिश्र, मध्यप्रदेश के तत्कालीन मुख्यमंत्री श्री श्यामाचरण शुक्ल, नागपुर उच्च न्यायालय के न्यायाधीश आदि सभी प्रतिष्ठित महानुभाव महाराजजी के चरणों में साष्टांग नमस्कार कर अपने को धन्य मानते थे। अभी कुछ मास पूर्व दिल्ली में यमुना के तट पर एक यमुना माता का मन्दिर निर्मित हुआ जिसके प्रतिष्ठा पर्व पर स्वामीजी मुख्य अतिथि के रूप में उपस्थित थे। भारत सरकार के जहाजरानी मंत्री श्री अनन्त प्रसाद शर्मा इस कार्यक्रम के मुख्य यजमान थे। वहीं से स्वामीजी धनबाद होते हुए रामगढ़ पधारे थे और लोहर दगा, बड़बील में सत्संग करने के उपरान्त पुनः 30 अक्टूबर को रामगढ़ पधारे जहाँ उन्हें पेट की अंतड़ियों में अचानक बड़ी उग्र पीड़ा होने लगी। उन्होंने गंगा जलपान कर तुलसी दल लेकर कह दिया मुझे काशी में गंगा माता की गोदी में ले जाओ किन्तु भक्तों ने उन्हें रामवली सिंह के शल्य चिकित्सा भवन में उपचार हेतु भरती करवा दिया। वे मना करते रहे तथा यही पुकारते रहे मुझे गंगाजी ले चलो। वहीं शरीर शान्त हो जाने पर उन्हें तुरंत काशी में गंगाजी में ले जाया गया और इस प्रकार गंगा मैया का लाडला गंगा माता की गोद में समा गया।

स्वामीजी से मुझे पिछली एक शताब्दी में अनेक महापुरुषों के विषय में वार्तालाप करने का बड़ा अमूल्य सुयोग प्राप्त हुआ था। वे श्रीरामकृष्ण परमहंस की

चर्चा श्रद्धा से करते थे पर उन्हें प्रत्यक्ष देखने का सुयोग नहीं मिला था। विवेकानन्द को उन्होंने कई मंचों पर सुना था और वे इसे भारत का निर्भय शेर कहते थे। महामना मालवीयजी के साथ उनका सत्संग बड़ा प्रेरक रहा। वे उन्हें परम भागवत मानते थे। श्री अरविन्द को उन्होंने प्रत्यक्ष देखा और सुना था, और उन्हें ज्वलंत देश भक्त कर्मयोगी कहते थे। स्वामी रामतीर्थ की चर्चा निकलने पर स्वामीजी की वाणी प्रेमाश्रुओं से रुद्ध हो जाती थी। वे कहते सभी महापुरुषों में स्वामी रामतीर्थ सबसे विलक्षण थे। उनका आध्यात्मिक नशा देखने वाले और सुनने वालों को भी चढ़ जाता था। देश के राजनीतिक महापुरुषों की चर्चा वे नहीं करते थे सिवाय लोकमान्य तिलक के। रामायण की चौपाइयों को गाते समय उनके वृद्ध कंठ की स्वर लहरी और उनकी पराभक्ति के अश्रुबिन्दु मिलकर एक अलौकिक वातावरण पैदा कर देते थे।

जीवन में मैंने कुछ उच्च कोटि के संतों-महात्माओं का सत्संग किया है। उन जैसे तपःपूत योगसिद्ध भागवत साक्षात्कारी महापुरुष की चरण धूलि के कण के तुल्य भी नहीं हूँ किन्तु उनकी उदारता एवं सदाशयता कितनी महान् है कि मेरे द्वारा की गयी दक्षिण-पूर्व एशिया की व्याख्यानमाला के बारे में उन्होंने अनेकों स्थानों पर बड़े प्रेम और गौरव से चर्चा की—मेरा प्यारा बेटा हरवंशलाल दक्षिण पूर्व एशिया का दिग्विजय करके आया है। स्वयं इतने महान् होते हुए भी अपने तुच्छ शिष्यों को इतना मान देने वाले थे! उन अलौकिक साधक सिद्ध महापुरुष के चरणों में उनके निर्वाण पर अपनी अनन्त श्रद्धांजलियाँ एवं विनम्र नमनांजलि समर्पित करने के अतिरिक्त हम तुच्छ मानवों के पास उनके चरणों पर चढ़ाने योग्य है ही क्या!

स्वामी रामानन्द और उनका जीवनदर्शन

दिव्यालोक से दीप्त मुखमण्डल, सतत वाहिनी सुर सरिता के निर्मल जल की भांति छलछल करता हुआ अधरों का मुक्तहास! अनन्त ज्ञान की गम्भीरता में डूबी हुई पलकें, उनके भीतर अलसाये हुए अधखुले नयनतारक, उनके भीतर की मानव हृदय की गहराइयों तक पहुँचने वाली अनुभवी दृष्टि, श्वेत-धवल, सात्त्विकता एवं तप से पवित्र हुई इकहरी काया, उन्मुक्त विशाल वक्षस्थल और उसके भीतर गिरे हुए को उठाकर, भटके हुओं को राह पर लाकर, अज्ञान की तमिस्रा में ठोकरें खाते हुए को प्रकाश में लाकर, पल भर में उस अलौकिक अनन्त प्रेम की शीतल छाया में खींच लाने वाला अनुभूतिपूर्ण शक्तिशाली हृदय, त्याग-तपस्या और सेवा का साकार स्वरूप और सत्यं, शिवं-सुन्दरम् की साक्षात मूर्ति—यह है, पूज्य स्वामी रामानन्दजी का धुंधला-सा चित्र। जो शब्दों की तूलिका तथा भावों के रंगों से बनाए नहीं बनता और नयनों के सम्मुख से हटाए नहीं हटता।

यह अलौकिक विभूति स्वामी रामानन्दजी कौन थे? यह सम्भवतः बहुत कम लोगों को ज्ञात है, किन्तु जिनको तनिक भी परिचय प्राप्त है, वे तो उनके नाम पर प्राण न्योछावर करने वाले बन गये हैं। भारत में राम का नाम ही सुधा-वर्षी है। राम के आनन्द में लीन रहने वाले तो कई महापुरुष इस धरती पर हुए किन्तु दो अलौकिक तत्त्वद्रष्टा 'स्वामी रामानन्द' के पवित्र नाम से देश भर में विख्यात हुए। एक तो मध्यकाल के पुण्यश्लोक स्वामी रामानन्दजी हुए जो काशी-अघनाशी की जनाकीर्ण वीथियों में उद्घोषणा की वाणी में गाते थे—

रामहिं केवल प्रेम पियारा,
जानि सके तो जान निहारा।
जाति पांति पूछे नहीं कोई,
हरि को भजे सो हरि का होई।

इन्हीं महात्मा की चरण-रज के स्पर्श से काशी के एक जुलाहे, सन्त कबीर के ज्ञान-कपाट खुल गए थे।

प्रस्तुत वाक्य पुष्पाञ्जलि के पूज्य देवता हैं आधुनिक पंजाब के एक विलक्षण

आत्मदर्शी स्वामी रामानन्दजी, जिनकी जीवनधारा और विचारधारा मध्यकालीन स्वामी रामानन्दजी की स्मृतियों को हरा करने वाली है।

जालंधर के नर-नारी जिनसे भली-भांति सुपरिचित हैं, जिस जालंधर में उनके सहस्रों भक्त आज तक भी उनकी यशोगाथा गाते हैं, जहाँ पर 'आत्मनिवास' में उनकी स्मृति में, उन मुक्तात्मा की जन्म-जयंती के उपलक्ष में साधना-सप्ताह मनाया गया है, स्वामीजी की लगभग पैंतीस वर्ष की लघुजीवन गीतिका के अधिकांश स्वर जालंधर नगर में ही गूंजते रहे हैं। जिस स्वनामधन्य महिला को इस महापुरुष के लालन-पालन का सौभाग्य प्राप्त हुआ वे पूज्या, भावीजी आज भी जालंधर में निवास करती हैं। जिस महान् नारी को स्वामीजी ने अपनी माता कह कर पुकारा वे उनकी धर्ममाता श्रीमती सुमित्रा देवीजी भी जालंधर में निवास करती हैं।

आपका जन्म युक्तप्रांत में ललितापुर गांव में एक पंजाबी क्षत्रिय परिवार में हुआ। बचपन से ही आप बड़े आदर्शवादी रहे हैं। प्रत्येक परीक्षा में आप सर्वप्रथम आते रहे। सामान्यतया आपकी शिक्षा आर्यसमाजी संस्थाओं में ही हुई। आपका आदर्श भी वही रहा जो आर्यसमाज का है। स्वामी दयानन्दजी के जीवन का उन दिनों आप पर बहुत गहरा प्रभाव पड़ा। स्वामीजी पर महात्मा बुद्ध का प्रभाव भी पड़ा। इन्होंने महात्मा बुद्ध को मैत्री, प्रेम और निस्वार्थ सेवा की प्रतिमा के रूप में देखा। इनके शब्दों में, उनकी करुणा की मुझे थाह नहीं मिलती, उनकी मैत्री की सीमाएं नहीं दीखती, उनके प्यार का पारावार नहीं पाता, उनके त्याग का कोई अंत नहीं। उनके त्याग में मनुष्यत्व की पराकाष्ठा दीखती है और साथ ही वह दिव्य भी है। मानो देवता होते हुए—देवताओं से भी ऊँचे होते हुए इस स्थूल पृथ्वी पर विचरे थे।

विचारधारा

स्वामीजी की विचारधारा के मुख्य बिन्दु निम्नांकित हैं–

मोक्ष—मोक्ष प्रकृति से छुटकारा पाना नहीं, प्रकृति को आत्मसात् करना है। स्वामीजी के विचार इस प्रकार हैं—आध्यात्मिक विकास मन, बुद्धि और शरीर से परे होना मात्र नहीं है। कैवल्य ही हमारे योग की अन्तिम कोटि, विश्राम स्थली नहीं है। आध्यात्मिक विकास जो आत्मा की सम्पूर्ण सन्निहित शक्तियों को पूर्णरूपेण प्रकृति में अभिव्यक्त करना है, स्थूल जगत् तक में ले आना है, यह प्रकृति से भागने का योग नहीं है। यह प्रकृति को भी आत्मभूत करने का योग है, आत्मा के पूर्णत्व को प्रकृति में प्रकट करना है—यही इस आध्यात्मिक विकास का लक्ष्य है।

गृहस्थ महिमा—स्वामीजी गृहस्थ जीवन को प्रभु भक्ति के मार्ग में बाधा न मानकर भक्ति की एक साधना ही समझते हैं। उनके अनुसार, गृहस्थ जीवन तो

साधन है। यह व्यक्ति को निर्मल और उज्ज्वल कर सकता है। यह प्रभु की सेवा का परम सौभाग्य है। आंखें खोलकर पहचानो तो सही।

ईश्वर बुद्धि से परे—अध्यात्म ज्ञान बुद्धि से परे की वस्तु है। इसका ज्ञान आत्मा के द्वारा प्राप्त किया जा सकता है। स्वामीजी ने लिखा है—'मनुष्यत्व के द्वारा देवत्व नहीं तो दिव्यत्व अवश्य है। बुद्धि के क्षेत्र तक हम पहुँचे हैं! यही मनुष्यत्व की विशेषता है। बुद्धि का ज्ञान विश्लेषण से, भेद से होता है, परन्तु वस्तु ज्ञान तो इससे परे भी है और कहीं उत्तम। समाधि ज्ञान तो महाचैतन्य का क्षेत्र अभी हमारे आगे है। वह ज्ञान जिससे सूक्ष्मातिसूक्ष्म अणु भी अपने रहस्य को सहज में खोल देता है। और उससे परे वह ज्ञान जिसमें सभी का एकीकरण एक में होकर एक का दर्शन अनेक में होता है, वह ज्ञान जिसे समता कहा है। इस ज्ञान की अभिव्यक्ति तो अभी बाकी है।'

आत्मसमर्पण—'प्रभु के आगे माथा झुकाना है तो झुकाओ फिर जैसे वह ले चले उसी रास्ते पर खुशी से चलो। जो अनुभव वह कराये वह स्वीकार करो। वह दर्द देगा तो सहन की ताकत भी देगा, वह साथी बना साथ रहेगा। वह प्यार से भर देगा ठीक समय पर। वह देने में कंजूस नहीं, वह पगला नहीं। दूसरे का हित, उसका विकास ही सबसे बड़ी बात उसके सामने रहती है। उसकी लीला विचित्र है, वह खूब खेलता है। कभी रास्ता खोलता लगता है और कभी बन्द करता है। वह सभी रास्तों से व्यक्ति को जाग्रत करता हुआ ले जाता है।'

आदर्श साधु—'आदर्श साधु' क्या है? जो भगवान् को साथ ले, उसका हो जाए पूरी तरह से। जिसका अपनापन सध जाय अर्थात् मिट जाए प्रभु में। प्रभुमय हो जाना, उसी के लिये जीना, उसी में जीना। यही आदर्श पथ की ऊँची साधना है।'

आत्मानं विद्धि—अविद्या के अंधकार में पड़े हुए मानवों को आत्म-जागरण का संदेश देते हुए स्वामीजी कहते हैं, 'घर में रखी वस्तु भी हाथ से दूर हो सकती है, यदि हम उसे पहचानते नहीं। ऐसे ही भगवान् भी यदि हम उसे पहचानते नहीं, यदि उसकी समीपता को प्रतीत नहीं करते, यदि हमने नहीं जाना कि वह तो हमारे हृदय में विशुद्ध स्वरूप में सदैव विराजमान है और उससे कभी बात नहीं की तो सचमुच वह हमसे अति दूर है। इतना दूर कि हमारी कल्पना की उड़ान तक भी वहाँ न पहुँच पायेगी। यदि उसे अपने भीतर नहीं खोजते तो वह कहीं भी मिलने का नहीं।'

4 जनवरी 1959
दैनिक 'वीर प्रताप' में प्रकाशित

महाराष्ट्र के संत कवि माणिकराव

मध्यकालीन भारत में भारत एवं भारतीयता को संकटसागर से उबारने के लिए जिन महान् संत भक्तों का उदय हुआ उनकी महान् परम्परा भक्तिकाल के समाप्त होने के साथ समाप्त नहीं हो गई। वरन् साहित्यिक धाराओं के बदल जाने के उपरान्त भी भक्ति की सांस्कृतिक धारा अबाधगति से प्रवाहित होती रहीं। फिर भक्ति तो भारत की धर्म भूमि की विशेष वस्तु है—यह वह अनादि-अनन्त धारा है जो भारत की साक्षात् प्राणधारा बन गई है। जब भारत के आनन्दकानन में भक्ति के कोमल बिरवे खिलने समाप्त हो जाएंगे तब फिर भारत भारत ही नहीं रहेगा।

भारत के प्रत्येक कोने से समय-समय पर संतों ने प्रकट होकर युग की मांग के अनुसार जन गण में आदर्शवाद फूंकने का जो महाकार्य किया है उसका लेखनी या वाणी से उचित मूल्यांकन करना कठिन है। देशभर में घूम-फिर कर लोकमानस की चेतना को उद्‌बुद्ध करने वाले संत-महापुरुष मानो चलते-फिरते जंगमतीर्थ ही हैं। 19वीं शताब्दी में महाराष्ट्र में एक महान् भक्त कवि का उदय हुआ। जिनका जन्म काल, जन्म स्थान, माता-पिता, जाति, गोत्र, वंश-परम्परा सभी कुछ अभी तक इतिहास की त्रिकालदर्शिनी आँखों के लिए भी अज्ञात बना हुआ है। इस महान् संत कवि के अस्तित्व का एकमात्र ऐतिहासिक आधार है—हुमणाबाद में बनी हुई एक छोटी-सी, धूलि में सनी हुई समाधि। जिस पर आने-जाने वाले भक्त नर-नारी कभी अपना नमन चढ़ा जाते हैं तथा कभी कोई श्रद्धालु जीव दो एक फूल चढ़ा कर अपने मन में सांत्वना लाभ करता है। उस महान् अलौकिक महापुरुष का यही एकमात्र लौकिक स्मारक काल की डाहभरी दृष्टि से बचा हुआ उस संत की स्मृति को सजीव बनाए हुए है। हुमणाबाद के बड़े-बूढ़े सज्जनों को जिनकी आँखों की ज्योति मंद हो चली है, एक धूमिल स्मृति बनी हुई है कि उन्नीसवीं शती के अन्तिम तथा बीसवीं शती के प्रथम चरण में महाराष्ट्र में एक भक्ति संगीत से मुखर हृदय वाला संत कवि प्रभु के मधुर गीत गाता हुआ घूमता-फिरता था। उन सत्तर-अस्सी वर्ष की आयु के इने-गिने बूढ़ों को यह भी याद है कि आज से 59 वर्ष पूर्व सन् 1911 में उन महान् संत की भक्ति संगीत से गूँजने वाली

हृदयवीणा अचानक मौन हो गई तथा उस संत कवि ने अपना नश्वर चोला त्याग कर ब्रह्मसमाधि प्राप्त की।

उस अविनश्वर संत के मिट्टी व ईंट के बने हुए नश्वर स्मारक के अतिरिक्त उस अमृत कवि की महान् रचनाएं उनका चिरन्तनजीवी स्मारक है। वह महान् अपने महान् मृत्युंजय गीतों के माध्यम से आज भी अमर है और सदा के लिए अमर रहेगा।

सदाशिव वंदना—शंकर महाकाल है। उनका प्रलयंकर रूप दुष्टों के कलेजे को प्रकम्पित करने वाला है। किन्तु माणिक जैसे भक्तों को वह रूप बड़ा लुभावना लगता है—

भोला! तोहे मूरत लागत नीको।
कान भुजंग सुहावत कुंडल,
वोहे ही छाला व्याघ्रांबर,
गाल बजाए के नाम ही लेत,
काल ही कांपत थरथर,
माणिक के प्रभु ऐसे सदाशिव,
भावहि भक्ति के भूको।
भोला तोहे सूरत लागत नीको।

अर्थात् हे भोलेशंकर! तेरी मूर्ति मुझे अच्छी लगती है। तेरे कानों में सर्प रूपी कुंडल शोभायमान हो रहे हैं। तुमने व्याघ्र की छाल का वस्त्र पहना हुआ है। आप गाल बजाते, ऊँचा शब्द करते हो तथा डमरु ध्वनि भी करते हो तथा आप (महाकाल) के नाम से भी काल (मृत्यु) थरथर कांपने लगता है। माणिक के प्रभु सदाशिव ऐसे प्यारे हैं, जो केवल भाव भक्ति के भूखे हैं।

अवधूत शिरोमणि दत्तात्रेय—महाराष्ट्र में भगवान् दत्तात्रेय की बड़ी पूजा-प्रतिष्ठा है। संत कवि माणिक भी उन अवधूत शिरोमणि की वंदना में गाते हैं—

मन लागा मेरे रे! अवधूता सो।
निराकार निर्गुन निरंजन,
निराकार बिन नाथा सो।
बहुरंगी जोगी संगत त्यागी,
ज्ञान अखिल पददाता सो।
माणिक के मन लग गए सुमरन,
अनसूया जी के पूता सो।

अर्थात् मेरा मन उन अवधूत प्रवर दत्तात्रेयजी में रम गया है। जो निराकार, निर्गुण और निरंजन ब्रह्म के स्वरूप हैं। तथा जिनका कोई नाथ नहीं। अर्थात् वे ही सभी के स्वामी हैं। जो जीवन के अनेक रंगों वाले जोगी हैं तथा संगदोष से मुक्त निर्लिप्त महापुरुष हैं एवं अखिल ज्ञान के दाता हैं।

उन अनुसूयाजी के सुपुत्र दत्तात्रेय भगवान् के स्मरण में भक्त माणिक का मन लीन हो गया है।

गुरु चरणों की पांवरी, मेरे तन को चाम—श्रीमद् गोस्वामी तुलसीदासजी ने लिखा है—

तुलसी जिन के मुखन ते, धोखेऊं निकसत राम।
तिन के पग की पाहिनी, मेरे तन की चाम।।

महाराष्ट्र सन्त श्री माणिक अपने गुरुदेव के चरणों के जूतों के लिए अपने तन का चमड़ा देने को परम व्याकुल हैं—

गुरु जी! तोरे पैयां पर सीस धरूं।
तेरे नाम का ध्यान धरूं, तेरे काज मरूं।
अपने तन की चाम निकाल के, चरण पनैया करूं।
माणिक कहे तेरी सूरत प्यारी, नैनन बीच भरूं।।

श्रीराम की बाल छवि—संत माणिकराव प्रभु के बाल रूप पर मुग्ध हो नृत्य गीत गाने लगता है—

देखो देखो सखि रे छब बाला की।
शेषाचल पर आप विराजे, चौकी हनुमन्त लाला की।
मोर मुकुट मस्तक पर सोहे, बहुत लगी लड माला की।
माणिक के मन सुमरत बाला, फासा कटे भवजाला की।।

शब्दों की रंगीनी से उभरा हुआ यह श्रीराम की बाल छवि का चित्र कितना अनूठा है।

लक्ष्मण मूर्च्छा पर राम विलाप—रामायण में लक्ष्मण मूर्च्छा का प्रसंग समूची कथा में सबसे अधिक अश्रुप्रेरक, करुण प्रसंगों में से एक है। इन राम भक्त कवि ने उस करुण दृष्टि को कैसे अश्रु-मुक्ताओं में गूंथा है—

आज बडो ये कठिन भयो।
नीर ढलकत नैन से या रघुबर के।
लाग के बाण जद लछ्मन,
व्याकुल प्राण भयो भयोधर के!

क्या कहूं मैं भरत भैयाकु,
कैसे मैं जाऊं अयोध्या नगर कु
ज्यावेंगे काल कपि गिरि कंदर,
ज्यावे विभीखन अब कौन घर के?
माणिक के प्रभु धनुख धरे,
बतावो निशाचर अब कौन घर के।

लक्ष्मण के बेहोश हो जाने पर नयनों से नीर बहाते हुए श्रीराम कहते हैं कि अब मैं अयोध्या नगरी में किस मुंह से जाऊंगा और भरत भैया से क्या कहूंगा कि मेरा प्यारा बंधु लक्ष्मण कहां रह गया है, इत्यादि-इत्यादि। इसमें संत कवि ने करुणरस का अच्छा परिपाक दिखाया है।

तेरी सांवली सूरत पर वारी—कृष्ण प्रेम में मतवाली मीरा बाई ने गाया है—

तेरी सांवली सूरत पर वारी।

बिल्कुल उसी भावधारा में नन्दलाल की सांवरी सूरत पर मुग्ध होकर कवि माणिकराव संगीत मुखर पदों में गाने लगते हैं—

मैं तो वारि रे सैयां! तोरे पर से।
सांवलि सूरत रसभरी अखियां लेउगि
बलियां दोनों कर से
माणिक प्रभु वो नन्द लाला।
दर्शन पर जिया तरसे।
मैं तो वारि रे सैयां तोरे पर से।

मुरली की मधुर तान—श्री कृष्ण की मुरली माधुरी का मधुर चित्रण कितना कर्णमधु है—

नन्द कुमार सांवरो कान्हा, बांसुरी बजाई।
शुक सनक व्यास मुनि, ध्रुव प्रह्लाद नारद मुनि।
भये रहे स्थिर देह, सुध बिसराई।
चकित भये सब ही देव, ब्रह्मा विष्णु महादेव।
त्रिभुवन मो नाद भरे सुनत शेष शामी।
स्थिर रहे जमुन नीर, डुल भये विमानी सुर।
माणिक दास नभये।

गुरु गोविन्दसिंह ने भी मुरली महिमा में लिखा है—

ठाड़ी रही जमुना, खग बोलत...

अर्थात् श्री कृष्ण की मुरली सुन कर यमुना भी खड़ी हो गई। भक्त माणिकदास ने भी लिखा है—

स्थिर रहे जमुन नीर, डुल भये विमानी सुर।

अर्थात् यमुना का जल खड़ा हो गया तथा विमानों में विचरण करने वाले देवता भी मुग्ध हो गए।

हिन्दी साहित्य में स्थान—इस प्रकार भक्त माणिकराव ने महाराष्ट्र में जन्म पाकर तथा मराठी भाषी होकर भी हिन्दी में इतने सुललित भक्ति पदों की रचना की कि उनका हिन्दी साहित्य में एक आदरपूर्ण स्थान बन जाता है। किन्तु, दुर्भाग्य की बात है कि हिन्दी के किसी भी इतिहास में इन अज्ञात भक्त कवि के विषय में एक पंक्ति भी नहीं लिखी गई।

भाषा—भक्त माणिकदासजी की भाषा साधु-संतों की सधुक्कड़ी भाषा है। जो अटपटी होने के उपरान्त भी हृदय पर प्रभाव डालती है। अलंकार अधिक नहीं हैं। किन्तु, उपमा, रूपक इत्यादि अलंकार अच्छे निभाए हैं।

भाव—भाव की सरलता एवं सचाई जो एकदम हृदय को अभिभूत कर लेती है, संतों की एक विशेषता है। आज भी कोई मराठी भाषी या हिन्दी भाषी सहृदय व्यक्ति जब भावविभोर होकर भक्त प्रवर माणिकदासजी के भक्ति रसामृत में डूबे हुए पदों को गाते हुए आनन्दाश्रु बरसाने लगता है तो उस विस्मृत महाकवि की अमरकला को उचित श्रद्धांजलि समर्पित हो जाती है।

मातृवत्परदारेषु, परद्रव्येषु लोष्टवत्।
आत्मवत्सर्वभूतेषु यः पश्यति स पण्डितः।।

गरुडपुराण नीतिसार, 1/111/12

परायी स्त्रियों में जिसकी मातृवत्-दृष्टि है, पराये द्रव्यों (वैभवों) को जो मिट्टी के ढेले के तुल्य तुच्छ समझता है और जो सभी प्राणियों को आत्मतुल्य समझता है; वह पण्डित है।

महामहिमामण्डित महर्षि मेँहीँ परमहंस के चरणकमलों में

सादर समर्पित

अभिनंदन पत्रम् प्रथम

ओइ महामानव आशे।
दिके दिके रोमांच लागे, मर्त्य धूलिर घाशे घाशे।।
सुर लोके बेजे उठे शंख, नर लोके बाजे जय डंक।।
एल महाजन्मेर लग्न।
आजि अमा रात्रिर दुर्गतोरण गत धूलि तले हये गेल भग्न।
उदय शिखरे जागे मा भैः मा भैः, नव जीवनेर आश्वासे।
जय जय जय रे मानव-अभ्युदय, मन्द्रि उठिल महाकाशे।।

विश्वकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर की अमृत वाणी से प्रस्फुटित इस महामानव अभिनन्दन में हम रांची निवासी नर-नारिगण अपने हार्दिक अभिनन्दन के अन्तःस्पन्दित स्वर मिला कर गा रहे हैं—

ओइ महामानव आशे।
धन्य हुआ महापुरुष आगमन।
दशों दिशाएं रोमांचित हैं, धरणी के तृण तृण में स्पन्दन।
धन्य हुआ महापुरुष आगमन।।
देव लोक में शंख बज उठे, धरती में जय डंक बज उठे।
यह महापुरुष प्राकट्य लग्न!
आज अमा रात्रि दुर्ग तोरण धूलि तले हों भग्न!!
उदय शिखरे अभय दान ध्वनि, नव जीवन आश्वासन।

जय, जय, जय! महामानव ज्योति! भू नभ में अभिनन्दन।।
धन्य हुआ महापुरुष आगमन!!

हे सन्तशिरोमणि! आप जैसे दिव्य आध्यात्मिक अवतारी पुरुष की चरण धूलि का स्पर्श कर यह छोटानागपुर की मनोरम-वनस्थली तथा स्वर्णरेखा-तट-शोभिता रम्य रुचिर रांचीनगरी, कल के इतिहास और आज के प्राविधिक विकास की साक्षी यह भूमि, अपने को धन्य-धन्य मान रही है।

कुलं पवित्रं जननी कृतार्था, वसुन्धरा पुण्यवती च तेन।
अपार सच्चित्सुखसागरेऽस्मिन्, लीनं परे ब्रह्मणि यस्य चेतः।।

सचमुच इस संसार में जन्म प्राप्त कर जिसका चित्त अनन्त सच्चिदानन्दघन परब्रह्म परमेश्वर में लीन हो जाता है, उसके जन्म से उसका कुल पवित्र हो जाता है, उसकी जन्मदात्री माता धन्य हो जाती है और सारी वसुन्धरा उसकी चरणधूलि को चूम कर पुण्य-पावन हो जाती है।

हे वयोवृद्ध, ज्ञानवृद्ध, साधनसिद्ध, लोकप्रसिद्ध महात्मन्! आप विगत एक शताब्दी के इतिहास के प्रत्यक्ष द्रष्टा तथा सहस्राब्दियों की आध्यात्मिक परम्परा के सजीव साक्षी हैं। इस भूमि का चप्पा-चप्पा अपने इतिहास के मुंदे हुए नेत्र खोल कर आप जैसे इतिहास निर्माता का दर्शन कर धन्य हो रहा है। छोटानागपुर की पहाड़ियाँ विंध्याचल की ही पूर्वी श्रेणियाँ हैं। त्रेतायुग में महर्षि अगस्त्य ने सर्वप्रथम विंध्याचल पार किया। भगवान् राम ने यहीं के वनवासी वानरों को हृदयों से लगाया तथा उन्हीं की सेना संगठित कर त्रैलोक्य विजयी रावण की लंका को धूलि-धूसरित कर दिया।

हे महान् भारत की महानता के मूर्तिमन्त महिमापुरुष! महाभारत काल में जनमेजय के नागयज्ञ से बचकर एक पुण्डलीक नामक नाग वाराणसी होते हुए सपत्नीक रांची जिले के सुतयाम्बे ग्राम में आया था। एक बालक को जन्म देने के पश्चात् वह परिवार लुप्त हो गया। यहाँ के एक वनवासी राजा मादरा मुण्डा ने देखा कि एक सुन्दर अबोध शिशु पत्तों के दोने में पड़ा हुआ है जिसके मुख को धूप से बचाने के लिए एक काले नाग ने उसके सिर के ऊपर अपना फण फैला रखा है। वनवासी राजा ने उस बालक को पुत्रवत् पाला-पोसा तथा उसी फणिमुकुटनाथ शाहदेव से छोटानागपुर के नागवंशी राजाओं की परम्परा का सूत्रपात हुआ। हे महर्षे! उसी नागवंश के एक धर्मात्मा राजा ऐनीनाथ शाहदेव ने 1791 में यहाँ के भक्त वनवासी जनों की सुविधा के लिए यहीं इसी क्षेत्र के सामने ऊँची पहाड़ी पर जगन्नाथ मन्दिर का निर्माण करवाया। उसी नागवंशी राजाओं की परम्परा में ठाकुर विश्वनाथ शाहदेव हुए जो इसी क्षेत्र के राजा थे, सन् 1857 में भारत की

स्वाधीनता हेतु शहीद चौक रांची में बलिदान हुए। उन्हीं की स्मृति में यह शहीद मैदान है जहाँ यह सत्संग महाधिवेशन हो रहा है तथा उन्हीं के राज्य की भूमि में आज एशिया का विशालतम अभियंत्रण निगम स्थापित है जिसके सभापति इस महाधिवेशन में मुख्य अतिथि के पद को सुशोभित कर रहे हैं।

हे करुणा सागर एवं अहिंसावतार! यह भूमि बुद्ध, महावीर, अशोक, शंकराचार्य, चैतन्य की चरण धूलि से, बिरसा भगवान् की क्रान्ति ज्वाला से, परमहंस योगानन्द की साधना, महात्मा गांधी, स्वामी प्रणवानन्द, स्वामी शरणानन्द, रवीन्द्रनाथ ठाकुर, माँ आनन्दमयी के पदार्पण से पवित्र हो चुकी है।

अध्यात्म सरोवर के पूर्ण पंकज! पश्चिम ने लूटने, जीतने या संग्रह करने वालों को महान् गिना, जैसे सिकन्दर महान्, नेपोलियन महान्, बिस्मार्क महान्, जूलियस सीजर महान्। भारत ने भोगी, लोलुप, लुण्ठक, परपीड़क को तुच्छ एवं पतित माना। भारत में महानता की कसौटी है–त्याग, वैराग्य, समर्पण और आत्मविजय।

यहाँ बुद्ध और महावीर राज्य त्यागने के पश्चात् महान् बनते हैं। अशोक भी राजा के रूप में चण्ड अशोक था पर भिक्षु बन कर अशोक महान् हो गया। भारत की आध्यात्मिक फुलवारी के सुन्दरतम पुष्प हैं—ऋषि-मुनि, योगी, भिक्षु, अर्हंत, मनीषी, भक्त-सिद्ध और सन्त। हे महर्षे! आप में वैदिक ऋषियों के समान परम सत्य का दर्शन है, मुनियों का मनन एवं मौन साधना है, योगियों की अटल शान्ति एवं समाधि सुधा है, बौद्ध भिक्षुओं की सम्यक् सम्बोधि है, जैन अर्हंतों के समान आत्मनिष्ठा है, ज्ञानियों की मनीषा है, भक्तों का हृदयस्पर्शी भक्तियोग है, सिद्धों की सिद्धियाँ करतलगत हैं और हजारों वर्ष की सन्त-परम्परा आपके विग्रह में अखण्ड एवं समग्र रूप से सजीव हो उठी है। इसलिए आपका वन्दन, अभिवन्दन भारत की समस्त अध्यात्म परम्परा का समग्र एवं शाश्वत अभिनन्दन है।

हे जन्मजात योगी, हे बाल ब्रह्मज्ञानी महापुरुष! जब आप मैट्रिक की परीक्षा में बैठे थे तब बिल्डर्स नाम की अंग्रेजी कविता की चार पंक्तियाँ व्याख्या के लिए पूछी गईं—

'For the structure that we raise
Time is with material's field,
Our todays and yesterdays
Are the blocks with which we build.'

इसकी व्याख्या में आपने उस 14-15 वर्ष की किशोर अवस्था में लिखा—

'हम लोगों का जीवन मन्दिर अपने सुकर्म या कुकर्म रूपी प्रतिदिन की ईंटों से बनता या बिगड़ता है। मानव का जीवन मन्दिर उसके ही किये पुण्य और पाप

कर्म रूपी ईंटों से निर्मित होता है। अपवित्र और कलुषित कर्मों से मानव जीवन का प्रासाद भी मैला कुचैला, अरुचिकर और घृण्य बन जाता है और पुरुष के पवित्र एवं सर्व कल्याणकारी कर्मों से जीवन मन्दिर प्रोज्ज्वल, स्वच्छ तथा आलोकमय हो जाता है और आध्यात्मिक साधना या परमात्म भक्ति ही इस मन्दिर की सर्वोत्कृष्ट ईंट है। इन ईंटों से बना जीवन-मन्दिर विश्व का दिव्यादर्श और सभी का आकर्षण केन्द्र बन जाता है।'

हे सन्त प्रवर!

प्रायः लोग पश्चिम की यान्त्रिक भौतिकवादी चकाचौंध से मोहान्ध हो भारत की अध्यात्म साधना एवं सन्त-परम्परा को प्रतिगामी, व्यर्थ एवं राष्ट्र प्रगति में बाधक मानने लगे हैं। देश के 56 लाख साधु बाबाओं के केवल खाने-पीने और भांग, चरस का दम लगाने का दृश्य देखकर लोग उन्हें परोपजीवी, दूसरों की कमाई चाटने वाले तथा समाज पर व्यर्थ भार मानने लगे हैं। एक बार भगवान् बुद्ध भिक्षा के लिए एक गृहस्थ के द्वार पर रुके। गृहस्थ ने तिरस्कारपूर्वक डांटते हुए कहा, 'बाबा! तू स्वस्थ शरीर का, हाथ-पांव वाला व्यक्ति है। तू काम न करके भीख क्यों मांगता है? देख, मैं प्रतिदिन खेत में हल चलाता हूँ, बीज बोता हूँ, खाद देकर खेत में उत्पादन करता हूँ। मैं किसी के द्वार पर भीख मांगने नहीं जाता। तू भी परिश्रम से खेती कर और स्वावलम्बी बन कर बिना भीख मांगे खा।' भगवान् बुद्ध ने मुस्कराते हुए उत्तर दिया, 'हे बन्धु! मैं भी खेती करता हूँ। मानव का मन मेरा खेत है, उत्साह एवं पुरुषार्थ मेरे बैल हैं, तप मेरा हल है, तितिक्षा मेरी छड़ी, सत्य और अहिंसा मेरे बीज हैं, करुणा मेरी खाद है और श्रद्धा जल है। इससे जो खेती होती है वह अमृत की खेती होती है। इसे न कोई लूट सकता है न जला सकता है।' यह सुन कर वह गृहस्थ किसान भगवान् बुद्ध के चरणों में गिर गया एवं उनसे दीक्षा की याचना की। हे महर्षे! आप भी कोटि-कोटि मानवों के मनों में जो आध्यात्मिकता एवं नैतिकता के बीज बो रहे हैं उसके फलस्वरूप मानवता का भविष्य परमोज्ज्वल होगा। आपका कथन है, ''कानून से नैतिक पतन छूट नहीं सकता। कानून चलता है और घूस-फूस चलते ही हैं। अतः कानून की अपेक्षा मनुष्य के नैतिक जीवन के उत्थान पर बल देना जरूरी है। ऐसा जीवन जहाँ झूठ और प्रपंच के लिए कोई स्थान नहीं। जहाँ झूठ नहीं वहाँ घूस कहाँ से आये? इसलिए सदाचार का पालन करो। सदाचार के पालन से स्वराज्य में सुराज्य हो जायेगा।

हे अमृत पुरुष! आज विदेशी धन के प्रभाव से यत्र-तत्र सामूहिक धर्म परिवर्तन कर धर्मप्राण भारत का स्वत्व लूटने का दुश्चक्र चल रहा है। यदि भारत में हिन्दू ही अल्पमत में हो गये तो धर्म निरपेक्षता एवं लोकतन्त्र का नाश तो हो ही

जायेगा, भारत की अध्यात्म-परम्परा भी खण्डित हो जायेगी तथा भारत फिर भारत नहीं रहेगा।

हे धर्म गुरु! हे धर्मपुराण ज्योतिर्धर योगेश्वर! आपने धर्म की महत्ता के विषय में गीता योग प्रकाश में कहा ही है—'धर्म युद्ध में युद्ध करना कर्तव्य पालन करना है।' अतः धर्म रक्षा युग का परम धर्म है।

हे महामहिम महापुरुष! हम आपके स्वागत में क्या पाद्य-अर्घ्य आचमनीय आसन पूजन निर्माल्य भेंट करें? सच्चे साधकों के हृदय कमल में ही आपका सिंहासन है, जहाँ त्रैलोक्य का ऐश्वर्य आपका भूषण है, सारी विचित्र घटनाएं आपकी लीला। आपकी वाणी ही बीज मंत्र है। बीज में जो रहस्य है वह क्या अनाज की दुकान में लगी अन्न की ढेरी में या पाकशाला में पकते हुए भोजन में प्रकट होता है? हम हाथ जोड़ कर, शीश नवा कर प्रार्थना करते हैं कि आपकी अमृत वाणी का बीज मंत्र हमारे चित्त उद्यान में अंकुरित हो, हम उसे संयम एवं तप का सुरक्षा वलय प्रदान करें, साधना की खाद और श्रद्धा का जल चढ़ावें, जिससे उस बीज की अन्तर्निहित श्यामलता, कोमलता, पुष्प रंग, विचित्रता और सुन्दर फलों की मधुरता प्रकट हो। इस प्रकार उसके स्पंदन, कम्पन, छाया, रूप, रस, गन्ध से देह-मन, प्राण परितृप्त हो तथा आत्मा के पूर्णानन्द की लहरों से जग एवं जीवन धन्य-धन्य बन जावें।

इन तुच्छ वाक् पुष्पों से ही आपका अभिनन्दन करते हुए

हम हैं आपके भक्त एवं
दर्शनाभिलाषी सेवक तथा
रांची नगर के नर-नारिगण

पूज्यपाद महर्षि मेँहीँ परमहंस के चरणकमलों में अभिनंदन पत्रम् द्वितीय

हे भारत की आध्यात्मिक रंगभूमि को सुशोभित करने वाले, सन्तों की दिव्य परम्परा के युग दुर्लभ युगावतार! इस धर्म प्राण भारत देश के अहिंसा-प्रवण मगध प्रान्त के प्रकृति-प्राण छोटानागपुर क्षेत्र की, स्वर्ण-रेखा-तट-तीर्था इस रम्य रुचिर रांचीनगरी में हम आपका हार्दिक अभिनन्दन कर स्वयं कोटिशः आनन्दित हो रहे हैं।

हे सन्त-शिखामणि! आप त्रिताप-तप्त, क्लेश-संतप्त संसार को अपने ज्ञान के अमृत छींटे मार कर पुनः जीवन दान करने वाले हैं, यह पृथ्वी आप जैसे सन्तों की पावन चरण धूलि के स्पर्श से ही अभी तक जीने योग्य बनी हुई है। आप सन्त ही मानव जाति के प्राण, सृष्टि के सौभाग्य एवं संसार रूपी पादप के अमृत फल हैं।

सीतल चन्दन चन्द्रमा तैसे सीतल सन्त

की सूक्ति के अनुरूप इस भवाटवी में जलने वाले जीवों को सोमरस की शीतलता का अमृत बांटने वाले और मुक्ति का चंदन तिलक लगाने वाले हे सन्त भगवन्त! हम आपके पावन पादपद्मों में कोटिशः नमन करते हैं।

यह छोटानागपुर की रम्य वनस्थली उस विंध्याचल पर्वत की ही पूर्वी पर्वत शृंखला है जिसे महर्षि अगस्त्य ने पार कर सर्वप्रथम दक्षिणापथ में प्रवेश किया था। यहीं से दंडकवन प्रारम्भ हो जाता है और यहीं के वनवासी वानरों को प्रभु रामचन्द्र महाराज ने भक्ति का अमृत पिला कर एक विशाल सेना के रूप में संगठित किया, जिसने त्रिलोकजयी रावण का कलेजा कंपा दिया। इसी रांची जिला में भक्तराज हनुमानजी का जन्म स्थान आंजन प्रसिद्ध है, जहाँ अभी तक गोदी में हनुमानजी को लिये अंजनी माता का प्राचीन मंदिर वर्तमान है। रोहतास गढ़ से प्रारम्भ कर इस सारे छोटानागपुर क्षेत्र को महाभारत काल में करुषखण्ड कहा जाता था और यहाँ की सब से बड़ी उरांव वनवासी जाति के लोग अभी तक अपने को करुष या कुड़ख कहते हैं। जनमेजय के नागयज्ञ से बचकर जो

एक पुण्डलीक नामक नाग वाराणसी होते हुए रांची जिला के सुतियाम्बे नामक ग्राम में आया था, उसी के अनाथ बच्चे को मादरा मुण्डा नामक एक वनवासी राजा ने पाला और उसी 'फणिमुकुट नाथ साहदेव' से यहाँ नागवंशी राजाओं की परम्परा प्रारम्भ हुई।

भगवान् बुद्ध एवं महावीर ने इस मनोरम वनस्थली में विहार किया था, अशोक ने सिमडेगा के मार्ग से कलिंग-विजय हेतु प्रयाण किया और हृदय परिवर्तन के पश्चात् केतुंगा (थाना बानो) में एक विशाल बौद्ध विहार बनवाया। भगवान् शंकराचार्य ने पुरीधाम से जो धर्म दिग्विजय प्रारम्भ की उसके अन्तर्गत उन्होंने टांगीनाथ महादेव (थाना चैनपुर) एवं देवाकी (थाना घाघरा) में विशाल शिव मन्दिर स्थापित किये। श्री श्री चैतन्य महाप्रभु ने बुण्डु, तमाड़ के रम्य वनों को देखा तो उन्हें वृन्दावन की याद आ गई। यहीं के बिरसा भगवान् ने विदेशी शासन एवं विदेशी पादरियों के विरुद्ध एक विराट क्रान्ति की और वह वीर स्वदेश एवं स्वधर्म के लिए बलिदान हो गया। आचार्य स्वामी प्रणवानन्द, परमहंस योगानन्द, महात्मा गांधी आदि महापुरुषों ने भी इस भूमि को अपने चरणों से पावन किया है। आज आप जैसे भक्ति के भूषण, स्वधर्म के रक्षण एवं वैराग्य के संरक्षण स्वरूप महर्षि का प्रथम बार चरण चुम्बन कर इस धरती का रोम-रोम, घास का प्रत्येक तिनका मानो रोमांचित हो उठा है तथा दशों दिशाएं एक नूतन इतिहास रचना की अपेक्षा से पुलकायमान हो रही हैं।

दिके दिके रोमांच लागे, मर्त्य धूलिर धासे धासे।

हे तपोनिधे! हे भारत के सच्चे भाग्य विधाता! आप भारत की राजनीतिक स्वाधीनता को एक दृढ़ आध्यात्मिक आधार प्रदान कर भारत की नींव मजबूत करने के महत् कार्य में लगे हैं। 1930 में गांधीजी द्वारा प्रणीत स्वाधीनता आन्दोलन में जब सत्याग्रही यह गीत गाते थे—

आओ वीरों, मर्द बनो अब, जेल तुम्हें भरना होगा।
सत्याग्रह के समर क्षेत्र में, सन्मुख थिर डटना होगा।

तब आप उसी को आध्यात्मिक पुट देकर गाया करते थे—

आओ वीरों मर्द बनो अब, जेल तुम्हें तजना होगा।
मन निग्रह के समर क्षेत्र में, सन्मुख थिर डटना होगा।

हे मुक्तिदाता सद्गुरु! आप अज्ञानियों के लिए ज्ञानांजन, साधकों के साधन और सिद्धों के समाधान हैं। जिस प्रकार अमूर्त ऋतुराज के आगमन की सूचना मिलते ही सारी वनश्री प्रसन्नतापूर्वक पुष्पवती, फलवती, रसवती होकर बड़ी सज-धज से उसके स्वागत के लिए तत्पर रहती है, उसी प्रकार निर्गुण, निराकार

परमब्रह्म, परमात्मतत्त्व ही दयाभाव से प्रेरित हो सगुण-साकार श्री सद्गुरु रूप में विश्व कल्याण के लिए जगती तल पर अवतरित होता है।

अपने जीवभाव से ऊबकर जीवात्मा ही नहीं, देवत्व से ऊबकर देवतागण भी ब्रह्मनिवास में प्रविष्ट होने का शुभ योग श्री सद्गुरु रूपी ज्योतिषी से पूछने आते है।

हे अर्थ-शुचिता के व्याख्याता और कर्मयोग दीक्षाता! आज देश में और पूरे मानव समाज में जो भ्रष्टाचार व्याप्त हो रहा है उसका मूल कारण अर्थ-शुचिता का अभाव ही है। बिना शुद्ध आजीविका के शुद्ध विचार और विवेक सम्भव नहीं हैं। इसी विश्वास के कारण हम देखते हैं कि नामदेव 'सोने की सूई' और 'रूपे का धागा' लेकर भक्ति भाव से सीवन सीता रहा और चित्त को हरि में पिरोता रहा। कबीर 'झीनी झीनी चदरिया' बुनता रहा तथा रविदास जूता गांठते हुए प्रत्येक टोभ में हरि नाम गुंजाता रहा। हे सन्तकुलशेखर! आपने अपने दीक्षागुरु बाबा साहब के आदेशानुसार केले और बांस की खेती की तथा साधनाकाल में अपने को स्वावलम्बी बनाकर एक आदर्श मर्यादा निभाई।

हे परम दयालो!

गुजरात के एक सन्त कहते—'किसान को मेरे पास आने के लिए समय कहाँ है? उसे तो धूप में खेती करके अन्न पैदा करना और दुनिया को खिलाना है। मैं ही उसके खेत में जाकर उसके पीछे-पीछे चलूंगा। वह हल चलाकर जमीन को जोते और मैं अपनी वाणी चला कर उसके दिल और दिमाग को जोतूं। दोनों अपनी-अपनी खेती करेंगे।' बैल के पीछे-पीछे चलता था किसान और किसान के पीछे-पीछे चलता था साधु।

बजाय इसके कि रांची के लोग आप जैसे अमृत के मेघ एवं ब्रह्मानन्द के सरोवर के पास पहुँचते, आप स्वयं चलकर यहीं पधारे हैं ताकि रांची के व्यस्त लोग भी अमृत से वंचित न रह जावें। हम किन शब्दों में आपका धन्यवाद करें?

हे परमहंस प्रभो! एक बार सन्त कबीर का ब्रह्मज्ञानी पुत्र कमाल वर्षा से बचने हेतु एक झोंपड़ी के किनारे खड़ा हो गया। झोपड़ी से, चमड़े की मशकें सीने वाला दादू चमार बाहर आया और कमाल को भीतर ले जाकर एक गन्दे से चमड़े को पोंछ कर उस अतिथि को बैठने के लिए आसन दिया। कमाल के नेत्रों से अश्रुधारा प्रवाहित हो उठी। दादू ने क्षमायाचना करते हुए कहा—'मेरी झोपड़ी में चमड़े के सिवा और कुछ आसन योग्य नहीं है।' कमाल ने कहा—'जैसा सरल, स्वाभाविक सच्चा प्रेम तुमने दिखाया है वैसा बहुत कम में होता है। जैसे मैं तेरी झोपड़ी के द्वार पर खड़ा था, वैसे ही मेरे प्राण प्रभु भी इसी भाव से रोज इस जीवन

के द्वार पर खड़े रहते हैं और रोज ही वे व्यथातुर अन्तर् से लौट जाते हैं। जो कुछ भी सामान्य वस्तु मेरे पास है उसे तो मैं इस तरह सहज भाव में नम्र एवं निरभिमान होकर उनके सम्मुख बिछा नहीं पाता हूँ। यही मानव जीवन की करुण कहानी है।'

हे भक्तिमन्त, भगवन्त, सन्त, सिद्ध, सद्गुरु! आज हम दादू के समान अपना मैला-कुचैला, कंगाल की कुटिया का तुच्छ आसन देकर, तुच्छ वाणी के रूखे-सूखे पुष्पों से जो स्वागत कर रहे हैं कृपया उसे स्वीकार कर हमें आशिष् प्रदान कीजिएगा।

रांची अधिवेशन
28 अप्रैल, 1979

हम है आपके भक्त एवं
मार्गदर्शनाभिलाषी सेवकगण
रांची के नर-नारिवृन्द

अनियन्त्रित काम, क्रोध तथा लोभ प्राणी के पतन में हेतु है। अतएव उत्थान में बाधक हैं।

—श्री मज्जगद्गुरु-शंकराचार्य
स्वामी निश्चलानन्द सरस्वती

× × ×

स्वामी शिवानन्दजी सरस्वती का सहज सरल उपदेश है—Eat a little, drink a little, sleep a little, think a little, serve a little, meditate a little, enquire who am I and be free, know the knower, see the seer, perceive the perciever and be free.

प्रथम प्रवचन : मानव जीवन सोद्देश्य

मानव जीवन में विश्राम कर सके। यदि सिर्फ दौड़ा ही दौड़ा पर विराम नहीं। यदि सिर्फ संग्रह ही संग्रह किया, त्याग नहीं किया तब सारा जीवन बेकार है, निरुद्देश्य है।

हम किसलिए दिनभर परेशान हुए, किसलिए झूठ बोलते हैं? किसलिए कालाबाजारी की, किसलिए मिलावट की? जिनके लिए इतना सब नाटक कर रहे हैं? क्या वे महल, पुत्र, पत्नी ये साथ जाएंगे? अपने ही हाथ से अपने पांव में क्यों कुल्हाड़ी मार रहे हैं?

मिट्टी के तेल में पानी मिलाकर अधिक कीमत पर बेचना, चीनी ब्लैक में बेचना, अफसरों के आगे-पीछे घूमना आदि किसलिए करते हैं?

दिनभर के सांसारिक व्यवहार में अपने को इतना व्यस्त रखते हैं कि कहीं ओर जाने की, सोचने की फुर्सत नहीं है। कोई कहे चलो थोड़ा काम है तो तुरंत कहता है अभी मुझे मिट्टी के तेल के लिए लाइन में लगना है। फिर थोड़ी देर बाद पुनः कहता है अब तो थोड़ा देश के सम्बन्ध में विचार करें तो वह तुरन्त कहता है—अभी तो मुझे फुर्सत नहीं, चीनी लानी है। फिर थोड़ी देर बाद पुनः पूछते हैं, चलो, अब तो थोड़ी देर धर्म सम्बन्धी कुछ विचार कर लें, भगवान् का नाम ले लें तो तुरन्त कहता है भाई अभी तो समय नहीं है, अभी तो मुझे इन-इन अफसरों के पास जाना है।

आखिर ये सब किसलिए करता है। अपने तन के लिए तो क्या तुम्हारा तन तुम्हारे साथ जाएगा? धन के लिए तो क्या धन तुम्हारे साथ जाएगा? परिवार के लिए तो क्या परिवार तुम्हारे साथ जाएगा? एक भी साथ देने वाला नहीं तब फिर किसलिए कर रहे हो?

मनुष्य के जीवन में दो तत्त्व काम कर रहे हैं। प्रारब्ध और पुरुषार्थ। सुख-दुःख भोग का विधान प्रारब्ध है। इसके अनुसार सुख-दुःख मिलेंगे ही। चाहे तू इसे हँस-हँस कर भोग या छाती पीट-पीट कर, रो-रो कर भोग। तुम्हें भोगना तो पड़ेगा। पिछले जन्म में जो तुमने किसी को सुख-दुःख दिया है उसके अनुसार सुख-दुःख

का भोग मिलेगा ही। अतः भोग तो प्रारब्ध के अनुसार ही होगा। जिन्होंने कुछ भी शारीरिक मेहनत नहीं की, मानसिक मेहनत भी नहीं की, जो गद्दी पर बैठकर सिर्फ लखपति बन जाते हैं यानी बिना परिश्रम के लखपति बन जाना।

दूसरी ओर, एक मजदूर है। दिनभर परिश्रम करके दिन का भोजन ही जुटा सका और जो जुटाया और भोजन करने बैठा तो उसे चील छीनकर ले गयी। यहां भी प्रारब्ध के वशीभूत होता है। तो सुख-दुःख के भोग में प्रारब्ध ही बलवान है।

युगल किशोर बिड़ला कहते हैं कि हम तो जुआरी हैं। मालवीयजी ने एक मंत्र दिया, नारायण-नारायण जपने का। उसी को दिनभर जपता रहता हूं और गद्दी पर बैठा रहता हूं। जगह-जगह से मुनीमों के फोन आते हैं कि सोने का यह भाव है, खरीदना है या नहीं, चांदी का यह भाव है, हीरे का यह भाव है आदि। मैं तो सिर्फ इतना ही कहता हूं ले लो, या ना लो। इसी में लाखों-करोड़ों आ जाता है। प्रारब्ध बलवान है तभी बैठे-बैठे धन आ रहा है। धन अपने आप आ रहा है। बैठे-बैठे लॉटरी उठ जाना। किसी को बाप, दादा या श्वसुर की सम्पत्ति मिल जाती है।

ओबरायजी ने कहा—आप तो 50 प्रतिशत दान करते हैं, शेष से व्यापार बढ़ता है। फिर पुनः आता है फिर दान और व्यापार में लगाना तो आपका प्रारब्ध बनता जाता है इसलिए पुनः आता जाता है। तो भोग में प्रारब्ध बलवान है। परन्तु योग में प्रारब्ध का कोई दखल नहीं है। भगवान् को पाने के लिए पुरुषार्थ चाहिए। वहां हम बहानेबाजी करते हैं कि किस्मत में भगवान् का मिलना होगा तो मिल जाएगा। भगवान् तो पुरुषार्थ से मिलेगा पर यहां पर संतोष कर लेते हैं कि किस्मत में भगवान् होगा तो मिल जाएगा। और जहां संतोष करना है भोग में क्योंकि भोग तो प्रारब्ध के अनुसार मिलेगा, उसको कोई टाल नहीं सकता, वहां हम व्यर्थ ही पुरुषार्थ करते हैं। यानी जहां पुरुषार्थ करना है वहां संतोष कर लेते हैं और जहां संतोष करना है वहां पुरुषार्थ करते हैं।

सुख भोगते हुए भी भगवान् से मिल सकते हैं। दुःख भोगते हुए भी भगवान् से मिल सकते हैं।

तुलसीदास—जन्मते ही मां मर गई, पालन-पोषण दाई ने किया तो वह भी कुछ दिन में मर गई। तो लोगों ने यह धारणा बना ली कि जो भी इसके संसर्ग में आएगा वह मर जाएगा। जो इसको खिलाएगा, वह भी मर जाएगा। उसे भिक्षा भी नसीब नहीं हुई। सभी द्वारों पर ठोकर, दुत्कार मिलती। कंगाल था, अन्य भोजों में इस आशा से चला जाता था कि मेरी भी बारी आएगी, पर भोज में भी ताड़ना, लात, घूंसे, गाली मिलती भोज के बदले।

माता चली गयी, पिता ने त्याग दिया। तुलसीदास जी कहते हैं—विधाता ने मानो मेरे लिए भलाई लिखी ही नहीं। मैं द्वार-द्वार जाकर बिलखता हूं। ललचाता

हूं चार चने के दानों को। उन्हें ही चार फल (धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष) समझता हूं। मुझे देखकर दु:ख भी दु:खी हो जाता है। इतनी मेरी दुर्गति है कि कूकर जो टुकड़े खाते हैं उसके लिए मैं ललचाता हूं। पर उसने पुरुषार्थ किया और भगवान् को पा लिया। समाज को कभी अभिशाप नहीं दिया। उस मृत समाज के लिए संजीवनी विद्या फूंक गया। वह अपने विकास के लिए प्रारब्ध का बहाना नहीं बनाता। योग तो पुरुषार्थ से होता है। तुम्हें टुकड़े (रोटी) भले ही नसीब न हों पर भगवान् अवश्य मिल सकते हैं। आप संसार का बोझा ढोने के लिए या कुलीगीरी करने के लिए संसार में आये हैं क्या?

तो हम सबका उद्देश्य क्या है? भगवान् की प्राप्ति। तो योग के लिए पुरुषार्थ करो। पर हमने तो टुकड़े के लिए सारा पुरुषार्थ लगा दिया, दिन-रात मिल चलाना, आधी रात को उठकर हथौड़ा पीटना। पर भोग तो प्रारब्ध से मिल जाता है तो उसके लिए पुरुषार्थ की क्या आवश्यकता है। भोग के लिए व्यापार पर भोग तो प्रारब्ध से मिल जाता है, जिनके प्रारब्ध में नहीं है उसको कभी लाभ नहीं होता।

शरीर को सजाने, मकान को सजाने में जितना समय लगाया, उतना ही पुरुषार्थ भगवान् के लिए करो तो भगवान् मिल जाते हैं। पर हम उसके लिए पुरुषार्थ नहीं करते और बहानेबाजी करते हैं।

एक रोगी वैद्यजी के पास गया। पेट में कीड़ा, आंख भी दुखने को आई। तो वैद्य ने पेट में पाचन की कमजोरी के शमन के लिए शीतल और मीठी औषधि और आंखों के लिए अलग से जहरीली औषधि दी। पर मूर्ख ने आंख की औषधि पेट में और पेट की औषधि आंख में डाल ली। वैसे ही हमने भोग के लिए पुरुषार्थ और भगवान् के लिए प्रारब्ध को अपनाते हैं।

पेट के लिए बर्फानी इलाकों में, सड़क नहीं है तो पगडंडी से चलकर, घोर जंगल में भी व्यवसाय। नक्सलाइट से एक बच्चा मारा भी गया फिर भी व्यापार नहीं छोड़ा। दूसरे बच्चे को व्यापार में बैठा दिया, पुरुषार्थ लगाना चाहिए योग के लिए, प्रारब्ध लगाना चाहिए भोग के लिए। मानव जीवन की ऐसी दुखांत नाटक की कथा है।

अपने मोक्ष की बातें सोचो और जिस जगत् में आये हैं उस जगत् का भला भी कर जाएं। पर जगत् की भलाई में फंस मत जाओ। जगत् की भलाई करते हुए भी भगवान् को सदा याद रखो। उसको भगवान् की सेवा समझो। पर याद रखो जिस हाड़-मांस के पुतले की जो सेवा कर रहा है वह भी अन्त में श्मशान की धूल बनने वाला है। अतः भगवान् को मत भूलो। समस्त कर्म को भगवान् से जोड़ दें।

हे अर्जुन! सब कालों में निरन्तर मुझे स्मरण करता हुआ युद्ध करता जा। पर यह असम्भव-सा लगता है। युद्ध में तो क्रोध, आक्रोश, गर्जना, आवेश-शीघ्रता होगी।

भगवान् के स्मरण में शांति, धीरज, मन का समत्व होना चाहिए। मन के अन्दर राग-द्वेष नहीं होना चाहिए।

अतः यह तो असम्भव बात हुई। युद्ध करें तो भगवान् को स्मरण कैसे करें और भगवान् का स्मरण करें तो युद्ध कैसे हो। भगवान् के स्मरण में तो पराया कोई है ही नहीं। तो युद्ध कैसे?

जब तक संसार में रहें तब तक भगवान् को स्मरण करते हुए कर्म करो। क्रोध से युद्ध नहीं करो। राग-द्वेष से रहित होकर समत्व बुद्धि से कर्तव्य (युद्ध) करो। मुझे स्मरण करते हुए जूता गांठो, व्यापार करो, यानी जो-जो कर्तव्य हैं वह भगवान् के स्मरण के साथ करो तो वह कर्तव्य कर्म से भगवान् की पूजा हो जाएगी और उसका कर्म भी विकृत नहीं होगा। वह पलायनवादी, संसार के कर्तव्य को छोड़कर भागने वाला भी नहीं होगा। कर्तव्य का भी सुन्दर ढंग से पालन होगा। भगवान् की पूजा और स्मरण भी होता रहेगा।

कर से कर्म करो विधि नाना, मन राखो जहां कृपा निधाना।

उसका जीना संसार में सचमुच धन्य है, महान् है, जो प्रभु स्मरण करता हुआ कर्म करे। संसार के सब कर्तव्यों से, संसार से भागें नहीं पर भगवान् के स्मरण के साथ करें और याद रखें कि भगवान् की प्राप्ति के लिए कर्म कर रहे हैं। यह न समझें कि कर्म कर रहे हैं इसलिए भगवान् का नाम लें। जगत् के हित के लिए कर्म नहीं करें वरन् भगवान् की प्राप्ति के लिए कर्म करें। उससे जगत् का भला भी हो जाएगा, उससे जगत् में फंसेंगे नहीं और जगत् के हित के लिए कार्य हो जायेगा। भगवान् की प्राप्ति के लिए नहीं, नहीं तो हम जगत् में ही फंसे रह जाएंगे। अतः भगवत् प्राप्ति के लिए कर्म करो। उससे अपने आप जगत् का भला हो जाता है। आपके द्वारा किसी की सेवा हुई तो यह कहें कि मैंने तो भगवान् की प्राप्ति के लिए भगवान् की सेवा की। उससे आपका भला हो गया तो अच्छी बात। जिससे संसार में नहीं फंसोगे और भगवान् को भी पा जाओगे।

जगत् को हमने क्या दिया, इस पर विचार करो। अगर हम संसार में आये और कुछ दिया ही नहीं तो व्यर्थ ही जगत् में आये और हमारे आने का कोई प्रयोजन ही नहीं, हम तो व्यर्थ ही मेहमान बनकर पृथ्वी पर अपना बोझा बढ़ाने के लिए आये हैं तो हमारा आना व्यर्थ है। क्योंकि हमने समाज का कुछ बिगाड़ा तो नहीं पर समाज को कुछ दिया भी नहीं सिर्फ समाज का बोझ बढ़ाया तो हमारा जीवन व्यर्थ है।

संसार में आपा-धापी है, क्लेश है, दुःख है, ईर्ष्या है, द्वेष है। इसमें जो लग गया है वह पामर पशु तुल्य है यानी जो संसार में आकर कुकर्म किये और संसार को और भी गंदा किया, द्वेष की अग्नि ही भड़कायी, विष ही फैलाया तो उसका जीवन मानव से पशु, पशु से नरपिशाच है। वैसे जीवन को समाज भी धिक्कारता है। परिवार भी धिक्कारता है कि हाय ऐसा कपूत नहीं होता तो अच्छा, मर क्यों नहीं जाता। वह समाज और परिवार को कुकर्मों से सालता रहता है और समाज उसे शाप देता रहता है। प्रातः उसके दर्शन को अपशकुन मानते हैं।

हमने धरती पर आकर कुछ सुकर्म किये, कुछ सेवा की और हम भगवान् की शरण में गये तो उसके आने पर धरती वसुन्धरा बनती है, ऐसे पुरुषों के नाम स्वर्णाक्षर में लिखे जाते हैं—

कुलं पवित्रं जननी कृतार्था,
वसुन्धरा पुण्यवती च तेन।
अपार संवित् सुख सागरेऽस्मिन,
लीनं परे ब्रह्मीण यस्य चेतः।।

कुल पवित्र हो जननी धन्या,
वसुंधरा भी पुण्या उससे
अखण्ड सच्चिदानन्द ब्रह्म में
जिसका मन हो लीन निरन्तर

गोविन्द मिलन की यही तेरी बरिया,
अवर काज तेरे किते न काम
कर साधु संगत भज केवल नाम।
लाख शीश तेने दिये यमराज के भेंट
एक शीश तेने न दियो नारायण के हेतु।

तो हमें नित्य विचार करना चाहिए कि हम किस श्रेणी में आते हैं। हम जिस समय संसार में आये और आजतक में जगत् वैसा ही है। हम कुछ न दे सके। जगत् को कुछ अच्छी बातें न दे सके तो हमारा यहां आना व्यर्थ रहा। अगर हमने आकर गंदे जगत् को और भी गंदा किया तो हम नर-पिशाच हैं। और यदि हम आकर जितना हमको समाज ने दिया उससे कुछ अधिक हमने समाज को दिया तभी जीवन, जीवन कहलाने योग्य है। तुलसीदास को हमने चार चने के दाने नहीं दिये पर उन्होंने हमको संजीवनी अमृत विद्या दी। ऐसों का ही जीवन धन्य है, उसकी संसार में लोग भी वाह-वाही करते हैं और प्रभु भी वाह-वाही करते हैं। मैंने जिसके लिए उसे भेजा वह कार्य सिद्ध कर आया।

जिसने कमाया त्यागने के लिए, जिसने संघर्ष किया योग के लिए उसी का जीवन धन्य है।

जिसने संघर्ष किया भोग के लिए, जिसने कमाया भोग के लिए, वह जीवनभर अशांत, पीड़ित, दु:खी तो रहेगा ही साथ ही सुख से मरेगा भी नहीं। तड़पेगा, मोह उसे दबाएगा। पुनः-पुनः कूकर-सूकर, चूहे, सर्प की योनि में आकर अपने ही घर में बेटों से मारा जायेगा।

अत: अगर कोई अपनी दुर्गति चाहता है तो संसार का मोह, बोझ लेकर जाना, फिर आना। पुन: 84 लाख के चक्र में पड़ना और यह चक्र 84 प्रलय तक चलता रहेगा।

अरे! तुमने लाख शीश यमराज को भेंट किये पर तुम एक भी शीश नारायण को नहीं दे सके। मनुष्य योनि में ही भगवान् से मिलने की बारी है और तो योनि विष्ठा खाने के लिए है। फिर मनुष्य योनि में आकर भी तू विष्ठा खाने में लग गया तो व्यर्थ है तुम्हारा मनुष्य जीवन। यह योनि तो भगवान् को पाने के लिए है। और कोई काम तुम्हारे काम आने वाला नहीं।

जो कुछ है, था, सब कुछ संसार को लुटाकर चला जा जैसे दिव्य पुरुष गये। तब लोग भी तुम्हारी वाह-वाही करेंगे और प्रभु भी वाह-वाही करेंगे कि मैंने जिसके लिए भेजा वह कार्य सिद्ध कर आया।

यदि शिक्षित लोग सामाजिक शिक्षा को अंगीकार करते हैं तो उन्हें जनसाधारण के साथ घुल-मिलकर रहना होगा। जो लोग जनता का नेतृत्व करना चाहते है उन्हें यह समझाना होगा कि जनता की इच्छा—आकांक्षाएं क्या है, उनकी धार्मिक भावना कितनी गहरी है और राष्ट्रीय हित के लिए उनके सामर्थ्य का किस प्रकार उपयोग किया जा सकता है।

—लोकमान्य बालगंगाधर तिलक

द्वितीय प्रवचन : विदेशों पर भारतीय संस्कृति का प्रभाव

विदेशों पर भारतीय संस्कृति का प्रभाव पर भाषण देते हुए प्रो. ओबरायजी ने बताया कि समस्त विश्व का अध्ययन करने से ऐसा पता चलता है कि भारतीय संस्कृति की छाप विश्व के जर्रे-जर्रे में व्याप्त है।

समस्त विश्व में भारतीय संस्कृति की छाप को मिटाने के लिए जमाने के साथ विदेशियों ने भरपूर प्रयास किया। परन्तु, भारतीय संस्कृति की छाप इतनी गहरी थी कि उसका वे जड़ से खात्मा नहीं कर पाए। आपने बताया कि विश्व में भारतीय संस्कृति की छाप अभी भी जगमगाती नजर आ रही है।

मैक्समूलर जैसे विद्वान् ने सब दिन भारत की महिमा गायी और उसने भारत को एक पवित्र एवं संस्कृतिप्रधान देश माना। विदेशियों ने युग-युग से भारत को दर्शनशास्त्र का केन्द्रस्थल माना। ईसाइयों के धर्म में बौद्ध धर्म की झांकी देखी जा सकती है।

नेपाल में, जो हमारा पड़ोसी देश है, पूर्ण रूप से भारतीय सभ्यता है। वहां का रहन-सहन, वेश-भूषा, धर्म आदि सभी भारतीयता के रंग में रंगे हुए हैं।

युग-युग से लंका का भारत के साथ तादात्म्य रहा। लंका की संस्कृति पूर्णतया भारतीय संस्कृति है। भगवान् बुद्ध ने लंका में अपने धर्म का प्रचार किया। वहां के बौद्ध भिक्षु भारत को अपने देवस्थान के रूप में देखते हैं।

श्याम देश (थाइलैंड) में पूर्ण रूप से भारतीय संस्कृति विराजमान है। श्याम देश में राजाओं के नाम के साथ राम शब्द जुड़ा होता है। कारण, वहां राम का अर्थ राजा होता है। वहां अभी भी रामलीला, कृष्णलीला का मंचन होता है। वहां जब इस्लाम का प्रवेश हुआ तो उन्होंने भारतीय संस्कृति को मिटाने का बहुत प्रयास किया। पर वे भारतीय संस्कृति की छाप को मिटा न सके। वहां राम, लक्ष्मण, हनुमान की प्रतिमाओं के प्रति लोगों में काफी आस्था है। वहां के लोग राम राज्य के आदर्श को सर्वोपरि मानते रहे हैं। वहां के कुछ नगरों के नाम हैं—अयोध्या, विष्णु आदि जो भारतीय नाम हैं।

बोर्निया का नाम कलिमन्द था।

मलेशिया में भारतीय संस्कृति व्याप्त है। इनके नामों में भारतीयता की छाप अभी भी शेष है।

इण्डोनेशिया में अभी भी इस्लामी सत्ता रहने के बावजूद वहां की संस्कृति भारतीय है। राष्ट्रपति सुकर्ण के पिता ने उनका नाम कर्ण के बजाय सुकर्ण रखा। यहां की राजधानी जकार्ता का असल नाम योग्यकर्ता था। परन्तु, डच लोगों के प्रभाव के कारण यहां की भारतीय संस्कृति को गहरा धक्का लगा। सुकर्ण के पिता स्वयं संस्कृत के ज्ञाता थे और वे रामायण का पाठ करते थे।

जावा में भगवान् विष्णु का विशाल मंदिर है। ओबरायजी ने बताया, कोरिया में बौद्ध धर्म का प्रभाव अभी तक है। आपने बताया कि वह भी एक युग था जब चीन के लोग भारतीय ग्रंथों को पढ़कर गौरवान्वित अनुभव करते थे। ह्वेनसांग ने भारत आकर भारतीय संस्कृति की रूपरेखा देखी। परन्तु, दुर्भाग्यवश साम्यवाद के आगमन के बाद से चीन का रूप ही बदल गया और भारतीय संस्कृति का नामोनिशान मिटा दिया गया।

प्रो. ओबराय ने अंत में कहा कि आज समस्त पश्चिमी देशों में गीता, रामायण आदि भारतीय ग्रंथों को बड़े आदर से पढ़ा जाता है। कवीन्द्र रवीन्द्र की गीतांजलि ने विश्व को भारतीय संस्कृति से परिचय कराया।

भारतीय संस्कृति विदेशियों की दृष्टि में—पेरिस विश्वविद्यालय के प्रो. लुई टिनाऊ लिखते हैं कि संसार के देशों में भारतवर्ष के प्रति लोगों का प्रेम और आदर उसकी बौद्धिक, नैतिक और आध्यात्मिक सम्पत्ति के कारण से है।

हिन्दू लोग धार्मिक, प्रसन्न, न्यायप्रिय, सत्यभक्त, कृतज्ञ और प्रभु की भक्ति से युक्त होते हैं।—सैमुअल जॉनसन

ध्यान की प्रणाली को भारतीयों ने जन्म दिया है। उनमें स्वच्छता तथा शुचिता के गुण वर्तमान हैं। उन लोगों में विवेक है तथा वे वीर हैं।—अलहजीज (8वीं शताब्दी ई.)

ज्योतिष, गणित, आयुर्वेद एवं अन्य विद्याओं में भारतीय लोग बढ़े हुए हैं। प्रतिमा निर्माण, चित्र लेखन, वास्तुकला में वे पूर्णता तक पहुंच चुके हैं। उनके पास काव्य, दर्शन, साहित्य तथा नैतिक शास्त्रों का संग्रह है।—अलहजीज (8वीं शताब्दी ई.)

समस्त भारतीय, चाहे वे प्रासादों में रहने वाले राजकुमार हों या झोपड़े में रहने वाले प्रजाजन—संसार के सर्वोत्तम शील-सम्पन्न लोग हैं। मानो यह उनका जातिगत धर्म हो। उचित और आदरपूर्वक व्यवहार का प्रत्युत्तर वे अवश्य देते हैं, तथा दयालुता एवं सहानुभूति के किसी कर्म को भूलते नहीं।—लार्ड विलिंग्टन

पृथ्वी के सूर्य के चारों ओर घूमने के रहस्योद्घाटन का श्रेय भी भारत को ही है। सूर्य तथा चन्द्रग्रहण के समय को बिल्कुल ठीक आंकने का श्रेय भी भारतवासियों को ही है।

सबसे अधिक तो है भारत का अत्यधिक प्रभाव पश्चिम पर। भारत से कई विद्वान् मिस्र के बन्दरगाह सिकन्दरिया में व्यापारियों के साथ जा पहुंचते थे, तभी तो पाइथोगोरस आदि विचारकों पर उपनिषदों के दार्शनिक विचारों का प्रभाव पड़ सका। पिछले डेढ़ सौ वर्षों में तो यूरोप और अमरीका के विचारकों ने मुक्तकंठ से भारतीय दर्शन की सराहना की। गेटे Geothe ने सर विलियम जोन्स कृत शकुन्तला नाटक के अनुवाद से अपने ड्रामा Faust की भूमिका का आधार प्राप्त किया। फिकटे और हैगल भारत के एकतत्त्ववाद के आधार पर एकेश्वरवाद पर रचनाएं प्रस्तुत कर सके। अमरीका में भारतीय दर्शन के प्रभाव को थोरो और इमर्सन ने बहुत ही प्रचारित किया।

अब तो जबकि सारी दुनिया छोटी हो गई है, इसके किसी भी कोने में केवल चन्द घंटों में मनुष्य पहुंच रहा है। सबकी आँख भारत पर जमी है। अपनी आध्यात्मिक पिपासा की तृप्ति के लिए ए.एल. बाशम के शब्दों में, जो भारत की विश्व को देन की सराहना करते थकते नहीं, जब संसारभर की एक संस्कृति होगी और वह होगी भारत की संस्कृति पर आधारित।

आज के युवकों को अपने गौरवपूर्ण भाग्य की सराहना करनी चाहिए जो प्रभु की कृपा से उनको ऐसी उज्ज्वल संस्कृति की पुण्यनिधि पूर्वजों से प्राप्त हुई है, जिसे बनाए रखने का उत्तरदायित्व उन पर आता है।

प्रो. ओबराय प्रायः कहा करते थे कि मेरी आंखों पर पट्टी बांधकर विश्व के गोल मानचित्र (ग्लोब) को घुमा दीजिये। मैं उस ग्लोब पर, बंद आंखों से, जहां भी अपनी अंगुली रख दूं, उस स्थान पर भारतीय संस्कृति की छाप एवं भारतीय दर्शन की देन प्रमाणित न कर सकूं तो मेरा सिर कलम कर दीजिए।

तृतीय प्रवचन : गुरु नानक दिवस पर

आज गुरु नानकदेव का प्राकट्य दिवस है। इस दिन सभी यशोगान उन्हीं का होना चाहिए। मेरे जैसे तुच्छ शरीर का मान कर एक तुच्छ व्यक्ति को ऊंचा उठा रहे हैं। मैं उसके योग्य नहीं हूं। Give me poision but not praise. विष भले दो पर मान मत दो। शिवजी ने विष को पचा लिया। पर, भस्मासुर की प्रशंसा को नहीं पचा सके और भस्मासुर उन्हीं को भस्म करने को प्रवृत्त हुआ। जब शिवजी ही मान को नहीं पचा पाए तो मैं कौन होता हूं? रास्ता कठिन है। अनेक कठिनाई है। वीर-धीर पुरुष यदि अहंकारी हो जाए, यदि प्रशंसा से फूल जाए तो वह जीती हुई बाजी को हार जाएगा। प्रशंसा को पचाना कठिन कार्य है। ईश्वर से प्रार्थना है कि मैं एक-एक कदम इस पर चलूं, पर प्रशंसा मेरी मत करो। भारत मां की करें, जगद्गुरु विभूतियों की करें।

मैं जगद्गुरु महापुरुषों के चरणों की धूल को विश्व में खोजता हूं। कितने प्राणों ने तपस्या कर विश्व के आंगन में भारतीयता का परिचय दिया। मैं अवाक् रह जाता हूं। मैं सोचता हूं कि मेरे देश के महापुरुषों ने कितना कष्ट, तितिक्षा सही तथा विश्व को निःशुल्क ज्ञान बांटा। प्राण देकर सौरभ बांटा। ऐसे महापुरुष और कहां हैं इस दुनिया में?

सर्वप्रथम महर्षि अगस्त्य ने विंध्याचल को पार किया था। रावण विन्ध्यवासियों को भड़काता था कि हम असुर और आप वानर मिलकर आर्यावर्त्त पर हमला करेंगे। इस तरह विन्ध्याचल सिर उठाने लगा था। विन्ध्याचल के नीचे उरांव, भील, मुण्डा आदि बसने वाली अनेक जातियों, उपजातियों को सामूहिक रूप से वनवासी (वानर) नाम से पुकारा जाता था। जैसे नगर में रहने वाले को नागर कहा जाता है, उसी प्रकार वन में रहने वाले को वानर कहा जाता है। वनेषु वसन्ति इति वानराः। वन में रहने वाले, कन्द-मूल खाने वाले वानर—शिव वामन आप्टे कोश। छोटानागपुर के उरांव जनों में लगभग 12 गोत्र ऐसे हैं जिसका अर्थ ही वानर है। यथा हनुमान, बजरंग, गड़ी, रेछी, बरई, बसोर, मैना, तिग्गा, वानरा, खंगार, पवन और वंशज। वानर को ये पूज्य मानते हैं। वानर हत्या को पाप मानते हैं।

श्री शरतचन्द्र राय अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'ओरांवज ऑफ छोटानागपुर' में उरांव जाति के विषय में बतलाते हुए कहते हैं, दुनिया का सबसे बड़ा रामनवमी का झण्डा रांची में निकलता है। झण्डे पर हनुमानजी होते हैं।

भगवान् श्रीराम ने अपना राज्याभिषेक हो जाने पर सबको पुरस्कार बांटे। किन्तु, श्री हनुमानजी को क्या दें यही समझ में नहीं आ रहा था। भगवान् राम ने कहा—

एकैकस्योपकारस्य प्राणान् दास्यामि ते कपे।
शेषस्येहोयकाराणां भवाम् ऋणिनो वयम्।।
मदंगे जीर्णतां यातु यत् त्वयोपकृतं कपे।
नरः प्रत्युपकाराणामापत्स्वायाति पात्रताम्।।

वा. राम. 7/40/23-24

हे हनुमान जी! तुम्हारे एक-एक उपकार का ऋण चुकाने में मैं प्राण निछावर करने को उद्यत हूं। परन्तु, तुम्हारे जो अनेकों उपकार शेष रह जाते हैं उनके लिए तो हम सपरिवार सदैव तुम्हारे ऋणी ही रहेंगे। मैं नहीं चाहता कि मैं तुमसे उऋण हो जाऊं। मैं चाहता हूं कि मैं तुम्हारा चिर ऋणी बना रहूं और तुम्हारे उपकार मेरे अंग में पच जाएं। क्योंकि किसी का बदले में प्रत्युपकार तभी किया जा सकता है जब वह भी वैसी आपत्ति में पड़ा हो। मैं स्वयं भी नहीं चाहता तुम पर कोई आपत्ति आये। (अर्थात् मैं नहीं चाहता कि तुम कभी विवाह करो, तुम्हें वनवास मिले। पत्नी के हरण में रोते-भटकते रहो और हम तुम्हारी सहायता कर सकें।) अतः प्रगाढ़ आलिंगन ले रहा हूं।

अगस्त्य ने बताया कि रावण के कहने पर मत चलो। राम आ रहे हैं उनका स्वागत करो। उन्होंने आन्ध्रप्रदेश में भिल्लनी को बताया कि राम आ रहे हैं। पंचवटी (नासिक), महाराष्ट्र में राम के दक्षिण आगमन पर राम का स्वागत किया।

रावण के दूत कहते हैं, टैक्स लाओ। ऋषि-मुनि, वनवासी कहते थे हम तो राम को राजा मानते हैं। इस पर वे ऋषि-मुनियों को खाकर हड्डियों के ढेर कर देते थे। इन हड्डियों के ढेर को देखकर भगवान् राम प्रतिज्ञा करते हैं—

निसिचर हीन करउं मही, भुज उठाइ पन कीन्ह।

तब अगस्त्य ने आदित्य हृदयस्तोत्र राम को दिया। दिव्य अस्त्र-शस्त्र दिये। फिर तमिलनाडु में जाकर तमिल का व्याकरण लिखा 'अगस्त्यीयम'। फिर अगस्त्य ने समुद्र से मार्ग मांगा। तीन चुल्लू में सागर को पी लिया। जैसे क्रोध को पीना क्रोध को पार करना, उसी तरह समुद्र को पीना समुद्र को पार करना है। समुद्र पार कर मलय एवं इंडोनेशिया द्वीप समूह में भारतीय संस्कृति का प्रसार किया। अगस्त्य

जी की हजारों मूर्तियां मलेशिया एवं इंडोनेशिया में हैं। क्या आप जानते हैं अयोध्या के नाम पर 126 देशों के लोग सिर झुकाते हैं। आपने अपने आपको भुलाया है। दुनिया में अपनी दौलत को नहीं पहचानने वाले ठोकर खाते हैं। अरे नाइट क्लब, बियर टपलेट, हिप्पी वाले सोचो तो क्यों दुनिया की गंदगी चाटते हो?

इंडोनेशिया में सबसे बड़ा रामायण-मूर्तिशिल्प है। जिन पर रामायण की मूर्तियां उत्कीर्ण की हुई हैं। आप देखें तो आपके नेत्र धन्य हो जाएं। इंडोनेशिया दुनिया में सबसे पहला अन्तर्राष्ट्रीय रामायण सम्मेलन करवाता है। वहां हर साल रामायण महोत्सव राजकीय स्तर पर आयोजित होता है। इसमें मुस्लिम अभिनेता श्रद्धापूर्वक राम, लक्ष्मण, हनुमान आदि का हृदयस्पर्शी अभिनय कर श्रोताओं को भावविभोर कर देते हैं। इंडोनेशिया में रामलीला के मंचन पर पाकिस्तान के राजदूत ने कहा कि कुरान में रामलीला का आदेश कहां है? इंडोनेशिया के राजदूत ने कहा—We have not changed our history. We cannot change our blood. Ramayan & Mahabharat are in my blood. यदि भारत का मुसलमान इंडोनेशिया की तरह होता तो आप हम उल्हासनगर में नहीं होते। सिंध और पंजाब में होते। संस्कृति की उपेक्षा से देश की हत्या हो जाती है। भारत के मुसलमान Law Minister ने कहा 95 प्रतिशत मुस्लिम में हिन्दू रक्त है। यदि वे भारत की संस्कृति के प्रति उदार होते तो देश की हत्या नहीं होती। मुसलमानो! तुम भी भारतीय संस्कृति को मानो।

जब 1400 साल बाद यहूदी अपनी मातृभूमि वापस पा सकता है, तो क्या हम नहीं पा सकते? अवश्य पाएंगे। यह स्वप्न मैं देखता हूं। पाकिस्तान, बांग्लादेश और इराक के मनीषी सर ओकुल ग्रंथ में अबुल हिक्म की कविता देखें। R.K. Mission के स्वामीजी मिले। बगदाद के पास नानकदेव के बारे में शिलालेख है। उसे देखियेगा। मैंने उसे देखा है। जिस अरब में लोग तलवार लिए सैनिकों के साथ गए, वहां कमाल किया गुरु नानकदेव ने। सिर्फ माला लेकर गए।

बगदाद (इराक की राजधानी) में गुरु नानकदेव का 917 हिजरी का स्मारक है। जिसे मैंने देखा है। जिस पर पुरानी तुर्की मिश्रित अरबी भाषा में एक शिलालेख इस प्रकार है—

कोरद मुराद एलदी
हजरत रर्बे मजीद
बाबा नानक फकीर औलिया
कि इमारत जदीद।
यलयदा मिला दायद

व बकल्दी कि तारीखन

याय दी सबावे इजराईल

अज मरीदे सईद (सन् 917 हिजरी)

हे पंचनद देश के नानक महाराज! हे सप्त सिन्धु के महान् सपूत! तुमने अनेकों के मन की जिज्ञासाओं को शान्त किया। जैसे मधु का लोभी भौंरा फूल पर बैठा रहता है। वैसे ही हरवंशलाल का मन आप पर लोभित है। मैं भारतीय मनीषियों के इस कृत्य को देखता हूं तो गद्‌गद हो जाता हूं। आज मैं नानकदेव एवं आप सबसे आशीर्वाद मांगता हूं कि मैं इस पथ पर चलता रहूं।

हमारे पूर्वजों ने धर्मरक्षा के लिए सब कुछ साहसपूर्वक सहन किया था। यहां तक कि मृत्यु को भी भी गले लगाया। विदेशी विजेताओं ने मन्दिर के बाद मन्दिर तोड़े, किन्तु जैसे ही वह आंधी गुजरी मन्दिर का शिखर पुनः खड़ा हो गया। दक्षिण भारत के ऐसे कुछ प्राचीन मन्दिर विशेषकर गुजरात का सोमनाथ मन्दिर तुम्हें अक्षय ज्ञान प्रदान करेंगे। जाति (राष्ट्र) के इतिहास के प्रति जो गहरी दृष्टि वे प्रदान करते हैं वह ढेरों पुस्तकों से नहीं मिल सकती। ध्यान से देखो इन मन्दिरों पर सैकड़ों आक्रमणों एवं सैकड़ों पुनरुत्थानों के चिह्न किस तरह अंकित हैं। वे बार-बार नष्ट हुए और खण्डहरों में से पुनः उठ खड़े हुए। पहले की भांति सशक्त और नवजीवन से युक्त। यही हमारा राष्ट्रीय जीवन प्रवाह है। और इसका अनुसरण करो और गौरव प्राप्त करो।

—स्वामी विवेकानन्द

चतुर्थ प्रवचन : संस्कृतियों का प्रसार विश्व में

भारतीय संस्कृति पूर्ण प्रफुलित पुष्प के समान है। जिसके सुरभित पराग के बीज इतिहास की अनुकूल पवनों द्वारा सुदूर देश-देशान्तरों में ले जाए गए तथा कालान्तर में तद्-तद् देशों में भारतीय संस्कृति के सुन्दर पादप लहलहाने लगे तथा इस प्रकार सारा विश्व भारतीय संस्कृति की सुवास से परिपूर्ण हो उठा।

सम्भवत: भारत सबसे प्राचीन राष्ट्र है। इसलिए मनु भगवान् ने कहा यह राष्ट्र सबका अगुआ है। क्योंकि सबसे पहले जन्मा अत: बड़े भ्राता के नाते उसका यह दायित्व होता है कि वह अन्य छोटे भाइयों को शिक्षा दे। इसलिए भारत के ऋषियों ने एवं वेद भगवान् ने आज्ञा दी, घोष किया—

'कृण्वन्तो विश्वमार्यम्'

इस्लाम का भी यही नारा है। विश्व को इस्लाम के रंग में रंग देना। ईसाइयों का भी यही नारा है—विश्व को 20वीं शताब्दी में ईसा के चरणों में ले जाना। कम्यूनिस्टों का भी यही नारा है—वोल्गा से वाशिंगटन तक फैल जाना। अब इस पर विचार करें—भारत में जिस प्रेरणा से कहा गया कि कृण्वन्तो विश्वमार्यम् वह निष्काम निश्छल है। पर अन्यों ने जो कहा उस पर विचार करें। कम्यूनिस्टों ने कहा—हम सारी दुनिया को खून से रंग कर विश्व में कम्यूनिज्म थोप देंगे। अच्छा कार्य पर साधन दूषित है तो वह कार्य भी दूषित है। यदि साधन उचित नहीं है, सद्भाव है, पर परिणाम पर विचार नहीं करते हैं तब भी कर्म दूषित है। जैसे—पिता (डॉक्टर नहीं होने पर भी) पुत्र का आपरेशन करे तो उचित नहीं माना जाएगा। पिता का पुत्र के प्रति सद्भाव तो है पर उसका साधन उचित नहीं है और परिणाम पर भी उसने विचार नहीं किया है।

विश्व को आर्य बनाने के लिए हमारे ऋषि वीतरागी बने, लंगोटी पहनकर एक पोथी लेकर चले। कितनों को सागर की उत्ताल तरंगों ने लील लिया। कितनों को मगरमच्छों ने, कितनों को जलदैत्यों ने हजम कर लिया। पर हिम्मत नहीं छोड़ी और एक दिन दक्षिणपूर्व-एशिया में भारतीय संस्कृति की पताका फहराने लगी। रक्त की एक बूँद भी नहीं बहायी। अपने साथ सेना और धन को लेकर नहीं गये।

वहां की संस्कृति को नष्ट नहीं किया। दूसरे के कष्ट देने पर भी अपनी शांति का संदेश बांटा।

इस्लाम ने एक हाथ में कुरान और एक हाथ में तलवार लेकर कहा—कुरान को चुनो, या फिर तलवार की मार झेलो। जिस देश में गए उसको ध्वस्त कर दिया—स्पेन से इंडोनेशिया तक।

ईसाइयों ने धार्मिक अदालतें बनाई।

चेकोस्लोवाकिया में तीन लाख लोगों को जिंदा जला डाला। दबी हुई लाशों को पुनः फांसी दी। क्या ये लोग हमारे ऋषियों के सामने टिक सकते हैं?

मार्क्सवादियों की खूनी क्रान्ति—चीन की क्रान्ति में करोड़ लोग बलि चढ़ गए। तो क्या ये भारत के ऋषियों के सामने टिक सकते हैं? भारत के ऋषियों ने विश्व को सुसंस्कृत एवं संस्कारित बनाने के लिए उद्यम किया और इसके विपरीत अन्य तो अपने अहंकार के पोषण के लिए ही दुष्कर्म करते रहे।

विदेशी मनीषियों के विचार हमारे हिन्दुत्व के प्रति कितने ऊंचे है, किन्तु हम स्वयं अपने को भूल बैठे हैं। यह कितनी लज्जा का विषय है।

हिन्दू धर्म विश्व धर्म रहता हुआ सबका कल्याण-मंगल चाहता है, क्योंकि विश्व की विभिन्न जातियों का मूलस्रोत हिन्दू धर्म ही है।

—गुरुजी श्री माधवराव सदाशिव गोलवलकर

पंचम प्रवचन : ईश्वर कृत धर्म एवं मानव कृत धर्म

ईश्वर कृत सृष्टि का उपयोग सभी कोई समान रूप से करते हैं। जैसे सूर्य-चन्द्र, जल-वायु, अग्नि-आकाश आदि। मनुष्य कृत सृष्टि का उपभोग सभी कोई समान रूप से नहीं कर सकता। जैसे—पंखा।

सनातन धर्म अपौरुषेय है। ईश्वर कृत, अनादि है। इसलिए वेद का आयु (काल) किसी ने नहीं बताया। पश्चिम के विद्वान् लाख कोशिश करके भी वेद की आयु निर्धारित नहीं कर पाये और वेदों के प्रत्येक शब्द की शव परीक्षा करने के बाद भी वेदों के अर्थ का अनुसंधान नहीं कर पाए। इतना कठोर परिश्रम करने के बाद भी वेद उनके लिए बंद पुस्तक (Close book) बनी हुई है। वेद को विकासवाद के आधार पर नहीं समझा जा सकता।

मुहम्मद पैगम्बर 1400 हिजरी

ईसा—2000 सन्

मुहम्मद अन्तिम नबी और अब कोई नहीं।

ईसा में भी यही बात।

मुहम्मद व ईसा—आरम्भवाद अतः अंतवाद भी।

वेद में ऋषियों के नाम हैं। वैदिक सूक्तों के पूर्व उस विशेष ऋषि का नाम दिया हुआ है। ऋषि मंत्र स्रष्टा नहीं मंत्र द्रष्टा हैं। मंत्र का निर्माण नहीं किया, दर्शन किया है।

पंथ सब मनुष्यकृत हैं। मनुष्य पूर्णतया राग-द्वेष से मुक्त नहीं हो सकता। अतः मनुष्यकृत धर्म सम्पूर्णतः त्रुटिरहित नहीं हो सकता। अतः मनुष्यकृत धर्म सबके लिए उपयुक्त नहीं हो सकता है। सिर्फ एक सम्प्रदाय विशेष के लिए उपयोगी हो सकता है।

बाइबिल के अनुसार सृष्टि की रचना छह हजार वर्ष पूर्व हुई। छह दिनों में सृष्टि सातवें दिन विश्राम किया God ने।

हमारे यहां संकल्प मात्र से सृष्टि क्षणभर में निर्मित हुई। पहले तो भारतीय सृष्टि सम्वत् की हंसी उड़ाई गई। पर अब विज्ञान उसी को सत्यसिद्ध कर रहा है।

भारत के वैदिक साहित्य को समझने के लिए भारतीय पश्चिम के चश्मे, पश्चिम के कान और पश्चिम के मन और बुद्धि से मनन कर रहे हैं। यही गड़बड़ हो रही है। भारत को भारत की आँख से, कान से, मन और बुद्धि से समझना होगा।

धर्म को लेकर राजनीति करना—हिन्दू की विभिन्नता हमारी पराजय या दुर्बलता का कारण नहीं है। वरन् इसका कारण इसके मूल में जो भाव है, हम सब हिन्दू एक हैं, इस एकता के भाव को भूलना है। हम सबको एक कर रहे हैं अपने को छोड़कर, देशप्रेम को छोड़कर, स्वधर्म को छोड़कर।

कृष्ण जन्मे क्षत्रिय कुल में। कृष्ण पले-बढ़े वैश्य व शूद्रों में। अब ठेका ले लिया ब्राह्मणों ने।

जात-पात पूछो मत कोय,
हरि को भजे सो हरि का होय।

हरि भक्ति से शबरी, जटायु, हनुमान पूज्य बन गए। हरि भक्ति के बिना रावण, कंस, दुर्योधन तिरस्करणीय बने। भक्ति से यदि कोई दुर्बल बनता है, डरपोक बनता है तो उसका अर्थ भक्त नहीं है। दुर्बल मन भक्त नहीं हो सकता।

भक्त वह है जो पीर पराइ जाने रे।
पर दुःख के उपकार करे।
मन में अभिमान न आने रे।

पर जो अकारण अन्यों को काफिर एवं हिडेन मानकर उन पर पीड़ा थोपते हैं, उसी को पुण्यकृत मानते हैं, स्वर्ग प्राप्ति का मार्ग मानते हैं, उन्हें कैसे भक्त कहा जा सकता है?

सम्प्रदाय रहे, साम्प्रदायिकता नहीं। हम तो धर्म का, सबमें जो अच्छाई है उसका प्रचार करते हैं। दूसरे हमारी दुर्बलता का, हमारी अच्छाई को भी बुराई के रूप में पेश करते हैं।

नाई, धोबी, दर्जी पश्चिम को सभ्य बनाता है। स्वामी रामतीर्थ पश्चिमी सभ्यता की तुलना सोने के वरक में गोबर की लिपटी हुई मिठाई से करते हैं। भारत चरित्र से सभ्य बनता है। पैगम्बर, ईश्वर पुत्र ईसा और साक्षात् भगवान् में अन्तर है।

हिन्दू धर्म सब धर्मों की माता है।

सम्राट अशोक ने अपील की, धर्मचक्र प्रवर्तन का कार्य वृद्धों द्वारा नहीं युवाओं द्वारा ही सम्भव है। स्वयं सम्राट अशोक की पुत्री संघमित्रा बोधिवृक्ष

(पीपल वृक्ष) की एक टहनी लेकर पटना से चली। त्याग-तपस्या, ज्ञान-चरित्र एवं निष्काम सेवा, नि:स्वार्थ भाव से विश्वमंगल की भावना से धर्म का प्रसार किया।

वहीं सेमिटिक परम्परा ने (इस्लाम व ईसाइयत ने) बल, भय, आतंक, छलकपट, हिंसा द्वारा अपने धर्म को दुनिया पर थोपा।

इसलिए ऋषि अरविन्द घोष कहते हैं—भारत उस सत्य का रक्षक है, जो विश्व का रक्षक है। तो वह कौन-सा सत्य है? यही कि हम सब प्रभु की संतान हैं। अमृत की संतान हैं। ऋषियों की संतान हैं। जितने प्राणी हैं सब अमृत की संतान हैं। कोई काफिर नहीं है, हिडेन नहीं है। इस सत्य का रक्षक भारत है। भारत ने निष्काम भाव से विश्व की सेवा की है।

स्वामी विवेकानन्द कहते हैं—भारत कभी गुलाम नहीं था। भारत में गुलामी के संस्कार नहीं है। क्योंकि भारत सबमें प्रभु का दर्शन करता है। यह बात विवेकानन्द जी ने इंग्लैण्ड में कही तो एक अंग्रेज को अच्छी नहीं लगी। उसने विवेकानन्द जी को टोकते हुए कहा—भारत गुलाम है। उसके विषय में ऐसी बात कहना उचित नहीं। तब विवेकानन्दजी ने उसे करारा उत्तर देते हुए कहा—तुम इंग्लैण्डवासी गुलाम हो। इसलिए सारी दुनिया पर गुलामी को थोपा है। भारत कभी गुलाम नहीं रहा। अत: कभी किसी पर गुलामी नहीं थोपी।

Hindu Spirituality

प्राचीन हिन्दू लोग काव्य प्रिय लोग थे। वे अनिवार्य रूप से संगीत प्रिय थे। भारत में सब चीज को गेय पद्धति से प्रस्तुत किया गया है। यहां युद्ध भूमि में भी ब्रह्मज्ञान का गीत गाते हैं। गीता संगीतमय गीत है। उसकी भाषा सबसे सुन्दर और उत्तम है। हम व्यवसाय प्रिय थे। हम दार्शनिकता प्रिय व्यक्ति हैं। विज्ञान में भी हम उतने ही उन्नत थे जितने कि अन्य विषयों में। साहित्य का सबसे बड़ा पूर्वज भारत है और धर्म का भी प्रथम पूर्वज भारत है।

पश्चिम के लिए दर्शन मात्र बुद्धि का विलास है। जीवन की आस्था उसमें नहीं है। अत: पश्चिम जूता का फीता टूटने, स्वार्थ पर थोड़ा-सा आघात लगने एवं थोड़ा-सा भी दु:ख-कष्ट आते ही सब दर्शन, नैतिकता, तत्त्वज्ञान आदि को भूल जाता है और अपने वास्तविक स्वरूप पर, अपने स्वार्थ पर उतर आता है। अपने ओछेपन पर, तुच्छता पर उतर आता है। नीचता पर उतर आता है। स्वामी रामतीर्थ कहते हैं—पश्चिम उस धोबी की तरह है जिसे बड़े-बड़े राजा-महाराजाओं, सेठ-साहूकारों के चोले पर तो अभिमान है, पर स्वयं उसके शरीर पर तो चिथड़े पड़े हैं। उसके स्वयं के अन्दर श्रेष्ठता, महानता, सुन्दरता जैसी कोई बात नहीं है। इसका

इतिहास साक्षी है। अपने स्वार्थ में सारी दुनिया को रौंदते रहे हैं।

इसलिए महामना मदनमोहन मालवीयजी कहते हैं—हिन्दू धर्म सर्वश्रेष्ठ है। यह सारी मानवता का हित चाहता है, इसकी रक्षा करें। यह अपने मुंह मियां मिट्ठू बनना नहीं है। रोम्या रोला कहता है—हिन्दू धर्म सर्वश्रेष्ठ है। मैंने यूरोप और एशिया के सभी धर्मों का अध्ययन किया है, परन्तु मुझे उन सबमें हिन्दू धर्म ही सर्वश्रेष्ठ दिखाई देता है।.... मेरा विश्वास है कि इसके सामने एक दिन समस्त जगत् को सिर झुकाना पड़ेगा। अन्यत्र वह पुनः कहता है—अगर संसार की सतह पर कोई एक देश है जहां जीवित लोगों के सभी स्वप्नों को, उस प्राचीनकाल से स्थान मिला है जब से मनुष्य ने अस्तित्व का स्वप्न आरम्भ किया, तो वह हिन्दुस्तान है।

अरनाल्ड टायनबी कहते हैं—विज्ञान और प्रविधि के विकास के साथ हो सकता है कि बीसवीं शताब्दी के अन्तिम चरण तक सारा संसार अमरीका के प्रभाव क्षेत्र में आ जाए। किन्तु इक्कीसवीं शती में जब विज्ञान का स्थान अध्यात्म लेगा तथा तकनीक का स्थान धर्म लेगा तब भारत ही सारी मानव-जाति का आध्यात्मिक गुरु होगा।

आज पाश्चात्य देश सचमुच अनुभव कर रहे हैं कि हमने अपनी आत्मा खो दी है, अत्यधिक industrilise (औद्योगीकरण) करके।

विषयानन्द साधारण आनन्द है। जो परम तृप्ति नहीं दे सकता। अतः भजनानन्द की, ब्रह्मानन्द की स्फुरना सब देशों में देखने को मिल रही है। अतः भारत ही विश्व को जय करेगा, भारत के ढंग से। युद्ध के बल से नहीं वरन्, कला, दर्शन, संगीत, अध्यात्म द्वारा। दर्शन का विस्तार ही कला, भजन, कीर्तन, संगीत, मूर्तिकला में होता है।

षष्ठ प्रवचन

महापुरुष के जन्म से कुल पवित्र

माता पवित्र

सारी धरती पवित्र हो जाती है।

जिसका ब्रह्म में चित्त लीन हो जाता है तो उसकी सात पीढ़ी तर जाती है। मानवता धन्य-धन्य हो जाती है।

संत न होते तो संसार जल मरता—नानक

आपस की राग-द्वेष की अग्नि में संसार स्वाहा हो जाता है। क्योंकि संसार में मनोविकारों को लेकर आते हैं और संसार को गंदा कर देते हैं। वैसे ही संस्कार लेकर जाते हैं, पुनः वही संस्कार लेकर आते हैं। ये अग्नियां मानवता को जला डालेगी।

संत मानवता के परित्राता हैं। संत वह है जो सत् वस्तु का जीवित रूप है। सत् वस्तु क्या है?

जो दिखाई देता है वह सब मिट जाता है। ऐसी कोई सत्ता है जो सदा रहने वाली है। बच्चा पिता से पूछता है—हमारे बैठे कुछ यात्री चढ़े, कुछ दूरी पर उतर गए, कुछ नए चढ़ गए। यही क्रम सारी यात्रा में चलता है। तो बच्चा पूछता है—बस का पक्का यात्री कौन है?

संसार की गाड़ी का पक्का यात्री कौन है?

संसार की गाड़ी का पक्का यात्री कोई नहीं है।

तो सत् वस्तु क्या है? क्या सब कुछ असत् है, विनाशी है या कोई सत् है जो चिर स्थायी है?

उसकी जो खोज करता है और जो उसमें स्थित हो जाता है। संत के अविनाशी सिंहासन में दृढ़ हो जाता है। संत और भगवान् में कोई अन्तर है? संत भगवान् ही हो जाता है क्योंकि सत् वस्तु ही भगवान् है। लौकिक दृष्टि से

संत और पारलौकिक दृष्टि या अलौकिक दृष्टि से वे भगवान् ही हैं। भगवान् का साक्षात्कार कर भगवान् को सिद्ध कर लिया है।

स्कूल की शिक्षा—भगवान् के धाम से आने वालों को संसार का कैदी बनाने की शिक्षा दी जाती है। भगवान् को भूल जाए। संसार के कोल्हू में पिसता रहे। रवीन्द्रनाथ टैगोर के अनुसार स्कूल भी जेलखाने की तरह है। जहां दरवाजा है, चौकीदार है, हाजिरी लगती है, घण्टिया बजती है, छोटी-छोटी भूल पर बेंत पड़ते हैं।

सभी संतों ने ज्ञान, भक्ति और कर्म का समन्वय किया है। कर्म के बिना आकाश की बातें, वाणी का विलास, वाणी के विलास के चक्रव्यूह में फंस जाएंगे।

कबीर, दादू, रविदास

संत, पंथ सब जगत् के, बात बतावत तीन।

ईश्वर भजन, सब पर दया, तन सेवा में लीन।

सब संतों का सारतत्त्व यह है। जिन्होंने इस को चरितार्थ किया वह संत।

बच्चा जन्मता है, बच्चा सबको प्यारा लगता है

बच्चा बाल हृदय है, भगवान् है, निर्दोष है

बच्चे में राग-द्वेष नहीं है

बच्च भगवान् के धाम से नया आया है

वहां का तेज लेकर आया है।

बच्चा सबको अपना मानता है,

जो उसको पुचकार दे उसी के पास चला जाए।

तीन विशेष नाड़ी है, जिनका महत्त्व अधिक है। इड़ा, पिंगला और सुषुम्ना। मूलाधार से ऊपर उठती है। इनके दो चक्र हैं। सूर्य चक्र—इड़ा नाड़ी दाहिनी आँख के साथ। बायीं आँख, चन्द्र चक्र—पिंगला नाड़ी—शीतलता।

सर्वोदय विज्ञान—दाहिनी नासिका चले तो समझना गर्म। इस समय भोजन जल्दी पचता है। भोजन के पश्चात् बायीं करवट लेट जाएं।

चन्द्र नाड़ी से अमृत बरसता है।

बच्चे में तेज का कारण।

बाद में चन्द्र सूखती जाती है।

फूल खिलते हैं तब भंवरे अपने आप आने लगते हैं।

—भगवान् बुद्ध

बुद्ध—बुद्ध मानवता के फुलवारी के सुन्दरतम फूल हैं। एशिया का धर्म सम्राट—रवीन्द्र

आध्यात्मिकता और नैतिक सद्‌गुणों में क्रॉइस्ट बुद्ध की तुलना में कहीं नहीं टिकता। बुद्ध सभी दृष्टियों से अच्छा है। धर्म में मेरा विश्वास नहीं, ईसा को मानता नहीं। पर मुझसे किसी धर्म को स्वीकार करने को कहा जाए तो मैं बौद्ध धर्म को ही स्वीकार करूंगा—रसेल

बुद्ध उन सब सद्‌गुणों के जीवित अवतार थे जिनका वे प्रचार करते थे—मैक्समूलर

शुद्ध तर्क के आधार पर बिना किसी शास्त्र विश्वास के उन्होंने उपदेश किया है—डूयसन

एक दर्शन पद्धति जो धर्म, बौद्धिकता और विज्ञान सम्मत आधार पर स्थित है, बौद्ध धर्म ही है—हक्सले।

गुरुवर्य रवीन्द्र के शिक्षा दर्शन पर प्रकाश डालते डॉ. ओबराय ने कहा—शिक्षा में छड़ी का स्थान बांसुरी को लेना चाहिए तथा विद्यालय को जेलखाना के समान न रहकर एक हंसती हुई पुष्प वाटिका बन जाना चाहिए।

देश के नवयुवक ही देश की सबसे बड़ी पूंजी है। इनके विधिवत संस्कारित होने से देश का नवोत्थान सम्भव है।

सप्तम प्रवचन

विद्या से विनय आती है। पश्चिम की भोंडी नकल के कारण गर्दन अकड़ जाती है, ज्ञान प्राप्ति के पश्चात्। पश्चिम की भौतिकवादी सभ्यता से प्रभावित आज के भारत के विद्वान् का अकड़ना यानी एक विषैला रोग लग गया।

ईश्वरचन्द्र विद्यासागर—कुली के कार्य में भी संकोच नहीं।

सच्चा अजातशत्रु—राजेन्द्र प्रसाद

सच्चा नेता कैसा होना चाहिए—

मोटरगाड़ी जैसा नहीं

रेलगाड़ी की तरह

कुटिलता—मृत्युपद है।

सरलता—ब्रह्मपद है।

आज कुटिलता बढ़ गई है। आज का मानव बाहर से लिफाफा बहुत सजाता है। अन्दर से खोखला है पर बाहर से दिखावा करता है।

वाणी मन में प्रतिष्ठित हो, और मन वाणी में प्रतिष्ठित हो। पर अभी हमारी यह स्थिति है कि वाणी मन को ठगती है, मन वाणी को ठगता है।

बच्चे में सरलता विद्यमान है। पर हम उसे बेईमानी सिखाते हैं। पर बेईमानी सीखने पर वह हमीं को ठगता है। यह स्वाभाविक भी है। फिर माता-पिता चिल्लाते हैं। दु:ख व्यक्त करते हैं। हमारी संतानें हमें ही धोखा देती रहती हैं।

डॉ. राजेन्द्र प्रसाद राष्ट्रपति भवन में रहकर भी साधु के समान थे। विदेह राजा जनक के समान।

अष्टम प्रवचन

दो Partner की साझेदारी की दूकान तो टिकती नहीं, चलती नहीं। इस शरीर रूपी दूकान में पांच Partner कार्य कर रहे हैं। उन पार्टनरों का स्वभाव कैसा? परस्पर एक-दूसरे के विरोधी, एक-दूसरे से अधिक बली, व्यापक एवं सूक्ष्म हैं। एक-दूसरे को खा जाने वाले, हड़प जाने वाले, डकार जाने वाले हैं। जल, पृथ्वी से अधिक व्यापक, शक्तिशाली एवं पृथ्वी को डुबो देता है। तीन भाग जल हैं एक भाग पृथ्वी है। जब चाहे जल बाढ़ के द्वारा पृथ्वी को, भू-प्रदेशों को अपने अन्दर निगल लेता है। और जल का शोषण अग्नि कर लेता है, जल को सोख लेता है। अत्यधिक गर्मी में नदी-नालों, तालाब के जल को सोख लेता है। अग्नि को वायु बुझा देता है और वायु को अनन्त आकाश एक डकार में निगल लेता है, पता भी नहीं चलता! इस तरह के पार्टनरों की दूकान कब तक चलेगी? किसी भी दिन Partnership भंग हो सकती है। इस दूकान में आत्मा अतिथि रूप में वास करता है जिसकी न आने की कोई तिथि निश्चित है और न जाने की। और उसके जाते ही यह Partnership की दूकान भंग हो जाती है। अतः इस अतिथि के जाने के पूर्व ही, Partnership के भंग होने के पूर्व ही, जो काम करना है सब कर लो। और अब जब जाने की कोई तिथि निश्चित नहीं है, तब जैसे घर में आग लगने पर, या डाका पड़ने पर जो कार्य सर्वाधिक महत्त्व का है उसे ही सर्वप्रथम करते हैं। वैसे ही जब देह-गेह में आग लगी हुई है अतः धर्माचरण कर लेना चाहिए। क्योंकि और सब कुछ धन-दौलत, रिश्तेदारी हमारे काम नहीं आयेंगी—धर्म ही हमारे काम आयेगा। हमारे साथ जायेगा।

गुरुनानक देव कहते हैं—

गोविन्द मिलन की यही तेरी बरिया, कर साधु सङ्गत भज केवल नाम।
लाख शीश तेने दिए यम के भेंट, एक शीश तेने न दियो नारायण हेतु।।

हिन्दूधर्म की विशेषताएं

1. हिन्दू धर्म ईश्वर को सर्वव्यापी मानता है। अन्य धर्म मानता है कि ईश्वर केवल बहिश्त या हैवन में रहते हैं।

2. हिन्दूधर्म मानता है कि ईश्वर आत्म के रूप में हरेक जीव के हृदय में है। अन्य धर्म मानते हैं कि ईश्वर किसी के अंदर नहीं रहते। मनुष्येतर प्राणियों में तो आत्मा ही नहीं है।

3. हिन्दूधर्म जन्मान्तर को मानता है। अन्य धर्म नहीं मानते।

4. हिन्दूधर्म के अनुसार अपने सुख दुःख के लिए जीव के पूर्वकृत शुभाशुभ कर्मफल ही जिम्मेदार हैं।

अन्य धर्म मानते हैं कि ईश्वर ने अकारण ही केवल अपने मनोविनोद के लिए जीवों को सुखी-दुःखी बना दिया।

5. हिन्दूधर्म गो हत्या को महापाप मानता है अन्य धर्म उसे पुण्य मानते हैं।

6. हिन्दूधर्म मोक्षप्राप्ति को ही जीवन का लक्ष्य मानता है, स्वर्ग को नहीं। अन्य धर्म केवल मात्र स्वर्ग के सुख को ही परम पुरुषार्थ मानते हैं।

7. हिन्दूधर्म के अनुसार मृत्यु के साथ-साथ ही जीव अपने-अपने कर्मानुसार स्वर्ग, नरक या मोक्ष को प्राप्त कर लेता है। अन्य धर्म मानता है कि मृत्यु के बाद जीव यावत्चन्द्रदिवाकरौ कब्र में पड़ा रहता है।

8. हिन्दूधर्म मानता है ईश्वर की इच्छामात्र से ही जगत् की सृष्टि हुई है। अन्य धर्म मानता है पहले पृथ्वी की सृष्टि की उसके तीन दिन बाद सूर्य की सृष्टि की है। सिवाय सूर्य के दिन-रात कैसे बने?

9. हिन्दूधर्म में आत्मा को शुद्ध माना गया है। पाप-पुण्य मन का विषय है।

अन्य धर्म जीवात्मा को जन्म से ही पापी मानता है।

10. हिन्दूधर्म के अनुसार ध्यानावस्थित अवस्था में ईश्वर का दर्शन करके मुक्त हो सकते हैं। ईश्वर स्वयं ही भक्त का उद्धार करते हैं। अन्य धर्म में खुदा को कोई नहीं देखता। पैगम्बर या ईश्वर के पुत्र के पास क्षमा मांगने पर वे ईश्वर से कह कर क्षमा दिलाएंगे। वहां भक्त से भगवान् का सीधा संबध नहीं है।

11. हिन्दूधर्म मानता है कि भक्तों की रक्षा, दुष्कृतकारी का विनाश एवं धर्म की पुनः प्रतिष्ठा के लिए भगवान् स्वयं अवतार लेकर प्रगट होते हैं। किन्तु अन्य धर्म ऐसा मानते हैं कि ईश्वर का अवतार नहीं होता उनके पुत्र या पैगंबर आते हैं।

12. हिन्दूधर्म के अनुसार ईश्वर प्रत्येक जीव के परम पिता हैं और जीव उनके पुत्र हैं। किन्तु अन्य धर्म मानते हैं कि केवल यीशु ही ईश्वर का पुत्र है अन्य कोई नहीं।

13. हिन्दूधर्म का मत है जो पुण्य करेगा वही स्वर्ग में जायेगा, जो पाप करेगा वह नरक में जायेगा। अन्य धर्म का मत है कि जो पैगंबर को मानेगा वह उनकी सिफारिश से स्वर्ग में जायेगा और जो ईश्वर के पुत्र को नहीं मानेगा पुण्यकर्म करने पर भी वह नरक में जायेगा। आज से 2014 साल पहले बने हुए कायदे से करोड़ों वर्ष पहले जन्मे और मरे जीवों का विचार कैसे खुदा कर पाएंगे?

14. हिन्दूधर्म के अनुसार प्राणीहत्या पाप है। क्षत्रियों के लिए युद्ध करना पाप नहीं। सर्वसाधारण के लिए आत्मरक्षा के लिए आततायी को मारना पाप नहीं।

अन्य धर्म में काफिर एवं हिडेनों को मारने से पाप नहीं।

15. हिन्दूधर्म में प्रथम आश्रम ब्रह्मचर्य। अन्य धर्मों में ब्रह्मचर्य पालन का कोई आदेश नहीं है।

16. हिन्दूधर्म सर्वेश्वरवाद को मानता है। ईश्वर में सब है और सब में ईश्वर है ऐसा मानता है।

किन्तु अन्य धर्म एक ईश्वर को मानते हैं और वे सर्वत्र नहीं हैं।

17. हिन्दूधर्म देवताओं का पूजन करता है किन्तु ईश्वर के रूप में नहीं करता केवल भौतिक पदार्थ की प्राप्ति के लिए करता है।

अन्य धर्म भी देवताओं के स्थान पर फरिश्ता, जिब्राइल एडोल्स वगैरह मानते हैं।

18. हिन्दूधर्म मूर्ति के माध्यम से ईश्वर की पूजा करता है। किन्तु अन्य धर्म मक्का के काबा केवलेश्वर (मक्केश्वर महादेव) को खुदा का स्वरूप मानकर पूजा करते हैं।

'हिन्दुत्व भिन्न-भिन्न मत-विश्वासों समस्वर संगीत है, एक विविध रंगों के फूलों का गुलदस्ता है। अनन्त विविधरूपता के उपरान्त भी हिन्दुत्व एक है और उसने युगों से भारत को एक बनाये रखा है। हिन्दू भारत में धार्मिक एकता सदा से लेकर अभी तक उतनी ही सुदृढ़ है, जितनी की अन्य देशों में राजनीतिक एकता। हिन्दुस्तान के एक छोर से दूसरे छोर तक, उत्तर-दक्षिण, पूर्व-पश्चिम में इम्फाल से श्रीनगर तक और केदारनाथ से कन्याकुमारी तक, हिन्दुत्व ने सब प्रान्तों में एकसमान संस्कृति, एकसमान चरित्र और एकसमान धर्म विकसित किया है। चाहे कहीं रंग भिन्न हों, फिर भी अनिवार्य सारतत्त्व एक और अभिन्न ही है।

रोम्यां रोलां